Page 1 of 331

ईश्वर - ब्रह्म - परमात्मा - अल्लाह - गॉड

का अस्तित्व और उसकी महिमा का निरूपण

ॐकारमाद्यं प्रवदन्ति संतो वाच: श्रुतीनामपि यं गृणन्ति I
गजाननं देवगणानताङ्घ्रिं भजेऽहमर्धेन्दुकृतावतंसम् II

‘सन्त-महात्मा जिन्हें आदि ॐकार बताते हैं; श्रुतियों की वाणियाँ भी जिनका स्तवन करती हैं; समस्त देव- समुदाय जिनके चरणारविन्दों में प्रणत होता है तथा अर्धचन्द्र जिनके भालदेश का आभूषण है, उन भगवान गजानन का मैं भजन करता हूँ I’
मैं तत्सत्, तत्सम, तद्भव, परम हंस सोऽहम् ॐ स्वरुप गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जीवात्म, परमात्म, गुरु देवता, परम् कर्ता, परम् कारक, परम् कारण, परम् प्रभु, अलख-अगोचर, अकालपुरुष, दीनानाथ, दीनबंधु, जगदाधार,जगतपति, सच्चे पातशाह,अपने समस्त नामों में स्वरूपों में सर्वांग सांग-सपरिवार,सवाहन, सशक्तय, समग्र सम्पूर्ण स्थूलतरस्थूल-सूक्ष्मतरसूक्ष्म रूप से यत्र-तत्र सर्वत्र व्याप्त सर्वत्र स्थित, अन्तस्थ-बाह्यस्थ, सर्व व्यापक अच्युत-अनन्त, आदि-अनादि, अंतरउरवासी, अविनाशी, परम् शक्ति, परम् शक्ति मान,

Page 1 of 331

Page 2 of 331

परम् ब्रह्मऽब्रह्म, विद्या-अविद्या, ज्ञानऽज्ञान, ज्ञान-विज्ञान, परम् मानसिक शांति, मानसिक स्थिरता, मानसिक एकाग्रता, परम् कान्ति- शांति-चेतना-आस्था-श्रद्धा-विश्वास,परम दाता, धाता, अधिष्ठाता, परम् ईष्ट,आत्मा-अनात्मा, ब्रह्मऽब्रह्म, विद्याऽविद्या, ज्ञानऽज्ञान, ज्ञान-विज्ञान, ध्यान-विवेक-विद्या- बुद्धि,दिव्यदृष्टि, दिव्यचक्षु, दिव्यनेत्र, दिव्यनेत्रज्योति, दिव्यकर्ण, दिव्यश्रवणशक्ति, वाक्शुद्धि, वचनशुद्धि, वाक् सिद्धि, वचनसिद्धि, परम् वैभव-विपुल धन-सम्पत्ति, सुख-लाभ-आनंद स्वरूप, सार्थक-निरर्थक, परम् तत्त्व,परम् तथ्य, परम् सत्व, परम् सत्य, सर्वतोभाद्रमण्डलस्थ सकल जीव-चराचर, जड़-चेतन, गोचार-अगोचार, स्थावर-जंगम्, परम् महागुणात्मक-महाभूतात्मक, सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण, मन-बुद्धि-आत्मा, मन-वचन-काय, इच्छा- कल्पना-संकल्प-परिणाम, धाता-अधिष्ठाता, सकल पीर-फ़कीर,पैग़म्बर, अवतार-औलिया, अकल-सकल, फ़रिश्ते, समस्त देवी-देवता, नवनाथ-चौरासी सिद्ध, सकल संत समाज-साधू समाज-ऋषि-मुनि, आदित्यादि नव ग्रहदेवता, अधिदेवता-प्रत्यधि देवता, विनायकादि पञ्चलोकपाल, वास्तोष्पति, क्षेत्राधिपति, इन्द्रादि-दशदिक्पाल, सर्वे कव्य-वाङग्मय, सर्वेकिरीटिनः कार्यवरदापाणय: सर्व देव, सर्व गुरुदेव, सर्व ईष्ट देव परमेश्वर, सर्व मन्त्र-यंत्र-तन्त्र-स्तोत्र, सर्व मन्त्र-यंत्र-तन्त्र-स्तोत्र अक्षरांक, परम् विद्या, परम् ज्ञान- परम् सिद्धि,शक्ति, सामर्थ्य, एवं क्षमता परम् रचियता, परम् स्रष्टा, परम् द्रष्टा, परम् दाता-धाता- अधिष्ठाता परम् ईष्ट, समस्त भाषाओं, लिपियों के

Page 2 of 331

स्वर -वयंजन , परम चिन्ह , परम चिन्ह ब्रह्म , परम वर्ण , परम वर्ण ब्रह्म , परम स्वर , परम स्वर ब्रह्म , परम व्यंजन , परम व्यंज ब्रह्म , परम मात्रा , अमात्रा , अर्ध मात्रा , परम मात्रा , अमात्रा ,अर्धमात्रा ब्रह्म , परम संयुक्त स्वर है , परम संयुक्त व्यंजन है , परम संयुक्ताक्षर , प्रथम अक्षर , प्रणवाक्षर , ओमाक्षर , परमाक्षर , परम अक्षर ब्रह्म , परम आहद, अनाहद , परम नाद , परम ब्रह्म नाद , परम ध्वनि , परम ब्रह्म ध्वनि , परम धुनि , परम ब्रह्म धुनि , परम शब्द , परम शब्द ब्रह्म , स्वरूप ॐ कार , ੴ कार , الله , को नमन् करता हूं , प्रणाम करता हूं , अनुसरण करता हूं , और इसी की शरण लेता हूं I

शुक्लाम्बरधरं देवं शशि वर्णं चतुर्भुजं ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशान्तये ।
अखण्डमंडलाकारं व्याप्तं येन चारा चरं।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नम :।
हे जगदम्बे अम्बिके करो जगत प्रतिपाल ,
नमन् करत तव चरणन में द्विज कुल सोहनलाल II

—

ईशावास्योपनिषद् _

ॐ ईशा वास्यमिदँ्सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् I

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्
I (ईशावास्योपनिषद् श्लोक 1)

अन्वय :- ओम् (प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ करते समय मंगलाचरण के रूप में स्मरण किया जाने वाला ईश्वर का निज नाम) इदम् सर्वम् यत् किंच जगत्याम्

Page 5 of 331

स्वामी है I वह स्वामी कहीं अलग बैठा हुआ गति नहीं दे रहा बल्कि वह गति करनेवाले एक एक अणु में स्थित है, एक-एक अणु में बसा बैठा है I जब वह एक एक अणु में बसा हुआ है और ‘ईश’--स्वामी--की हैसियत से बसा हुआ है तब तो यह सबकुछ उसी का हुआ न, भला इसमें हमारा क्या है? जैसे हम कहीं जाते हैं और किसी होटल या किसी धर्मशाला, सराय अथवा किसी मुसाफिरखाने में ठहरते हैं तो हम कभी उसे अपना नहीं समझते केवल उसका, वहां मिलने वाली सुविधाओं का भोग करते हैं I मनुष्य अगर यह धारणा करले कि इस विश्व, इस समस्त सृष्टि का स्वामी वही है, तो इस संसार का भोग किस बुद्धि से करेगा? मनुष्य अगर यह धारणा करले की विश्व का स्वामी वही है, तो संसार का उपभोग किस बुद्धि से करेगा? वह यही तो समझेगा कि मैं उसका दिया खाता हूं, उसका दिया पीता हूं, उसका दिया काम में लेता हूं I हमारे शरीर में स्थित ब्रह्म ही परम् भोक्ता है, जो हम खाते हैं उसे वही खाता है I (इसके समर्थन में:--‘अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णु भोक्ता देवो महेश्वर:, एवं ध्यात्वा यो भूंक्ते अन्न दोषैर्न लिप्यते I’) वह संसार के पदार्थों का भोग करेगा, परन्तु यह समझकर कि यह सब उसका है, मेरा नहीं; वह भोग करेगा त्याग-बुद्धि से; वह काम करेगा नि:संग-भाव से I संसार की सब वस्तुएं उसकी हैं, अत: उसकी वस्तु को अपना समझना चोरी के समान है I जो यह समझ लेता है कि संसार गतिमान है, गति कभी गति देनेवाले के बिना नहीं आ सकती, गति अणु-अणु के

Page 5 of 331

भीतर है अत: गति देनेवाला अणु-अणु में बसा हुआ है, वही इस सबका स्वामी है, फिर वह निर्लेप, नि:संग, त्यागपूर्वक भोग के अतिरिक्त किसी दूसरे दृष्टिकोण से अपने सम्मुख रख ही नहीं सकता] इसलिये हर एक वस्तु का प्रयोग त्याग पूर्वक भोग करना चाहिये दूसरे के धन की आकांक्षा नहीं रखनी चाहिये I

ईशादि नौ उपनिषद् (शङ्करभाष्यार्थ) में इस भाव को कुछ यूं प्रकट किया गया है------‘सर्वत्र भगवद्दृष्टि का उपदेश’

भाष्यार्थ— ईशा ईष्ट इतीट् तेनेशा I ईशिता परमेश्वर: परमात्मा सर्वस्य I स हि सर्वमीष्टे सर्वजन्तूनामात्मा संप्रत्यगात्मतया तेन स्वेन् रूपेणात्मनेशा वास्यमाच्छादनीयम् I

किम्? इदं सर्वं यत्किञ्च यत्किञ्चिज्जगत्यां पृथिव्यां जगत्तत्सर्वं स्वेनात्मना ईशेन प्रत्यगात्मतयाहमेवेदं सर्वमिति परमार्थसत्यरूपेणामृतमिदं सर्वं चराचरमाच्छादनीयं स्वेन परमात्मना I

यथा चन्दनागर्वादेरुदकादि- सम्बन्धजक्लेदादिजमौपाधिकं

दौर्गन्ध्यं तत्स्वरूपनिघर्षणेन आच्छाद्यते स्वेन पारमार्थिकेन गन्धेन I तद्वदेव हि स्वात्मनि अध्यस्तं स्वाभाविकं कर्तृत्वभोक्तृत्वादिलक्षणं जगद्वैतरूपं
Page 6 of 331

Page 7 of 331

जगत्यां पृथिव्याम्, जगत्यामिति उपलक्षणार्थत्वात्सर्वमेव नामरूपकर्माख्यं विकारजातं परमार्थसत्या त्मभावनया त्यक्तं स्यात् I

एवमीश्वरात्मभावनया युक्तस्य आत्मनिष्ठस्य पुत्राद्येषणात्रयसंन्यास त्याग एवं एवाधिकरो न अधिकार: कर्मसुI तेन त्यक्तेन त्यागेनेत्यर्थ: I न हि त्यक्तो मृत: पुत्रो वा भृत्यो वा आत्मसम्बन्धिताया अभावाद् आत्मानं पालयति अतस्त्यागेन इत्ययमेव वेदार्थ:--भुञ्जीथा: पालयेथा: I एवं तयक्तैषणस्त्वं मा गृध:, गृधिमाकाङ्क्षा मा कार्षीर्धनविषयाम् I कस्यस्विद्धनं कस्यचित्परस्य स्वस्य वा धनं मा काङ्क्षीरित्यर्थ: I स्विदित्यनर्थको निपात: I

अथवा मा गृध: I कस्मात् ? कस्यस्विद्धनमित्याक्षेपार्थो न कस्यचिद्धनमस्ति यद्गृध्येत I आत्मैवेदं सर्वामितीश्वरभावनया सर्वं त्यक्तमत आत्मन एवेदं सर्वात्मैव च सर्वमतो मिथ्याविषयां गृधिं मा कार्षीरित्यर्थ: I

अर्थ— जो ईशन (शासन) करे उसे ईट् (धातु) कहते हैं, इसका तृतीयान्त रूप ‘ईशा’ है I सबका ईशन करनेवाला परमेश्वर परमात्मा है I वही सब जीवों का आत्मा

Page 7 of 331

Page 8 of 331

होकर अन्तर्यामीरूप से सबका ईशन करता है i उस अपने स्वरूपभूत आत्मा ईश से सब

वास्य अर्थात आच्छादन करने योग्य है I

क्या [आच्छादन करने योग्य है] ? यह सबकुछ जो कुछ जगती अर्थात पृथ्वी में जगत् (स्थावर-जंगम प्राणिवर्ग) है वह सब अपने आत्मा ईश्वर से--- अन्तर्यामीरूप से यह सबकुछ मैं ही हूं I ---ऐसा जानकर अपने परमार्थसत्यस्वरूप परमात्मा से यह सम्पूर्ण मिथ्याभूत चराचर आच्छादन करने योग्य है I

जिसप्रकार चन्दन और अगरु आदि की, जल आदि के सम्बन्ध से गीलेपन आदि के कारण उत्पन्न हुई औपाधिक दुर्गन्धि उन (चन्दनादि)-के स्वरूप को घिसने से उनके पारमार्थिक गन्ध से आच्छादित हो जाती है, उसी प्रकार अपने आत्मा में आरोपित स्वाभाविक कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि लक्षणों वाला द्वैतरूप जगत् जगती में यानी पृथ्वी में---‘जगत्याम्’ यह शब्द [स्थावर-जंगम सभी का] उपलक्षण करानेवाला होने से—इस परमार्थसत्यस्वरूप आत्मा की भावना से नाम-रूप और कर्ममय सारा ही विकारजात हो जाता है I

इसप्रकार जो, ईश्वर ही चराचर जगत् का आत्मा है— ऐसी भावना से युक्त है, उसका पुत्रादि तीनों एषणाओं के त्याग में ही अधिकार है—कर्म में नहीं I उसके त्यक्त अर्थात् त्याग से [आत्मा का पालन कर]

Page 8 of 331

Page 9 of 331

I त्यागा हुआ अथवा मरा हुआ पुत्र या सेवक, अपने सम्बन्ध का अभाव हो जाने के कारण अपना पालन नहीं करता; अत: त्याग से—यही इस श्रुति का अर्थ है— भोग यानि पालन कर I

इसप्रकार एषणाओं से रहित हो कर तू गर्द्ध अर्थात् धनविषयक आकांक्षा न कर I किसी के धन की अर्थात अपने या पराये किसी के धन की इच्छा न कर I यहाँ ‘स्वित्’ यह अर्थरहित निपात है I

अथवा आकांक्षा न कर, क्योंकि धन भला किसका है? इस प्रकार इसका आक्षेपसूचक अर्थ भी हो सकता है अर्थात धन किसी का भी नहीं है जो उसकी इच्छा की जाय I यह सब आत्मा ही है---इसप्रकार ईश्वरभावनासे यह सभी परित्यक्त हो जाता है i अत: यह सबकुछ आत्मरूप ही होने के कारण मिथ्यापदार्थविषयक आकांक्षा न कर—ऐसा इसका तात्पर्य है I

भाव— जगत में जो कुछ स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है [अर्थात उसे भगवत्स्वरूप अनुभव करना चाहिए] उसके त्याग-भाव से तू अपना पालन कर; किसी के धन की इच्छा न कर I

स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ईशादिनवोपनिषद् इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं--

मंत्रार्थ— “अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़-चेतन स्वरूप

Page 9 of 331

जगत है वह पूरा पूरा ईश्वर से व्याप्त है, उस ईश्वर को साथ रखते हुए, इस जगत को भोगते रहो, उसमें आसक्त न हो क्योंकि धन-भोग्य पदार्थ किसी का भी नहीं है”

व्याख्या— मनुष्यों के कल्याणार्थ श्री वेदभगवान का आदेश है कि अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी यह चराचर जगत दृश्यमान है वह पूर्ण रूप से सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वमय परमेश्वर से व्याप्त है तथा सदा उन्हीं से परिपूर्ण है i इस यथार्थता का प्रतिपादन गीता के दसवें अध्याय के 39 वें एवं 42 वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अर्जुन से यह कहकर किया है कि “हे अर्जुन जो सब भूतों (प्राणियों) की उत्पत्ति का कारण है वह भी मैं ही हूं क्योंकि ऐसा कोई भी भूत नहीं है जो मुझसे रहित हो” I

अत: उपर्युक्त प्रकार से समझकर उन सर्व नियंता, सर्वकल्याणस्वरूप परमात्मा का सदा सर्वदा स्मरण करते हुए इस जगत में इस जगत में स्व उत्पन्न की हुई ममता एवं आसक्ति का त्याग कर विश्वरूप परमात्मा की ही पूजा के लिए निष्कामभाव से कर्मों का आचरण करो i केवल लर्त्व्य-पालन हेतु ही विषयों का भोग नहीं वरन् सदुपयोग करो इसीसे कल्याण सुनिश्चित हैं I इस बात की पुष्टि गीता के 18 वें अध्याय के 46 वें श्लोक से होती है जिसमें भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से समस्त जाग्रत आत्माओं को सम्बोधित करते हुए कहा है कि “जिस
Page 10 of 331

परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पप्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है (जैसे बर्फ जलसे व्याप्त है, वैसे ही सम्पूर्ण संसार सच्चिदानन्दघन परमात्मा से व्याप्त है) उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके (जैसे पतिव्रता स्त्री पति को ही सर्वस्व समझ कर पति का चिन्तन करती हुई, पति के आज्ञानुसार पति के लिए ही मन, वाणी, शरीर से कर्म करती है, वैसे ही परमेश्वर को ही सर्वस्व समझकर परमेश्वर का चिन्तन करते हुए परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार मनण वाणी और शरीर से परमेश्वर के लिए ही स्वाभाविक कर्तव्यकर्म का आचरण करना “कर्मद्वारा परमेश्वर को पूजना) मनुष्य परम् सिद्धि को प्राप्त हो जाता है”

वस्तुत: ये भोगी पदार्थ सब परमेश्वर के हैं और उन्हीं की प्रसन्नता के लिए ही उनका उपभोग करना चाहिए I उनमें किसी भी प्रकार की ममता और आसक्ति रखना मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है I

इसीलिये कहा गया है कि जहाँ आपकी सीमा समाप्त होती है वहाँ से किसी अन्य की सीमा आरम्भ हो जाती है I हर एक के अपने कुछ अधिकार प्रकृति और समाज के द्वारा निर्धारित किये गये हैं! यहाँ पर यह विचारणीय हो जाता है कि वह ईश, ईश्वर, परमात्मा, अल्लाह, खुदा, गॉड, दाता, धाता, जो कर्ता है कारण है और कारक है, वह कौन है, क्या है? सम्पूर्ण सृष्टि के समस्त जीव चराचर, जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, मनुष्य,
Page 11 of 331

Page 12 of 331

पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, इन सबका रचियता, निर्माता, बनानेवाला आखिर कोई तो

है।

हमारे शरीर में कोशिकाएं बनती बिगड़ती रहती हैं, मरती हैं नई पैदा होती हैं, हम भोजन करते हैं कोई ऐसी शक्ति या कोई तो है जो हमारी भोजन पचाने में, हमें स्वस्थ रखने में हमारा सहायक है, हमारी सहायता करता है। हमें सोचने-समझने की, चलने-फिरने की, हर प्रकार की सहायता, शक्ति, सामर्थ्य, क्षमता प्रदान करता है। हम जब सोते हैं तो हमारा दिल धडकता है इसमें कौन सहायक होता है, गर्भवास में कौन हमारे सभी अंगों का निर्माण करके सही स्थान पर आरोपण करता है। इस्लाम के अनुसार कहा जाता है अल्लाह- हु-अकवर अर्थात वह जो सबसे ऊपर सर्वशक्तिमान वही अकस्मात देने वाला (अकवर), जिसका देना-लेना या कोई अन्य कार्य दिखाई नहीं देता जो हमें स्वस्थ रखता है, हमारा भोजन पचाता है, न जाने कितनी तरह से हमारी सहायता करता है जिनके विषय में हम जान ही नहीं सकते हैं, वह अल्लाह, भगवान, ईश्वर, गॉड, परमात्मा, ब्रह्म अपनी सोच-समझ अनुसार जो चाहे जिस नाम से पुकारें वही तो सबका रचियता, स्रष्टा-द्रष्टा, कर्ता-कारक-कारण है।

विज्ञान में आपने अमीबा, और पैरामिशियम नामक एक कोशिका वाले जीवों के विषय में पढ़ा होगा।ये एक

Page 12 of 331

कोशिकीय जीव वृद्धि को प्राप्त हो कर समय पर स्वयं दो भागों में बंट जाते हैं, जो कि ईश्वर, ब्रह्म के अस्तित्व तथा उसकी ईश्वरीय महिमा का सबसे बड़ा उदाहरण है। संसार के अज्ञानी जन अपने घमंड में ‘यह मैं हूं, यह मेरा है’ इसप्रकार कहते रहते हैंI

सृष्टि-वर्णन, सृष्टि-रचना सम्बन्धी सार के विषय में अनेकों अध्येताओं, महात्मा-महापुरुषों एवं अनेकानेक ऋषि-मुनियों, विचारकों ने समय-समय पर अपने अनुभव, अपनी कल्पना, अपनी-अपनी व्याख्या प्रसारित की I

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् I

स भूमिँ् सर्वत:
स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङगुलम् II (पु.सू.1)

अन्वय:- स: सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् पुरुषः I स सर्वत: भूमिं स्पृत्वा अत्य दशाङ्गुलं अतिष्ठत् II

शब्दार्थ:- सहस्र = हजार; शीर्ष = सिर; पुरुष: == प्रकृति का अधिष्ठाता, परमात्मा; अक्ष = नेत्र,आंख; पात् = पांव, पैर, चरण; भूमि = धरती, पृथ्वी; सर्वत: = चारों ओर से, सब ओर से; स्पृत्वा = स्पर्श करके; अत्य--घेर कर, दबा कर, अतिक्रमण करके; तिष्ठति = स्थापित है, बैठा है; दशाङ्गुलं = दस अङ्गुल के बराबर; (उवट-भाष्य अनुसार-- दशाङ्गुल परिमाण वाला, हृदय-स्थान I
Page 13 of 331

अर्थ;- जो हजारों सिर, हजारों नेत्र, और हजारों चरणों को धारण करता है, जो कि सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, और वहां भी जिनको मापना संभव नहीं था अर्थात अनंत तक वह ॐ कार स्वरूप विराट पुरुष सब ओर से दश अङ्गुल के बराबर भूमि को अतिक्रमण करके (घेर कर बैठा हुआ है) स्थितहै I अथवा इन्द्रियां अथवा नासिकाग्र भाग) (श्वेताश्वतर-उपनिषद अध्याय 3 के श्लोक 14) और (कृष्णयजुर्वेदीयपुरुषसूक्त में यह श्लोक इस प्रकार मिलता है):--ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् I

स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङगुलम् II

इस की दूसरी पंक्ति का अन्वय इस प्रकार है:-स: भूमिम् विश्वत: वृत्वा अति

दशांगुलम् अतिष्ठत् I

शब्दार्थ:- सहस्रशीर्षा==हजारों सिर वाला; पुरुषः== प्रकृति का अधिष्ठाता, परमात्मा; सहस्राक्ष:==हजारों आंख वाला; सहस्रपात्==हजारों पांव वाला; स:==वह; भूमिं==पृथ्वी को; विश्वत:==चारोंओर से; वृत्वा==घेर कर; अत्यतिष्ठत्==दूर (परे) खड़ा है; दश+अङगुलम्==दस अंगुल भर I

अर्थ:- वह पुरुष हजारों सिरों वाला, हजारों आंखों वाला, हजारों पांवों वाला है I वह हाथ से
Page 14 of 331

Page 15 of 331

ब्रह्मांड को सब ओर से छुए हुए है, फिर भी उसकी दसों उँगलियाँ दूर खड़ी हैं I घेरने से तो दसों उँगलियाँ भर जानी चाहियें, परन्तु ब्रह्मांड इतना तुच्छ अर्थात इतना छोटा है कि इसे घेर कर
भी उस के दोनों हाथों की दसों उँगलियाँ मानो खाली रह जाती हैं I वह पुरुष ही भूत, भविष्य और वर्तमान है, वह ही शाश्वतता का स्वामी है, इस सृष्टि रुपी भोजन से वह स्वयं को अप्रकट से प्रकट करता है I

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:-

सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्मांड की भूमि को सब ओर से व्याप्त करके स्थित है और इससे दस अङगुल ऊपर भी है I उन परमात्मा के मस्तक, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और चरण आदि कर्मेन्द्रियाँ हजारों हैं---असंख्य हैं I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- जो सहस्रों सिरवाले, सहस्रों नेत्रवाले और सहस्रों चरणवाले विराट पुरुष हैं, वे सारे ब्रह्मांड को आदि से अनंत तक आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:--
उन परम् पुरुष के सहस्रों (अनंत) मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं । वे इस सम्पूर्ण विश्व की समस्त भूमि (पूरे स्थान)-की सब ओर से

Page 15 of 331

व्याप्त करके इससे दस अंगुल (अनंत-योजन) उपर स्थित हैं अर्थात वे ब्रह्माण्ड में व्यापक होते हुए उससे परे भी हैं ।

‘परमेश्वर के सर्वात्म भाव या विराट्स्वरूप का वर्णन’ ईशादि नौ उपनिषद्

(शङ्करभाष्यार्थ) में इस भाव को कुछ यूं प्रकट किया गया है------वह परमेश्वर पुरुष एवं अंतरात्मा है—यह कहा गया, अब सबकी तद्रूपता प्रदर्शित करने के लिए श्रुति फिर भी उसका सर्वात्मभाव दिखलाती है I कहा भी है—“अध्यारोप और अपवाद के द्वारा*[*अध्यारोप और अपवाद—ये वेदांत के पारिभाषिक शब्द हैं I किसी सत्य वस्तु में असत्य पदार्थ का भ्रम होना अध्यारोप है, जैसे रज्जू (रस्सी) में सर्प-सांप की भ्रान्ति; तथा उस असत्य पदार्थ के बाधपूर्वक परमार्थ-सत्य को प्रदर्शित कराना अपवाद है, जैसे कल्पित सर्प के निराकरण द्वारा उसकी अधिष्ठानभूता रज्जू का भान I इसी प्रकार निष्प्रपंच ब्रह्म में माया का आरोप करके प्रपंच-प्रतीति की व्यवस्था की जाती है और प्रपंच के अपवाद द्वारा शुद्ध ब्रह्म का साक्षात्कार कराया जाता है, परन्तु वस्तुत: ये दोनों प्रपंच के ही अंतर्गत हैं, अखंड चिन्मात्र शुद्ध ब्रह्म में तो किसी भी प्रकार के अध्यारोप या अपवाद का अवकाश ही नहीं है I इस प्रकार अध्यारोप और अपवाद द्वारा उस निर्विशेष का सविशेष रूप से वर्णन किया जाता है I
Page 16 of 331

निष्प्रपंच को प्रपंचित किया जाता है ”
इत्यादि ।---

भाष्य --सहस्राण्यनन्तानि शीर्षाण्यस्येति
सहस्रशीर्षा । पुरुष : पूर्ण : । एवामुत्तरत्र
योजनीयम् । स भूमिं भुवनं सर्वतो ऽन्तर्बहिश्च
वृत्वा व्याप्यात्यतिष्ठदतीत्य भुवनं
समधितिष्ठति । दशाङ्गुलं हृदयं तत्राधितिष्ठति
।

अर्थ - इसके सहस्र अर्थात् अनंत सिर हैं इसलिए यह
सहस्र सिर वाला है । पुरुष अर्थात् पूर्ण है इसी
प्रकार आगे के विशेषणों का भी अर्थ लेना चाहिए ।
*[*अर्थात् सहस्र यानी अनंत अक्षि (नेत्र) और
पद(चरण) होने के कारण वह सहस्राक्ष और सहस्रपाद
है ।] वह भूमि अर्थात् संसार को सर्वत :--बाहर और
भीतर से व्याप्त करके स्थित है । दशांगुल
अर्थात् अनंत --अपाररूप से । अथवा नाभि से ऊपर जो
दस अंगुल परिमाण वाला हृदय है उसमें स्थित है ।

भाव -- वह सहस्र सिर , सहस्र नेत्र और सहस्र चरणों
वाला है तथा पूर्ण है । वह

भूमि को सब और से व्याप्त कर अनंत रूप से उसका
अतिक्रमण करके स्थित है । [अथवा ऐसा अर्थ करना
चाहिए कि नाभि से ऊपर दस अंगुल परिमाण वाले हृदय
में स्थित है]

Page 18 of 331

स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ईशादिनवोपनिषद् इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—---

मंत्रार्थ—वह परम् पुरुष हजारों सिर वाला, हजारों आँखों वाला हजारों पैर वाला वह समस्त जगत् को सब और से घेर कर नाभि से दस अंगुल ऊपर हृदय में स्थित है I

व्याख्या—वह परम् पुरुष परमेश्वर सब अवयवों से रहित होने पर भी उनके सिर, आँख और पैर आदि सब अंग अनंत एवं असंख्य हैं I

इसका तात्पर्य यह है कि वे जगत् की
उत्पत्ति, स्थिति, एवं संहार के एकमात्र कारण होने की वजह से संसार को बाहर, भीतर, ऊपर-नीचे अर्थात् पूर्ण रूप से व्याप्त किये हैं I फिर भी संसार का अतिक्रमण करके नाभि से ऊपर जो दस अंगुल परिमाण वाला हृदय है उसमें अन्तर्यामी रूप से प्रतिष्ठित है I

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

ऋषि—नारायण; उत्तरनारायण: I देवता—पुरुष:, ईशान:, स्रष्टा, स्राश्टेश्वर:, आदित्य:, सूर्य:, विश्वेदेवा: I छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् I

Page 18 of 331

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष:
सहस्रपात् I

स भूमिँं सर्वत: स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङगुलम् II

सहस्रों शिर, सहस्रों नेत्र वाले, और सहस्रों चरणवाले यह परम पुरुष पंचभूतोंको

व्याप्त करते हुए, दश अंगुलि के बराबर प्रदेश को अतिक्रमण कर स्थित हुए हैं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुष सूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् I

स भूमिँ् सर्वत: स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङगुलम् II

(जो) सहस्रों सिर वाले, सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों चरण वाले विराट् पुरुष् हैं, वे सारे ब्रह्मांड को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं I

(दशान्गुलम्—माप में पूर्णांक अर्थात् 9 से भी 1 अधिक है)

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् I
Page 19 of 331

Page 20 of 331

स भूमिँ् सर्वत सपृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् II

सहस्रशीर्षेति सहस्रऽशीर्षा I पुरुष: I सहस्रऽअक्षः I सहस्रऽपात् II स:भूमिम् सर्वतः स्पृत्वा। अति। अतिष्ठत् । दशाङ्गुलमिति दशऽअङ्गुलाम् I

पदार्थ:--(सहस्रशीर्षा) सहस्राण्यसङ्ख्यातानि शिरांसि यस्मिन् स: (पुरुष:) जगदीश्वर:, ‘पुरुष: पुरिषाद: पुरिशय: पूरयतेर्वा पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य। यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेकदं पूर्ण पुरुषेण सर्वमित्यपि निगमो भवति।। (निरू॰2.3)’ (सहस्राक्ष:) सहस्राण्यसंख्यातान्यक्षीणि यस्मिन स: (सहस्रपात) सहस्राण्यसंख्याता: पादा यस्मिन् स: (स:) (भूमिम्) भूगोलम् (सर्वत:) सर्वस्माद्देशात् (स्पृत्वा) अभिव्याप्य (अति) उल्लङ्घने अतिष्ठत् (दशाङ्गुलम्) पञ्चस्थूल-- सूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यङ्गानि यस्य तज्जगत् ।।

अन्वय:-- हे मनुष्या:! य: सहस्रशीर्षा सहस्राक्ष: सहस्रपात् पुरुषोऽस्ति, स सर्वतो

भूमिं स्पृत्वा दशाङ्गुलमत्यतिष्ठत् तमेवोपासीध्वम् II

Page 20 of 331

Page 21 of 331

भावार्थ:--हे मनुष्या:! यस्मिन् पूर्णे परमात्मन्यस्मदादीनामसंख्यातानि

शिरांस्यक्षीणी पादादीन्यङ्गानि च सन्ति यो भूम्याद्युपलक्षितं पञ्चभि: स्थूलैर्भूतै: सूक्ष्मैश्च युक्तं जगत् स्वसत्तया प्रपूर्य्य यत्र जगन्नास्ति तत्राऽपि पूर्णोऽस्ति तं सर्वनिर्मातारं परिपूर्णं सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्याशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं परमेश्वरं विहायाऽन्यस्योपासनां यूयं कदाचिन्नैव कुरुत किन्त्वस्योपासनेन धर्मार्थकाममोक्षानलं कुर्यात् ।

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! जो (सहस्रशीर्षा) सब प्राणियों के हजारों शिर (सहस्राक्ष:) हजारों नेत्र और (सहस्रपात्) असङ्ख्य पाद जिसके बीच में हैं, ऐसा (पुरुष:) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक जगदीश्वर है (स:) वह (सर्वत:) सब देशों से (भूमिम्) भूगोल में (स्पृत्वा) सब ओर से व्याप्त हो के (दशाङ्गुलम्) पांच स्थूलभूत, पांच सूक्ष्मभूत ये दश जिनके अवयव हैं, उस सब जगत् को (अति, अतिष्ठत्) उल्लंघन कर स्थित होता अर्थात् सब से पृथक् भी स्थिर होता है ।।

भावार्थ:--हे मनुष्यो! जिस पूर्ण परमात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर आंखें और पग आदि अवयव हैं, जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच

Page 21 of 331

Page 22 of 331

स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहाँ जगत् नहीं वहाँ भी पूर्ण हो रहा है, उस सब जगत् के बनाने वाले परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य-शुद्ध-

बुद्ध-मुक्तस्वभाव परमेश्वर को छोड़ के अन्य की उपासना तुम कभी न करो, किन्तु

उस ईश्वर की उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करो ।।

पुरुष इत्यस्य नारायण ऋषि: । ईशानो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द: । गान्धार: स्वर: । पुनस्तमेव विषयमाह ।। फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है l

पुरुष एवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् I उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति II

(श्वेताश्वतर-उपनिषद अध्याय 3 श्लोक 15, पु.सू. 2)

(कृष्णयजुर्वेदीय पुरुषसूक्त मे भाव्यम् के स्थान पर “भव्यम्” पाठ है)

अन्वय:- इदम् सर्वं पुरुषः एव यत् भूतं यत् च भाव्यम् I उत् अमृतत्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति II

Page 22 of 331

Page 23 of 331

अर्थ:-- यह सब वर्तमान विश्व, बीता हुआ विश्व और आगे होने वाला विश्व, यह सब परम पुरुष रूप ही है और जो अन्न रूप फल के कारण विश्व यह सब परम पुरुष रूप ही है और जो अन्न रूप फल के कारण विश्व को प्राप्त होता है, उस अमृत तत्व का स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही है I अर्थात जो सृष्टि बन चुकी, जो बननेवाली है, यह सब विराट पुरुष ही हैं | इस अमर जीव-जगत (मोक्ष) के भी वे ही स्वामी हैं और जो अन्न द्वारा उत्पन्न हो कर वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वे ही स्वामी और स्रष्टा हैं I

भावार्थ:- जो हुआ है, जो हो रहा है, और जो आगे होगा, वह सब कुछ उस

पुरुषमें ही निहित है, उसमें ही सब कुछ विद्यमान है, जो अमृत है और जो

अमृत नहीं है, अन्न से बढ़ता है, उस सब का भी वही स्वामी है I

शब्दार्थ:- इदं = यह; सर्वं =सब कुछ; यद्, यत् =जो कुछ; भूतं = बीता हुआ;

च—और; भाव्यम = आगे होने वाला है; अन्नेन = अन्न आदि फल के द्वारा; अतिरोहति =उत्पन्न हो
कर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है; स: = वह; एव =
ही; उत = तथा, और; अमृतत्वस्य = उस अमृत तत्व का; ईशान = स्वामी, ईश, स्रष्टा; विशेष—अमृत शब्द
के तीन अर्थ बताये गये हैं—अमृत, जल, सुधा देवता

Page 23 of 331

I इसी दृष्टि इस मंत्र की अनेक व्याख्यायें की गई हैं I इसमें अनुष्टुप् छन्द है I

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:-यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, सब परमात्मा का ही स्वरुप है, भूत और भविष्य जगत् भी परमात्मा ही है I इतना ही नहीं, वह परमात्मा मुक्ति का स्वामी है, तथापि ये जो अन्न से उत्पन्न होने वाले जीव हैं, उन सबका भी शासन-सबको नियम के अन्दर रखने वाला वह परमात्मा ही हैI

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:--- यह जो इस समय वर्तमान (जगत्) है, जो बीत गया और जो आगे होने वाला है, वह सब वे परम् पुरुष ही हैं। इसके अतिरिक्त वे देवताओं के तथा जो अन्न से (भोजन द्वारा) जीवित रहते हैं, उन सबके भी ईश्वर ही (अधीश्वर-शासक) हैं । किन्तु सर्वात्मक होने पर तो ब्रह्म सप्रपंच (सविशेष) सिद्ध होगा; क्योंकि उससे अतिरिक्त प्रपंच की सत्ता ही नहीं है,

इस पर श्रुति कहती है--ईशादि नौ उपनिषद् (शङ्करभाष्यार्थ) में इस भाव को कुछ यूं प्रकट किया गया है------

भाष्य—पुरुष एवेदमिति I पुरुष एवेदं सर्वं यदन्नेनातिरोहति यदिदं दृश्यते वर्तमानं यद्भूतं यच्च भव्यं भविष्यत् I किञ्च-

Page 24 of 331

Page 25 of 331

उतामृतत्वस्ये-शान: I यच्चान्नेनाति- रोहति यद्वर्तते तस्येशान: I

अर्थ— ‘पुरुष एवेदम्’ इत्यादि I यह जो अन्न से बढ़ता है तथा यह जो वर्तमान दिखाई देता है तथा जो कुछ भूत और भविष्यत् है वह सब पुरुष ही है I इसके सिवा, वह अमृतत्व का ईशान है अर्थात् अमरण – धर्मत्व यानी कैवल्यपद का भी प्रभु है तथा जो अन्न से बढ़ता है, जो विद्यमान है उसका यह स्वामी है I

भाव—जो कुछ भूत और भविष्यत् है एवं जो अन्न के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है वह सब पुरुष ही है; तथा वही अमृतत्व(मुक्ति)-का भी प्रभु है I

स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ईशादिनवोपनिषद् इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं
— -- ------------------------------ ------------------------------ --

मंत्रार्थ—जो अब से पहले हो चुका है, जो भविष्य में होने वाला है और जो खाद्य पदार्थों से इस समय बढ़ रहा है यह समस्त जगत् परम् पुरुष परमात्मा ही है और वही अमृत स्वरूप मोक्ष का स्वामी है I

व्याख्या--वह समस्त जगत् जो अब से पहले था, जो भविष्य में होने वाला है तथा जो वर्तमान कल में अन्न से वृद्धि प्राप्त कर रहा है वह कुछ और
नहीं प्रत्युत परम् पुरुष परमात्मा का ही

Page 25 of 331

स्वरूप है । वे अपनी इच्छा से संकल्प से इस रूप
में स्वयं प्रकट होते हैं । वे अमृत स्वरूप मोक्ष
के एक मात्र स्वामी हैं अर्थात् बंधन से मुक्त
कराकर अपनी प्राप्ति करा देते हैं । अत: अपने ही
हित के लिए साधकों को उन्हीं की अनन्य भक्ति से
शरण में जाना चाहिए ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा ,
द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में
पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस
प्रकार है

पुरुष एवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

यह वर्तमान विश्व , बीता हुआ विश्व और आगे होने
वाला विश्व यह सब परम पुरुष रूप ही है , और जो
अन्न रूप फल के कारणविश्व रूप को प्राप्त होता
है उस अमृतत्व का स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही है ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस
प्रकार है :--

पुरुषऽएवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्
।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

जो सृष्टि बन चुकी , जो बनने वाली है , वह सब
विराट् पुरुष ही हैं । इस अमर

जीव -जगत् के भी वही स्वामी हैं । जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं , उनके भी वही स्वामी हैं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या :-

पुरुषऽएवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

पुरुष :। एव । इदम । सर्वम् । यत् । च । भाव्यम् ॥ उत । अमृतत्वस्येत्यमृतऽत्वस्य । ईशान : । यत् । अन्नेन । अतिरोहतीत्यतिऽरोहति ॥

पदार्थ :-- (पुरुष :) सत्यैर्गुणकर्मस्वाभावैः परिपूर्ण : (एव) (इद्म्) प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षात्मकं जगत् (सर्वम्) सम्पूर्णम् (यत्) (भूतम्) उत्पन्नम् (यत्) (च) (भाव्यम्) उत्पत्स्यमानम् (उत्) अपि (अमृतत्वस्य) अविनाशिनो मोक्षसुखस्य कारणस्य वा (ईशान :) अधिष्ठाता (यत्) (अन्नेन) पृथिव्यादिना (अतिरोहति) अत्यन्तं वर्द्धते ।

अन्वय :-- हे मनुष्या : ! यद्भूतं यच्च भाव्यमुतापि यदन्नेनाऽतिरोहति तदिदं सर्वममृतत्वस्येशान : पुरुष एव रचयति ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्या :! येनेश्वरेण यदा यदा सृष्टिरभूत् तदा -तदा निर्माता ,इदानीं धरति पुनरविनाश्य रचिश्यति यदाधारेण सर्व वर्त्तते

Page 28 of 331

वर्द्धते च तमेव परेशं परमामानमुपासीध्वं नाऽस्मादितरम् II

पदार्थ:--हे मनुष्यो! (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (च) और (जो) (भाव्यम्) उत्पन्न होनेवाला (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से (अतिरोहति) अत्यन्त बढ़ता है, उस (इदम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप (सर्वम्) समस्त जगत् को (अमृतत्वस्य) अविनाशी मोक्षसुख वा कारण का (ईशान:) अधिष्ठाता (पुरुष:) सत्य गुण, कर्म, स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा (एव) ही रचता है II

भावार्थ:-- हे मनुष्यो! जिस ईश्वर ने जब-जब सृष्टि हुई तब-तब रची, इस समय धारण करता फिर विनाश करके रचेगा I जिसके आधार से सब वर्तमान है और बढ़ता है, उसी सबके स्वामी परमात्मा की उपासना करो, इससे भिन्न की नहीं II

एतावानित्यस्य नारायण ऋषि: I पुरुषो देवता I निचृदनुष्टुप् छन्द: I गान्धार: स्वर: II पुनस्तमेव विषयमाह II फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है II

____ ___

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुष: I

Page 28 of 331

Page 29 of 331

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि II (पु.सू.3)

अन्वय:- एतावान अस्य महिमा पूरूष: च अत: ज्यायान् I विश्वा भूतानि अस्य पादो अस्य त्रिपाद अमृतं दिवि II

शब्दार्थ:--एतावान्----पूर्वोक्त वर्णित, इतना तो; अस्य---इसका; महिमा-----

माहात्म्य; पुरुष:----पुरुष, ब्रह्म; अत:----इसलिए, महिमा से भी; ज्यायान्---महान, बड़ा; पाद:--भाग, हिस्सा, अंश; विश्वा---सम्पूर्ण विश्व का; जगत्--- प्राणी समूह; त्रिपाद----तीन भाग; अमृतम्---अमृत है,(अर्थात वह) दिवि—द्युलोक; अन्तरिक्ष, स्वर्ग;

अर्थ- पूर्वोक्त श्लोकों में जो वर्णन किया गया है इतना तो त्रिकालात्मक विश्व इस पुरुष की महिमा ही है और वह पुरुष स्वयं तो इस विश्व से अत्यधिक बड़ा है महान हैI सभी प्राणि-समूह समष्टि
– ब्रह्मांड, इस पुरुष के चतुर्थ भाग(अंश) हैं I इस पुरुष का त्रिपात्-रुप अविनाशी और अपने ही प्रकाशात्मक स्वरुप में स्थित है I अर्थात विराट पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है I इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण (अंश) में सभी प्राणी हैं और तीन भाग (अंश) अनंत अंतरिक्ष में स्थित हैं I

Page 29 of 331

Page 30 of 331

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:---भूत, भविष्य और वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाला जितना भी जगत् है----यह सब इस पुरुष की महिमा है, इस परमात्मा का विभूति- विस्तार है I उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्मांडमय विराट्स्वरूप से भी बहुत बड़ा है I यह सारा विश्व (ये तीनों लोक) तो उसके एक पाद में है, उसकी एक चौपाई में अर्थात एक पाये में समाप्त हो जाते हैं I अभी उसके तीन पाद और शेष हैं I यह त्रिपादस्वरूप अमृत है---अविनाशी है और परम प्रकाशमय द्युलोक अर्थात् अपने स्वरूप में ही स्थित है I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- यह भूत, भविष्य, वर्तमान से सम्बद्ध समस्त जगत् इन है। उन परमेश्वर की एक पाद विभूति (चतुर्थांश)- में ही यह पंच भूतात्मक विश्व है । उनकी शेष त्रिपाद विभूति में शाश्वत दिव्य लोक [(वैकुण्ठ लोक—जहाँ किसी प्रकार की कोई कुंठा नहीं होती), गोलोक, साकेत धाम अथवा ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि] हैं ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

Page 30 of 331

Page 31 of 331

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुष: I

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं
दिवि II

यह त्रिकालात्मक विश्व इस पुरुष की महिमा ही है और यह पुरुष स्वयं तो इस

विश्व से अधिक है I सभी प्राणी समूह इस पुरुष के चतुर्थ भाग हैं I इस पुरुष का त्रिपात् रूप अविनाशी और अपने ही प्रकाशात्मक स्वरूप में स्थित हैI

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुष: I

पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि II

विराट् पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है I इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी हैं और तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में स्थित हैं I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च
पूरुष: I

Page 31 of 331

पादोऽस्य विश्वा भूतानि
त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

एतावान् । अस्य । महिमा । अतः। ज्यायान् । च ।
पूरुषः॥ पादः। अस्य । विश्वा ।

भूतानि । त्रिपादिति । त्रिऽपात् । अस्य । अमृतम् ।
दिवि ॥

पदार्थः-- (एतावान्) दृश्यादृश्यं ब्रह्माण्डरूपम् (अस्य) जगदीश्वरस्य (महिमा) माहात्म्यम् (अतः) अस्मात् (ज्यायान्) अतिशायेन प्रशस्तो महान् (च) (पूरुषः) परिपूर्णः (पादः) एकोंशः (अस्य) (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भूतानि) पृथिव्यादीनि (त्रिपात्) त्रयः पादाः यस्मिन् (अस्य) जगत्स्रष्टुः (अमृतम्) नाशरहितम् (दिवि) द्योतनात्मके स्वरूपे ॥

अन्वयः---हे मनुष्याः! अस्य परमेश्वरस्यैतावान् महिमाऽतोऽयं पूरुषो ज्यायानस्य च विश्वा भूतान्येकः पादोऽस्य त्रिपादमृतं दिवि वर्त्तते ।

भावार्थः---इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिलोकलोकान्तरं चराचरं यावज्जगदस्ति

तच्चित्रविचित्ररचनानुमानेनेश्वरस्य महत्त्वं सम्पाद्योत्पत्तिस्थितिप्रलयरूपेण कालत्रये ह्रासवृद्धयादिनाऽपि परमेश्वरस्य

Page 33 of 331

चतुर्थांशे तिष्ठति नैवास्य तुरीयांशस्याप्यवधिं प्राप्नोति । अस्य सामर्थ्यस्यांशत्रयं स्वेऽविनाशिनि मोक्षस्वरूपे सदैव वर्त्तते नानेन कथनेन तस्याऽनन्तत्वं विहन्यते, किन्तु जगदपेक्षया तस्य महत्त्वं जगतो न्यूनत्वञ्च ज्ञाप्यते ।।

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! (अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) यह दृश्य-अदृश्य ब्रह्माण्ड (महिमा) महत्त्वसूचक है (अत:) इस ब्रह्माण्ड से यह (पुरुष:) परिपूर्ण परमात्मा (ज्यायान्) अति प्रशंसित और बड़ा है (च) और (अस्य) इस ईश्वर के (विश्वा) सब (भूतानि) पृथिव्यादि चराचर जगत् एक (पाद:) अंश है और (अस्य) इस जगत्स्रष्टा का (त्रिपाद्) तीन अंश (अमृतम्) नाशरहित महिमा (दिवि) द्योतात्मक अपने स्वरूप में है ।।

भावार्थ:-- यह सब सूर्य-चन्द्रादि लोक-लोकान्तर चराचर जितना जगत् है, वह सब चित्र-विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के मह्त्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने-बढने से भी परमेश्वर के चतुर्थांश में ही रहता, किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता और इस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगडता, किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका महत्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है ।।

Page 33 of 331

Page 34 of 331

त्रिपादित्यस्य नारायण ऋषि:। पुरुषो देवता। अनुष्टुप छन्द: । गान्धार: स्वर: ।। पुनस्तमेव विषयमाह ।। फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।-----------

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुष: पादोऽस्येहाभवत् पुन: I

ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि II
(पु॰ सू॰ 4)

अन्वयः--- त्रिपाद पुरुषः ऊर्ध्व उदैत्, अस्य पादो इह पुनः अभवत् I ततो विश्वं

व्यक्रामत् साशना शने अभि I

शब्दार्थ:--- त्रिपाद---तीन पैरों (अंशों) से; ऊर्ध्व---ऊपर; उदैत---उदित हुआ, प्रकट हुआ, प्रकाशित हुआ; पादो---चरण, अंश; अस्य—उसके; इह--- यहां; पुन:-- फ़िर् से; अभवत्---हो गया; तत:--तब; विश्वम्--- विश्व को; व्यक्रामत्----अतिक्रमण कर लिया; साशना---स्वेच्छा से; शने---धीरे-धीरे; अभि---अच्छी तरह, भलिभांति;

अर्थ:-- वह पूर्ण पुरुष अपने तीन पद,अर्थात तीन चरण अर्थात तीन पग ऊपर

उठ गया और स्थित हो गया, उसके पद यहाँ फिर से प्रकट होगये (दिखाई देने

Page 34 of 331

Page 35 of 331

लगे) अर्थात वह परम पूर्ण पुरुष रूप से प्रकट होगया I तब उसने स्वेच्छा से

धीरे धीरे इस सम्पूर्ण रूप से भलीभांति, अच्छी तरह से अतिक्रमण कर लियाI

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- यह त्रिपाद पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात वह परमात्मा अज्ञान के कार्यभूत इस संसार से पृथक् तथा यहाँ के गुण दोषों से अछूता रह कर ऊँची स्थिति में विराजमान है I उसका एक अंश मात्र माया के सम्पर्क में आकर यहाँ जगत् के रूप में उत्पन्न हुआ, फिर वह मायावश जड़-चेतनमयी नाना प्रकार की सृष्टि के रूप में स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-चार भागोंवाले विराट पुरुष केएक भाग में यह सारा संसार, जड़ और चेतन विविध रूपों में समाहित है I इसके तीन भाग अनंत अंतरिक्षमें समाये हुए हैं I

महिधर ने साशनाशने का अर्थ स्वर्ग एवं
मोक्ष से लिया है जबकि मैकडोनल ने इसका अर्थ खाने वाले और न खाने वाले माना है एवं पीटर्सन
ने सजीव और निर्जीव संसार किया है, जो कि अमान्य लगता है क्योंकि संसार एक ही है जिसमें सजीव निर्जीव अर्थात जड़-चेतन, स्थावर-जंगम सभी शामिल हैं I

Page 35 of 331

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद -कथाङ्क में अर्थ :-
वे परम् पुरुष स्वरूपत : इस

मायिक जगत् से परे त्रिपाद विभूति में
प्रकाशमान हैं (वहां माया का प्रवेश न होने से
उनका स्वरूप नित्य प्रकाशमान है) इस विश्व के
रूप में उनका एक पाद ही प्रकट हुआ है अर्थात एक
पाद से वे ही विश्वरूप भी हैं , इसलिए वे ही
सम्पूर्ण जड़ एवं चेतनमय -उभयात्मक जगत् को
परिव्याप्त किये हुए हैं ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा ,
द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में
पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस
प्रकार है :-

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष :
पादोऽस्येहाभवत्पुन : ।

ततो विश्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

संसार के स्पर्श से हीन यह तीन पद वाला परम
पुरुष उच्च स्थान में स्थित हुआ है । इसका एक पाद
इस संसार में सृष्टि संहार द्वारा बारम्बार
आवागमन करता है और विविध रूप होकर स्थावर , जंगम
प्राणियों को देखता हुआ व्याप्त करता है ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस
प्रकार है :--

त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुष :
पादोस्येहाभवत् पुन :।

ततो विश्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

चार भागों वाले विराट् पुरुष के एक भाग में यह सारा संसार जड़ और चेतन विविध रूपों में समाहित है । इसके तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाये हुए हैं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या :-

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष :
पादोऽस्येहाभवत् पुन :।

ततो विश्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥

त्रिपादिति त्रिऽपात् । ऊर्ध्व :। उत् । ऐत् । पुरुष :। पाद :। अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति पुन :॥ ततः। विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशनेऽइति साशनानशने । अभि॥

पदार्थ :-- (त्रिपात्) त्रय : पादा अंशा यस्य स : (ऊर्ध्व :) सर्वेभ्य : उत्कृष्ट : संसारात् पृथक् मुक्तिरूप : (उत्) (ऐत्) उदेति (पुरुष :) पालकः (पाद :) एको भाग : (अस्य) (इह) जगति (अभवत्) भवति (पुन :) पुन : पुन : (ततः) ततोऽनन्तरम् (विषवङ्) यो विषु सर्वत्राञ्चति प्राप्नोति (वि) विशेषेण (अक्रामत) व्याप्नोति (साशनानशने) अशनेन भोजनेन सह वर्त्तमानं साशनं न विद्यतेऽशनं यस्य

तदनशनं साशनञ्चानशनञ्च ते प्राण्यपाणिनौ (अभि) अभिलक्ष्य ॥

भावार्थ :--अयं परमेश्वर : कार्यजगत : पृथगंशत्रयेण प्रकाशित : सन् एकांशस्वसामर्थ्येन सर्वं जगत्पुन : पुनरुत्पादयति पश्चात् तस्मिन् चराऽचरे जगति व्याप्य तिष्ठति ॥

पदार्थ :-- पूर्वोक्त (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (पुरुष :) पालक परमेश्वर (ऊर्ध्व) सबसे उत्तम मुक्तिस्वरूप संसार से पृथक (उत् , ऐत) उदयको प्राप्त होता है । (अस्य) इस पुरुष का (पाद :)एक भाग (इह) इस जगत् में (पुन :) बार -बार उत्पत्ति - प्रलय के चक्र से (अभवत्) होता है (तत:) इसके अनन्तर (साशनानशने) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के (अभि) प्रति (विषवङ्) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ (वि ,अक्रामत्) विशेष कर व्याप्त होता है ॥

भावार्थ :--यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्य जगत् से पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को वार -वार उत्पन्न करता है , पीछे उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है।।४॥

ततो विराडित्यस्य नारायण ऋषिः। स्रष्टा देवता। अनुष्टप् छन्दः। गाधारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह । फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष : ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर :

॥

(पु॰सू॰ 5-कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में ततो की जगह "तस्मात् " पाठ है)

अन्वयः --- ततो विराट् अजायत विराज : अधि पुरुषः । स जात : अत्यरिच्यत

पश्चाद् भूमिं अथ : पुर : ।

शब्दार्थ :-- तत:--तब; विराट् ---विस्तृत ; अजायत—--उत्पन्न हुआ ; विराज :---प्रकाशमान ; अधि पुरुष :----आदि पुरुष ; स—उससे ; जात :--उत्पन्न हुए ; अत्यरिच्यत ---अनेक रुपों में , समष्टि ; पश्चाद् ----बादमें ; भूमिं ---भूमि को ; अथ:---तथा ; पुर :----भुवन , (14 भुवन);

अर्थ :-- तब वह प्रकाशमान आदिपुरुष प्रकट हुआ , (उत्पन्न हुआ) । उससे ब्रह्मांड उसके बाद भूमि अर्थात पृथ्वी और तीन लोक 14 भुवन आदि उत्पन्न हुए ।

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है ----- उस आदिपुरुष परमात्मा से विराट् की

Page 40 of 331

उत्पत्ति हुई ---यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ I इस ब्रह्मांड के ऊपर इसका अभिमानी एक पुरुष प्रकट हुआ I तात्पर्य यह की परमात्मा ने अपनी माया से विराट् ब्रह्मांड की रचना कर स्वयं ही उसमें
जीव रूप से प्रवेश किया I वे ही जीव ब्रह्मांड का अभिमानी देवता (हिरण्यगर्भ) हुआ I इस प्रकार उत्पन्न हो कर वह विराट् पुरुष पुन: देवता, तिर्यक् और मनुष्य आदि अनेकों रूपों में प्रकट हुआ I इसके बाद उसने भूमि को उत्पन्न किया, फिर जीवों के शरीरों की रचना की I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- उस विराट पुरुष से यह

ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ I उस विराट से समष्टि जीव उत्पन्न हुए | वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- उन्हीं आदि पुरुष से विराट् (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ । परम् पुरुष ही विराट् के,आदिपुरुष, अधिपुरुष-अधिदेवता (हिरण्यगर्भ)- रूप से उत्पन्न हो कर अत्यंत प्रकाशित हुए। पीछे उन्होंने भूमि (लोकादि) तथा शरीर (देव, मानव, तिर्यक, त्रियंच आदि) उत्पन्न किये ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में

Page 40 of 331

पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस
प्रकार है :-

ततो विराडजायत विराजो ऽ अधि पूरुष : ।

स जातो ऽ अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर :
॥

उस आदिपुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई । विराज
का अधिकरण करके एक ही

पुरुष हुआ । वह विराट् पुरुष उत्पन्न होकर
विभिन्न रूप वाला हुआ और उसने

पृथ्वी की रचना कर सप्तधातु वाले देहों की रचना
की ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस
प्रकार है :--

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष : । स जातो
अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर :।

उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ
। उस विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए । वही
देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ , जिसने सबसे
पहले पृथ्वी को , फिर शरीरधारियों को उत्पन्न
किया ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या :-

ततो विराडजायत विराजो ऽ अधि पूरुष : ।

स जातो ऽ अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुर :
॥

ततः। विराडिति विऽराट्। अजायत। विराज इति
विऽराज :। अधि। पूरुष :। पुरुषऽइति पुरुष :॥ सः।
जात :। अति। अरिच्यत । पश्चात् । भूमिम् । अथोऽइत्यथो
पुर :।।

पदार्थ :-- (ततः) तस्मात् पूर्णादादिपुरुषात्
(विराट्) विविधै : पदार्थै राजते

प्रकाशते स विराट् ब्रह्माण्डरूप : (अजायत)
जायते (विराज :) (अधि) उपरि अधिष्ठाता (पूरुष :)
परिपूर्ण : परमात्मा (सः) (जात :) प्रादुर्भूत :
(अति) (अरिच्यत) अतिरिक्तो भवति (पश्चात्)
(भूमिम्) (अथो) (पुर :) पुरस्ताद्वर्तमान :।।

अन्वय :--हे मनुष्यास्ततो विराडजायत विराजो अधि
पूरुष अधो स पुरो जातोऽरिच्यत पश्चाद् भूमिं
जनयति तं विजानीत।।

भावार्थ :-- परमेश्वरादेव सर्वं समष्टिरूपं
जगज्जायते स च तस्मात् पृथग्भूतो व्याप्तोऽपि
तत्कल्मषालिप्तोऽस्य सर्वस्याधिष्ठाता भवति।
एवं सामान्येन जगन्निर्माणमुक्त्वा विशेषतया
भूम्यादिनिर्माणं क्रमेणोच्यते।।

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! (ततः) उस सनातन पूर्ण
परमात्मा से (विराट्) विविध पदार्थों से

प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार (अजायत) उत्पन्न होता (विराज :) विराट् संसार के (अधि) ऊपर अधिष्ठाता (पूरुष :) परिपूर्ण परमात्मा होता है , (अथो) इसके अनन्तर (स:) वह पुरुष (पुर :) पहिले से (जात :) प्रसिद्ध हुआ (अति , अरिच्यत) जगत् से अतिरिक्त होता है (पश्चात्) पीछे (भूमिम्) पृथिवी को उत्पन्न करता है , उसको जानो।।

भावार्थ :-- परमेश्वर ही से सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है , वह उस जगत्

से पृथक उसमें व्याप्त भी हुआ उसकेदोषों में लिप्त न होके इस सबका अधिष्ठाता है । इस प्रकार सामान्य कर जगत् की रचना कहके विशेष कर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते हैं ।।

तस्मादित्यस्य नारायाण ऋषि :। पुरुषो देवता।। विराडनुष्टुप छन्द :। गान्धार : स्वर :।। पुनस्तमेव विषयमाह।। फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत : संभृतं पृषदाज्यम् ।

पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ।। (पु॰सू॰ 6) (कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में पाठ इस प्रकार है ----ॐ

Page 44 of 331

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत; जो कि इसके 14 वें श्लोक में दिया है)

अन्वय:--- तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत: पृषदाज्यम् पशून् तांश्चक्रे वायव्यान् अरण्यान् ग्राम्या: च ये I

शब्दार्थ:--- तस्माद्----उससे; यज्ञात्-----यज्ञ करने से; सर्वहुत:---सब यज्ञ, हवन करने से; उत्पन्न किया; पृषदाज्यम्---- इसके पश्चात्; पशून्----पशु; तांश्चक्रे----इसी कडी के, इसी प्रकार के; वायव्या--वायु; अरण्य----वन; ग्राम्या:----गांव; च---और; ये----ये;

अर्थ:-- उस यज्ञ से सब यज्ञ, हवन करने से इसके पश्चात पशु और इसी कड़ी के (इसीप्रकार के); वायु; वन; ग्राम(गाँव) व अन्यान्य को उत्पन्न किया I

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- जिसमें सब कुछ हवन

किया गया, उस पुरुष रुप यज्ञ से दही-घी आदि सामग्री उत्पन्न हुई I पुरुष ने

वन में उत्पन्न होने वाले हिरण आदि और गाँवों में होने वाले गाय, घोड़े आदि

वायु देवता-सम्बन्धी प्रसिद्ध पशुओं को भी उत्पन्न किया I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----

Page 44 of 331

Page 45 of 331

उस सर्वश्रेष्ठ विराट प्रकृति यज्ञ से दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ(जिससे विराट पुरुष

की पूजा होती है) | वायुदेव से संबंधित पशु
हरिण, गौ, अश्वादि की उत्पत्ति उस विराट पुरुष
के द्वारा ही हुई I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- जिसमें सबकुछ हवन किया गया है, उस यज्ञपुरुष से उसी ने दही, घी आदि उत्पन्न किये और वायु में, वन में, एवं ग्राम में रहने योग्य पशु उत्पन्न किये।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत: संभृतं
पृषदाज्यम् I

पशूँताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये II

उस सर्वात्मा की जिस यज्ञ में पूजा होती है, उस यज्ञ से दधि युक्त घृत सम्पादित हुआ I उसी पुरुष ने उन वायु देवता से सम्बन्धित पशुओं की उत्पत्ति की I वे पशु हरिण आदि तथा गो, अश्व आदि हैं I

Page 45 of 331

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस
प्रकार है :--

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत : सम्भृतं
पृषदाज्यम् ।

पशूँताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्
ग्राम्याश्च ये ॥

उस सर्वश्रेष्ठ विराट् प्रकृति यज्ञ से
दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ (जिससे विराट् पुरुष

की पूजा होती है) वायुदेव से संबन्धित पशु हरिण
गौ , अश्वादि की उत्पत्ति उस विराट्पुरुष के
द्वारा ही हुई ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या :-
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत : सम्भृतं पृषदाज्यम् ।

पशूँताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्
ग्राम्याश्च ये ।।

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वहुत इति सर्वऽहुत :।
सम्भृतमिति सम्ऽभृतम्। पशून्। तान् । चक्रे ।
वायव्यान् । आरण्या :। ग्राम्या :। च । ये ।

पदार्थ :-- (तस्मात्) पूर्वोक्तात् (यज्ञात्)
पूजनीयात् पुरुषात् (सर्वहुत :) सर्वैर्हूयत
आदीयते तस्मात् (सम्भृतम्) सम्यक् सिद्धं जातम्

Page 47 of 331

(पृषदाज्यम्) दध्याज्यादि भोज्यं वस्तु (पशून्) (तान्) (चक्रे) करोति (वायव्यान्) वायुवद्गुणान् (आरण्या:) अरण्ये भवा: सिहादय: (ग्राम्या:) ग्रामे भवा गवादय: (च) (ये)l

अन्वय:-- हे मनुष्यास्तस्मात् सर्वहुतो यज्ञात् सर्वं पृषदाज्यं सम्भृतं य आरण्या ग्राम्याश्च तान् वायव्यान् पशून् यश्चक्त्रे तं विजानीत्।।

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! (तस्मात्) उस पूर्वोक्त (सर्वहुत:) जो सबसे ग्रहण किया जाता उस (यज्ञात्) पूजनीय पुरुष परमात्मा से सब (पृषदाज्यम्) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु (सम्भृतम्) सम्यक् सिद्ध उत्पन्न हुआ (ये) जो (आरण्या:) वन के सिंह आदि (च) और (ग्राम्या:) ग्राम में हुए गौ आदि हैं (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के तुल्य गुणों वाले (पशून्) पशुओं को जो उत्पन्न करता है, उसको तुम लोग जानोll भावार्थ:-- जिस सबको ग्रहण करने योग्य, पूजनीय परमेश्वर ने सब जगत् के हित के लिये दही आदि भोग्य पदार्थ और ग्राम के तथा वन के पशु बनाये हैं, उसकी सब लोग उपासना करो ll

तस्मादित्यस्यस्य नारायण ऋषि:l स्रष्टेश्वरो देवता l अनुष्टुप छन्द:l गान्धार: स्वर:l

पुनस्तमेव विषयमाह l फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है l

Page 47 of 331

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच : सामानि जज्ञिरे ।

छन्दान्सि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ (पु ० सू ० 7)

(कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में पाठ इस प्रकार है ----ॐ तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न्पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः । तेन॑ दे॒वा अ॑यजन्त सा॒ध्या ऋष॑यश्च॒ ये ॥

तम् । यज्ञम् । बर्हिषि । प्र । औक्षन् । पुरुषम् । जातम् । अग्रतः । तेन । देवाः ।

अयजन्त। साध्याः । ऋषयः । च। ये ॥ ७ ॥ जबकि यहां 9 वें श्लोक में प्रदर्शित है)

अन्वय :--- तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत : ऋच: सामानि जज्ञिरे । तस्माद् छन्दान्सि जज्ञिरे तस्माद् यजु : अजायत ॥

शब्दार्थ :---- तस्माद् ---उससे ; यज्ञात् ---यज्ञ से ; सर्वहुत :---सब हवन करने से ; ऋच:--ऋग्वेद ; सामानि ---सामवेद ; जज्ञिरे ----उत्पन्न हुए ; तस्माद् ---उसी से ; छन्दान्सि --छन्द ; जज्ञिरे ----उत्पन्न हुए ; तस्माद् ---उसीसे ; यजु :---यजुर्वेद ; अजायत----उत्पन्न हुआ ;

Page 49 of 331

अर्थ:-- उस यज्ञ से सभी हवन करने से ऋग्वेद; सामवेद; उत्पन्न हुए उसीसे छंद उत्पन्न हुए; उसीसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ I

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है--जिसमें सब कुछ हवन

किया गया है उस यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद, और सामवेद प्रकट हुए, उसी से गायत्री आदि छन्दों की उत्पत्ति हुई तथा उसी से यजुर्वेद का भी प्रादुर्भाव हुआ I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----

उस विराट यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ | उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ अर्थात् वेद की ऋचाओं का प्रकटीकरण हुआ I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- उसी सर्वहूत यज्ञपुरुष से ऋग्वेद,

एवं सामवेद के मंत्र उत्पन्न हुए, उसी से यजुर्वेद के मन्त्र हुए और उसी से सभी छन्द भी उत्पन्न हुए ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

Page 49 of 331

Page 50 of 331

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत s ऋच: सामानि जज्ञिरे I

छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत II

उस सर्वात्मा यज्ञ पुरुष से ऋक्, साम प्रकट हुए, उसी से छंद(अथर्व) प्रकट हुए और उसी से यजुर्वेद प्रकट हुआ I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त कीव्याख्या इस प्रकार है:--

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽऋच: सामानि
जज्ञिरे I

छन्दाँ्सि जज्ञिरे
तस्माद्यजुस्तस्मादजायत II

उस विराट् यज्ञपुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ I उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ अर्थात् वेद की रिचाओं का प्रकटीकरण हुआ I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या:-

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽऋच:
सामानि जज्ञिरे I

छन्दाँ्सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत II

Page 50 of 331

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वहुत इति सर्वऽहुत :। ऋच:।
सामानि। जज्ञिरे।। छन्दाँ्सि । जज्ञिरे ।
तस्मात्। यजु :। तस्मात् । अजायत्।

पदार्थ :-- (तस्मात्) पूर्णात् (यज्ञात्त)
पूजनीयतमात् (सर्वहुत :) सर्वे जुह्वति सर्वं

समर्पयन्ति वा यस्मै (ऋच:) ऋग्वेद : (सामानि)
सामवेद : (जज्ञिरे) जायन्ते

(छन्दांसि) अथर्ववेद : (जज्ञिरे) (तस्मात्)
परमात्मन : (यजु :) यजुर्वेद : (तस्मात्) (अजायत)
जायते ।

अन्वय :-- हे मनुष्या :!
युष्माभिस्तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत : परमात्मन :
ऋच: सामानि जज्ञिरे तस्माच्छन्दाँ्सि जज्ञिरे
तस्माद्यजुरजायत स विज्ञातव्य :।

भावार्थ :--हे मनुष्या :! भवन्तो यस्मात् सर्वे
वेदा जायन्ते तं परमात्मानमुपासीरन्
वेदाँश्चाधीयीरन् तदाज्ञानुकूलं च
वर्त्तित्वा सुखिनो भवन्तु ।।

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! तुमको चाहिये कि (तस्मात्)
उस पूर्ण (यज्ञात्) अत्यन्त

पूजनीय (सर्वहुत :) जिसके अर्थ सब लोग समस्त
पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा
से (ऋच:) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे)
उत्पन्न होते (तस्मात्) उस परमात्मा से

(छन्दांसि) अथर्ववेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता और (तस्मात्) उस पुरुष से (यजु :) यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता ।

भावार्थ :-- हे मनुष्यो ! आप लोग जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं , उस परमात्मा की उपासना करो , वेदों को पढो और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त के सुखी होओ ।

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषि : । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप छन्द :। गान्धार : स्वर :॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐतस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादत : ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावय : ॥ (पु॰ सू॰ 8)

{ (कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में पाठ इस प्रकार है ----ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् —अन्वय :-- तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषत् आज्यम् ---अर्थ ---उस यज्ञ से सब हवन करने से जल , घी , तरल उत्पन्न हुए) ।}

Page 53 of 331

अन्वय:---- तस्माद अश्वा अजायन्त, ये के च उभय दत:I तस्मात् ह् गावो जज्ञिरे, तस्मात् जाता अजावय: I

शब्दार्थ:--- तस्माद----उससे; अश्वा----घोडे; ये--- जो; के---कि; च---और; उभय---दोनों ओर; दत:---दांत वाले हैं; अजायन्त----उत्पन्न हुए; तस्मात्— उसीसे; गावो---गौएं; ह्---भी; जज्ञिरे----उत्पन्न हुई; तस्मात्----उसीसे; जाता---उत्पन्न हुई; अजावय:----भेड-बकरियां आदि;

अर्थ:--उससे घोड़े जो कि दोनों ओर (तरफ) दांत वाले हैं उत्पन्न हुए हैं I और उसी से गौएँ भी उत्पन्न हुईं, उसीसे भेड़, बकरियां आदि उत्पन्न हुए I

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है---उस यज्ञपुरुष से घोड़े उत्पन्न हुए, इनके अतिरिक्त भी जो नीचे ऊपर दोनों ओर दांत रखने वाले खच्चर, गदहे आदि प्राणी हैं, ये भी उत्पन्न हुए I उसी से गौएँ उत्पन्न हुई और उसी से भेड़ों और बकरों की उत्पत्ति हुई I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- उस विराट यज्ञ पुरुष से दोनों तरफ दाँतवाले घोड़े हुए और उसी विराट पुरुष से गौएँ, बकरिया
और भेड़ आदि पशु भी उत्पन्न हुए I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:------ उसी से घोड़े उत्पन्न हुए,

Page 53 of 331

उसी से गायें उत्पन्न हुईं और उसी से भेड़ -
बकरियां उत्पन्न हुईं। वे दोनों ओर दांतों वाले
हैं ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा ,
द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में
पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस
प्रकार है :-

तस्मादश्वा ऽ अजायन्त ये के चोभयादत : ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽ अजावय: ।।

उस यज्ञ पुरुष से अश्व , गर्दभ , ऊपर नीचे के
दांतों वाले पशु , गौएं और भेड़

बकरी आदि उत्पन्न हुए ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस
प्रकार है :--

तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादत : । गावो ह
जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽअजावय : ।।

उस विराट् यज्ञपुरुष से दोनों तरफ दांत वाले
घोड़े हुए और उसी विराट् पुरुष से गौएँ , बकरियां
और भेड़ें आदि पशु भी उत्पन्न हुए ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनानिर्मितंसंस्
कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या :-

तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के
चोभयादत : ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्
तस्माज्जाताऽअजावय : ॥

तस्मात् । अश्वा :। अजायन्त । ये । के । च । उभयादत :।
गाव :। ह । जज्ञिरे । तस्मात्

। तस्मात् । जाता :। अजावय:।

पदार्थ :-- (तस्मात्) परमेश्वरात् (अश्वा :)
तुरङ्गा : (अजावयन्त) उत्पन्ना : (ये) (के) (च)
गर्द्दभादय : (उभयादत :)उभयोरध
ऊर्ध्वभागयोर्दंता येषान्ते (गाव :) धेनव :। गाव
इत्युपलक्षणमेकदताम् । (ह) किल (जज्ञिरे)
उत्पन्ना : (तस्मात्) (तस्मात्) (जाता :) उत्पन्ना :
(अजावय:) अजाश्चावयश्च ते ।

अन्वय :-- हे मनुष्या :! युष्माकमश्वा ये के
चोभयादत : सन्ति ते तस्मादजायन्त । तस्माद् गावो
ह जज्ञिरे तस्मादजावयो जाता इति वेद्यम्

भावार्थ :-- हे मनुष्या :! यूयं गवाश्वादयो
ग्राम्या : सर्वे पशवो यस्मात् सनातनात्
पूर्णात्
पुरुषादेवोत्पन्नास्तस्याज्ञोल्लङ्घनं कदापि
मा कुरुत ॥

पदार्थ — हे मनुष्यों ! तुमको (अश्वा :) घोड़े तथा
(ये) जो (के) कोई (च) गदहा

आदि (उभयादत :) दोनों ओर ऊपर -नीचे दांतों वाले हैं , वे (तस्मात्) उस

परमेश्वर से (अजायन्त) उत्पन्न हुए (तस्मात्) उसी से (गाव :) गौएँ (यह एक ओर दांतवालों का उपलक्षण है , इससे अन्य भी एक ओर दांतवाले लिये जाते हैं) (ह) निश्चय कर (जज्ञिरे)उत्पन्न हुए और (तस्मात्) उससे (अजावय:) बकरी ,भेड़ (जाता :) उत्पन्न हुए हैं , इस प्रकार जानना चाहिए ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्यो ! तुम लोग गौ , घोडे आदि ग्राम के सब पशु जिस सनातन पूर्ण पुरुष परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं , उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन कभी मत करो ।

तं यज्ञमित्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द :। गान्धार : स्वर :॥ पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत : । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ (पु .सू .9) (कृष्णयजुर्वेदीय पु .सू . में ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत : । के स्थान पर ---- ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच : सामानि जज्ञिरे दिया है —है जिसका अर्थ इसके 7 वें श्लोक में है ।)

Page 57 of 331

अन्वय:- पुरुषं जातम् अग्रतः तं बर्हिषि यज्ञं प्रौक्षन् I तेन अयजन्त देवा साध्या ऋषय: च ये I

शब्दार्थ:--- तं—उसको; यज्ञं---यज्ञ में; बर्हिषि---कुश अर्थात आसन बिस्तर या कुशा (घास) का बिछौना, (पु.) आग, प्रकाश, (न.पु.) जल, यज्ञ,
इसका एक अर्थ; ‘(बर्हिषि-शब्द बर्हिस् से बना है, इसका मिलता हुआ एक शब्द बरहा भी मिलता है जिसका अर्थ मोर, मुरगा, इंधन का बोझ, बलिपशु.मोटा रस्सा, साही नामक जन्तु, बारहवें दिन प्रसूता का स्नान;) ‘एक शब्द बारहौं का अर्थ निकलता संतान उत्पन्न होने के बाद बारहवें दिन की क्रिया जो हवन नामकरण आदि किया जाता है I’ प्रौक्षन्---- सिञ्चन करना, अभिषेक करना, जातम----उत्पन्न हुए, अग्रतः---पूर्व में, सर्व प्रथम; तेन—-उसके द्वारा; देवा---देवताओं ने; साध्या---साधकों ने; ऋषय:--ऋषियों ने; च---और; ये---जितने;

अर्थ:--- जो आदिपुरुष; परमपुरुष; सबसे पहले प्रकट हुआ (उत्पन्न हुआ) प्रथम पुरुष उसमें ही, जितने साधक और ऋषि थे उन्होंने कुशासन पर बैठा हुआ पितर की कल्पना करके उसका सिंचन अर्थात अभिषेक संस्कार करके मानसिक यज्ञ सम्पन्न किया
I

श्रीमद्भागवत के अनुसार इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:----सबसे

Page 57 of 331

पहले उत्पन्न हुआ वह पुरुष ही उस समय यज्ञ का साधन था, देवताओं ने उसे संकल्प द्वारा यूप में बंधा हुआ पशु माना और उस मानसिक यज्ञ में उस पशु का भावना द्वारा हि प्रोक्षण आदि संस्कार भी किया (यहाँ बर्हिषि का अर्थ यज्ञ पशु अर्थात वह पशु जिसकी बलि दी जानी है, ऐसे पशु की कल्पना की गई है) इस प्रकार संस्कार किये हुए पुरुष रूपी पशु के द्वारा देवताओं, साध्यों और ऋषियों ने उस मानसिक यज्ञ को पूर्ण किया I

कहीं अन्यत्र मैंने इस प्रकार अर्थ भी पढा है---- मंत्रद्रष्टा ऋषियों एवं योगाभ्यासियों ने सर्वप्रथम प्रकट हुए

पूजनीय विराट पुरुष को यज्ञ (सृष्टि के पूर्व विद्यमान महान ब्रह्मांड रूपयज्ञ अर्थात् सृष्टि यज्ञ) में अभिषिक्त करके उसी यज्ञरूप परम पुरुष से ही यज्ञ (आत्मयज्ञ) का प्रादुर्भाव किया I

मेरा अभिप्रायः इस पक्ष मे उपरोक्त लिखे गये अर्थों से भिन्न है-----

पूर्व में उत्पन्न उस पुरुष का अर्थात पितर [(जो पिता, पितामह, प्रपितामह,

प्रप्रपितामह आदि से भी ऊपर है) का यजमान रूप
में अभिषेक (सिंचन) करके यज्ञ में कुशासन (बैठने के लिये कुशा घास का आसन) दिया और देवताओं, साधकों और ऋषियों, जितने थे उनके द्वारा यज्ञ
Page 58 of 331

किया गया । (यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार हम जिनको देख नहीं सकते उन अपने पितर आदि की मानसिक (प्राणमय कोष में ,मनोमय कोष में) उपस्थिति की कल्पना करते हैं]।

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद -कथाङ्क में अर्थ :- देवताओं , साध्यों तथा ऋषियों ने सर्वप्रथम उत्पन्न हुए उस यज्ञपुरुष को कुशा पर अभिषिक्त किया और उसी से उसका यजन किया ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत : ।

तेन देवा ऽ अयजन्त साध्या ऽ ऋषयश्च ये ॥

सृष्टि से पूर्व उस यज्ञ साधन भूत पुरुष को यज्ञ में संस्कृत करते हुए मन्त्रद्रष्टा

ऋषियों ने उसी पुरुष से मानस याग को सम्पन्न किया ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद — संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है :--

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत : ।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये ॥

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों एवं योगाभ्यासियों ने
सर्वप्रथम प्रकट हुए विराट् पुरुष को

यज्ञ (सृष्टि के पूर्व विद्यमान महान्
ब्रह्मांडरूप यज्ञ अर्थात् सृष्टि यज्ञ) में

अभिषिक्त करके उसी परम पुरुष से ही
यज्ञ (आत्मयज्ञ) का प्रादुर्भाव किया ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या :-

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत : ।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये ॥

तम् । यज्ञम्। बर्हिषि । प्र।औक्षन् । पुरुषम् ।
जातम् । अग्रत :॥ तेन । देवा :। अयजन्त ।

साध्या :। ऋषय:। च। ये ॥

पदार्थ :-- (तम्) उक्तम् (यज्ञम्) संपूजनीयम्
(बर्हिषि) मानसे ज्ञानयज्ञे (प्र) प्रकर्षेण
(औक्षन्) सिञ्चन्ति (पुरुषम्) पूर्णम् (जातम्)
प्रादुर्भूतञ्जगत्कर्तारम् (अग्रत :) सृष्टे
प्राक् (तेन) तदुपदिष्टेन वेदेन (देवा :)
विद्वांस : (अयजन्त) पूजयन्ति (साध्या :) साधनं
योगाभ्यासादिकं कुर्वन्तो ज्ञानिन : (ऋषय:)
मन्त्रार्थविद : (च) (ये) ।

अन्वय :--हे मनुष्या :! ये देवा : साध्या ऋषयश्च यमग्रतो जातं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रोक्षन् त एव तेनायजन्त च तं यूयं विजानीत ॥

भावार्थ :-- विद्वद्भिर्मनुष्यै : सृष्टिकर्तेश्वरो योगाभ्यासादिना सदा हृदयान्तरिक्षे ध्यातव्य : पूजनीयश्च ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! (ये) जो (देवा :) विद्वान् (च) और (साध्या :) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (ऋषय:) मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रत :) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र , औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं , वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से और (अयजन्त) उसका पूजन करते हैं , (तम्) उसको तुम लोग भी जानो ॥

भावार्थ :--विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें ।

यत्पुरुषमित्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द :। गान्धार : स्वर : ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ यत् पुरुषं व्यदधु : कतिधा व्यकल्पयन् ।

Page 62 of 331

मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते II (पु.सू. 10)

(कृष्ण यजुः पुरुषसुक्त में इसप्रकार दिया गया है:----‘ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः’ जोकि इसके 8 वें श्लोक में है, इसमें पाठ भेद नहीं है)

अन्वय:- यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I अस्य मुखं किम् आसीत्, किम् बाहू, किम् उरू, पादा उच्येते I

शब्दार्थः-- यत्---जब, जिस समय; पुरुषं---विराट् पुरुष को; व्यदधुः---विस्तृत किया, प्रकट किया; कतिधा----किस प्रकार, कितनी प्रकार से; व्यकल्पयन्----कल्पना की, वर्ग विभाजन किया, अवयवों का विभाजन किया; मुखं---मुख, किम्---क्या, कैसा, कहां; आसीत्---था; बाहू---भुजायें; उरू--- दोनों जंघायें; पादा---पैर, चरण, पांव, अंश; कहे गये, बताये गये, कल्पित किये गये;

अर्थः--- जब पुरुष को प्रकट किया गया (कल्पना का विस्तार किया गया) तब

किस प्रकार कल्पना की गई, कितनी प्रकार से उसका विस्तार किया गया I

इसका मुख कहां था, कैसा था, भुजाएं क्या थी, कैसी थी, कहाँ थी; दोनों जंघायें, पांव कैसे बताये गये थे, अर्थात कहां और कैसे थे I

Page 62 of 331

Page 63 of 331

श्रीमद्भागवत् में अर्थ इस प्रकार है----- जब प्राणमय देवताओं ने उस यज्ञपुरुष (प्रजापति) को प्रकट किया, उस समय उसके अवयवों के रूप में कितने विभाग किये I इस पुरुष का मुख क्या था, दोनों बाहें क्या थीं I दोनों जाँघें और दोनों

पैर कौन थे अर्थात कैसे बने I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट पुरुष का, ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं? उसका मुख क्या है? भुजा, जाघें और पाँव कौन-से हैं? शरीर-संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना ?

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- पुरुष का जब विभाजन हुआ तो उसमें कितनी विकल्पनायें की गयीं? उसका मुख क्या था? उसके बाहू क्या थे? उसके जंघे क्या थे? और उसके पैर क्या कहे जाते हैं।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I

Page 63 of 331

Page 64 of 331

मुखं किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादाऽउच्येते II

जिस विराट् पुरुष को सड्ंकल्प द्वारा प्रकट करते हुए अनेक प्रकार से कल्पना

की कि इस पुरुष का मुख क्या हुआ? भुजा, जांघ और चरण कौन से कहे जाते हैं? शरीर की रचना करते हुए वह विराट् कितने प्रकार से पूर्ण हुआ?

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

यत्पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन्
I

मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरु पादाऽउच्च्येते II

संकल्प द्वारा प्रकट हुए विराट् पुरुष का ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं? उनका मुख क्या है? भुजा, जंघाएँ और पाँव कौन से हैं? शरीर संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना?

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या:-

यत्पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I

Page 64 of 331

मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरु पादाऽउच्च्येते ॥

यत् । पुरुषम् । वि । अदधु :। कतिधा । वि । अकल्पयन् ॥ मुखम् । किम् । अस्य । आसीत् ।

किम् । बाहूऽइति बाहू । किम् । ऊरूऽइत्यूरू । पादौ । उच्येतेऽइत्युच्येते ॥

पदार्थ :-- (यत्) यम् (पुरुषम्) पूर्णम् (वि) विविध प्रकारेण (अदधु :) धरन्ति (कतिधा) कतिप्रकारै : (वि) विशेषेण (अकल्पयन्) कथयन्ति (मुखम्) मुखस्थानीयं श्रेष्ठम् (किम्) (अस्य) पुरुषस्य (आसीत्) अस्ति (किम्) (बाहू) भुजबलभृत् (किम्) (ऊरू) जानुन ऊर्द्ध्वावयवस्थानीयम् (पादौ) नीचस्थानीयम् (उच्येते)॥

अन्वय :-- हे विद्वांसो ! भवन्तो यद्यं पुरुषं व्यदधुस्तं कतिधा व्यकल्पयन्नस्य सृष्टौ मुखं किमासीद् बाहू किमुच्येते । ऊरू पादौ च किमुच्येते ॥

भावार्थ :--- हे विद्वांसोऽत्र संसारेऽसंख्यं सामर्थ्यमीश्वरस्यास्ति तत्र समुदाये मुखमुत्तमाङ्गं बाह्वादीनि चाङ्गानि कानि सन्ति इति ब्रूत ॥

Page 66 of 331

पदार्थ:--हे विद्वान् लोगो! आप (यत्) जिस (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (वि, अदधु:) विविध प्रकार से धारण करते हो, उसको (कतिधा) कितने प्रकार से (वि,अकल्पयन्) विशेषकर करते हैं और (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (मुखम्) मुख के समान श्रेष्ठ (किम्) कौन (आसीत्) है (बाहू) भुजबल का धारण करनेवाला (किम्) कौन (ऊरू) घोंटू के कार्य्य करने हारे अर्थात् करने वाले और (पादौ) पाँव के समान नीच (किम्) कौन (उच्येते) कहे जाते हैं II (कई स्थानों पर लेखक ने आसीत् का अर्थ वर्तमान काल में लगाया है जबकि इसका अर्थ भूत काल के प्रयोग से ही ठीक अर्थ बनता है क्योंकि यह एक कल्पना है कि सृष्टि कैसे बनी)

भावार्थ:--हे विद्वानों! इस संसार में असंख्य सामर्थ्य ईश्वर का है, उस समुदाय में उत्तम अङ्ग मुख और बाहू आदि अङ्ग कौन हैं? यह कहिये II

ब्राह्मण इत्यस्य नारायण ऋषि:I पुरुषो देवताI निचृदनुष्टुप छन्द:l गान्धार:

स्वर:ll पुनस्तमेव विषयमाह II फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है II

Page 66 of 331

Page 67 of 331

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुख्मासीद्बाहू
राजन्यः कृत: I

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां
शूद्रो अजायत II (पु.सू.11)

(कृष्ण यजुः पुरुषसूक्त में इसप्रकार दिया गया है-- ॐ यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I मुखं किमस्यासीत् किं बाहू का ऊरू पादा उच्येते II यह पाठ है I---अन्वय---यत् व्यदधु: पुरुषम् कतिधा व्यकल्पयन् I किम् अस्य मुखम् आसीत् किं बाहू का ऊरू पादा उच्येते I—अर्थ—वह जो पुरुष उत्पन्न हुआ उसके कितनी प्रकार से कल्पना की गयी है I उसका मुख क्या था, कैसा था, क्या भुजाएं, क्या पैर कहे जाते हैं) I

अन्वयः----ब्राह्मणो अस्य मुखम् असीत्, राजन्य बाहू कृतः I यद् वैश्यः तद् अस्य ऊरू, शूद्रो पद्भ्यां अजायत II

शब्दार्थः---- ब्राह्मण:----ब्राह्मण(ज्ञानीजन) आदि जैसे शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थ,हवन, यज्ञ, जप, तप आदि ईश्वर विषयक ज्ञान रखने वाला, अग्रजन्मा,(सिर, आँख, नाक, कान, जिव्हा, सकल ज्ञान, स्मरणशक्ति, मस्तिष्क,समस्त नाडी आदि का आधार मुख) भूदेव, विप्र, ब्राह्मण जाति, शिव, विष्णु, मन्त्र से भिन्न वेद् का अंश,(शतपथ आदि ग्रन्थ) अग्नि; अस्य---उसका; मुखम्---मुख, अग्रभाग, बाहू----भुजायें; राजन्यः-----राजा,

Page 67 of 331

Page 68 of 331

क्षत्रिय, रक्षक, शासन व्यवस्थापक; कृतः----बने, बनाये, उत्पन्न हुये, माना; ऊरू---जंघायें; तद्--- उसकी, यद्—जो; वैश्यः----व्यापार, कृषि आदि करने वाला, बनिया; पद्भ्यां----पावों से, पैरों से; शूद्र:----सेवक, शूद्र जाति; अजायत-----उत्पन्न हुए;

अर्थ:-- विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण अर्थात ज्ञान, विवेक, ज्ञानीजन (विवेकवान) हुए। क्योंकि कोई भी बात मुख अर्थात मुंह से निकलती है, देखने, सोचने-समझने, सुनने, भोज्य पदार्थों का भोग करने के सभी मुख में ही हैं I अर्थात् उसकी रचना में मुख्य ज्ञान, ज्ञानीजन हैं, क्षत्रिय अर्थात् पराक्रमी व्यक्ति, उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं । वैश्य अर्थात् पोषणशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति उसके जंघा एवं सेवाधर्मी व्यक्ति जोकि समाज का आधार स्तम्भ हैं वे उसके पैर हुए। अर्थात ब्रह्मांड में सर्व प्रथम ब्राह्मण अर्थात ज्ञान, सोचने, विचारने के लिए मुख जिसमें सर, आँख कान, नासिका आदि ज्ञानेन्द्रियां, आदि स्थापित किये I क्षत्रिय संज्ञक भुजाएं वैश्य संज्ञक जंघाएँ, तथा सेवक रूपी चरण अर्थात पैर (आधार)आदि की रचना करके स्थापित किये I

श्रीमद्भागवत् में अर्थ इस प्रकार है-----

Page 68 of 331

ब्राह्मण इसका मुख था अर्थात मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई I दोनों भुजायें क्षत्रिय जाति बनीं, अर्थात भुजाओं से क्षत्रियों का प्राकट्य हुआ I जो वैश्य हैं वे उसकी जंघाओं से, पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण

अर्थात् ज्ञानी (विवेकवान) जन हुए | क्षत्रिय अर्थात पराक्रमी व्यक्ति, उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं | वैश्य अर्थात् पोषणशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति उसके जंघा एवं सेवाधर्मी व्यक्ति उसके पैर हुए I

पुरूष सूक्त--ऋग्वेद मंडल 10.का 90 वां सूक्त पुरुष सूक्त कहलाता है। इस सूक्त का ऋषि नारायण है और देवता पुरुष है । पुरुष वह है जो प्रकृति को प्रभावित कर सके ।

(संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट पुरुष का ज्ञानी जन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करतेहैं? उसका मुख क्या है? भुजा, जाँघें और पाँव कौन से हैं? शरीर-संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना? ।।
10।।)

जिसका पुरुष का विधान किया गया, उसकी कितने प्रकार कि कल्पना हुई अर्थात उस पुरुष कि कितने प्रकार से कल्पना कि गयी I प्रजापति द्वारा जिस
Page 69 of 331

समय पुरुष विभक्त हुए तो उनको कितने भागों में विभक्त किया गया , इनके मुख बाहू ऊरू और चरण क्या कहे जाते हैं । (उत्तर) ब्राह्मणजाति इस पुरुष के मुख से , क्षत्रिय जाति भुजा से , वैश्य जाति ऊरूद्वय से और शूद्रजाति दोनों चरणों से उत्पन्न हुईं , इस कारण ब्राह्मणादि चार जाति परमात्मा के मुख भुजा , ऊरू और चरण कहाते हैं । पुरुष सूक्त में जगत् की उत्पत्ति का प्रकरण है , सब चराचरों कि उत्पत्ति का इसमें प्रसंग है , इस कारण यहाँ कल्पना शब्द से उत्पत्ति का ही अर्थ लिया जायेगा न कि अलंकार कल्पना का अर्थ ! अन्यत्र भी वेद में उत्पत्ति का ही अर्थ आया है यथा “ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमाकल्पयत् ” ऋग्वेद मंडल 10 सूक्त 191 मन्त्र 3 अर्थात् सूर्य चन्द्रमा जैसे विधाता ने पूर्व कल्प में बनाये थे वैसे ही इस कल्प में बनाये हैं । यजुर्वेद अध्याय 31 अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 6 में भी पुरुष सूक्त है । केवल अथर्ववेद में ऊरू के स्थान में “मध्यं तदस्य यद्वैश्य :” इस प्रकार पाठान्तर देखा जाता है ।

[**मेरा अभिप्राय यहां यह है कि ब्रह्म का अर्थ निकलता है विराट , विस्तृत , महान् , मुखिया , मुख्य , कर्ता -धर्ता , कारक । ब्राह्मण नाम शिव , विष्णु , ज्ञान , अग्नि अर्थात तेज का भी है । जो विवेकवान है ज्ञानवान है वही तो ब्राह्मण है , ब्राह्मण शब्द ब्रह्म से बना है। जो ब्रह्म (ईश्वर) को

छोड़कर अन्य किसी को नहीं पूजता , वह ब्राह्मण कहा गया है । जिसका प्रसार विस्तृत है वही तो ब्राह्मण है । रावण भी कहता था अहम् ब्रह्मो अस्मि क्योंकि उसका प्रसार बहुत था । उसका राज्य बहुत फैला हुआ था , उसका प्रभाव सभी पर था । इसलिये मेरे अभिप्राय से यहां पर ब्राह्मण का अर्थ जाति विशेष से लगाने की अपेक्षा विस्तृत ज्ञानवान , अथवा तेजवान लगाना उपयुक्त होगा । इसी प्रकार क्षत्रिय , वैश्य , शूद्र आदि को जाति प्रथा से नहीं जोडना चाहिये बल्कि वर्ण अर्थात विभाग के अनुसार अर्थ करना चाहिये । मुनिराज शर्मा

***मेरा दूसरा विचार यह है कोई भी व्यक्ति हवन - यज्ञ आदि अकेला नहीं करता । करनेवाला (आचार्य , पाधा , ब्राह्मण , पुरोहित) कहलाता है और करवाने वाला (यजमान) कहलाता है । वास्तव में जब कोई व्यक्ति हवन -यज्ञ आदि के लिए दीक्षित हो जाता है सिद्धांतरूप से वह बार -बार नहीं उठ सकता यज्ञ की रक्षा हेतु , विभिन्न वस्तुओं के संचय हेतु या समय पर आवश्यकता पड़ने पर खर्च हेतु , कुछ अन्य प्रकार की सहायता हेतु , इसीप्रकार विभिन्न प्रकार से कार्यों के आधार पर कल्पना की गई । इनमें से मुख्य सहायक मन्त्रोच्चारण व अन्य विधि कर्ता को ब्राह्मण , यज्ञ की रक्षा का भार वहन कर्ता को क्षत्रिय , यज्ञ हेतु धन व अन्य सामग्री या अन्य बातों का ध्यान व हिसाब

व्यवस्थापक को वैश्य तथा सेवक का भार का
निर्वहन करने वाले को शूद्र आदि पद अर्थात नाम
दिए गये हैं ।] राजन्य (क्षत्रिय) वीर -बलों के
कार्य हेतु , ब्राह्मण मुख (मुख्य काम के लिए)
हेतु , वैश्य उरु , अर्थात सर्व स्थान यात्रा और
शूद्र पग यानि सेवा जैसे गुणों के लिए बने हैं।
इसके अतिरिक्त यज्ञ का वर्णन भी है जो सृजन की
प्रक्रिया को दर्शाता है। मुनिराज शर्मा

****मेरे अनुसार यह अर्थ उचित जान पडता है -----
उसका मुख तेजवान और विस्तृत था । भुजाओं से
पराक्रम उत्पन्न हुआ अर्थात पराक्रम शील
उत्पन्न हुये । दोनों जंघाओं से व्यापारी , लेन
देन करने वाले अंग अर्थात विभाग बने क्योंकि
शरीर में कहीं से कुछ भी जाता है पहले उदर , पेट
में जाता है और जङ्घा के द्वारा शरीर में जहां
जिस अंग को जो कुछ जितना चाहिये उतना पहुंचता और
व्यर्थ मल -मूत्र के रूप में बाहर किया जाता है ।
जो कि एक वैश्य की भान्ति नाप -तोल करके ही होता
है । और शूद्र अर्थात सेवक पैरों से उत्पन्न हुए
यहां शूद्र किसे माना जाये ? शरीर में जो
विभिन्न पदार्थ लाने ले जाने का कार्य करते हैं ,
व्यर्थ वस्तुयें निकालने का कार्य करते हैं
क्या वे शूद्र अथवा सेवक हैं जैसे शरीर के अन्दर
कार्यरत विभिन्न इत्यादि विभिन्न शिरायें ,
कोशिकायें , अवयव: क्या इन अवयवों को शूद्र कि
संज्ञा दी जा सकती है ? समाज में जो वर्ण -

Page 73 of 331

व्यवस्था चल रही है यह प्रशासनिक व्यवस्था के अनुसार बनाई गयी थी, सेवक का कार्य बड़ा ही कठिन माना जाता था जबकि कृषि को उत्तम, बान अर्थात व्यापार आदि व्यवसाय को मध्यम तथा सेवाकार्य अर्थात नोकरी-चाकरी को घृणित कार्य कहा जाता था और इस विषय में एक कहावत प्रसिद्ध भी है ---- (उत्तम खेती मध्यम बान ‘व्यापार’ निखद चाकरी भीख निदान अर्थात खेती का व्यवसाय अति उत्तम है, व्यापार मध्यम और चाकरी करना सबसे निखद कार्य है इससे तो अच्छा भीख मांग कर गुजर कर ले) जबकि नगर, ग्राम के सीमांत क्षेत्र में रहने वाले जनों को प्रशासनिक व्यवस्था में स्थान नहीं दिया जाता था उन्हें अछूत कि संज्ञा दी जाती थी I ऋग्वेद में स्वस्ति वाचन के अंतिम श्लोक ---

अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स
पिता स पुत्र: I

विश्वे देवा अदिति: पञ्च जना अदितिर्जातमादितिर्जनित्वम् II

इसका अर्थ है ही द्युलोक, अंतरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सब देव, पञ्चजन (ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद), जो बन चुका है और जो
बनने वाला है, वह सब अदिति ही है, अर्थात सबकुछ अदिति से ही है सबकी माता अदिति ही है I इसप्रकार हम देखते हैं कि पुरुष-सूक्त में कहीं भी किसीप्रकार से किसी का भी अपमान नहीं किया

Page 73 of 331

गया है और न ही किसी से किसी प्रकार का भेदभाव ही किया गया है । पुरुष सूक्त से यही शिक्षा मिलती है कि हम सब एक ही ईश्वर कि सन्तान हैं । केवल सत्ता के लालची अंग्रजों की नीति अपना काम साधने के लिए इस प्रकार की भ्रान्ति बनाते हैं । मुनिराज शर्मा

(यह मेरा व्यक्तिगत मन्तव्य है कृपया इसे अन्यथा न लें) ।

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद -कथाङ्क में अर्थ :- ब्राह्मण इसका मुख था (मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए) क्षत्रिय दोनों भुजाएं बने (दोनों भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए) इस पुरुष की जो दोनों जंघाएँ थीं वे ही वैश्य हुईं अर्थात उनसे वैश्य उत्पन्न हुए और पैरों से शूद्रवर्ण प्रकट हुआ ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत : ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां ऽ शूद्रो अजायत ॥
ब्राह्मण इस प्रजापति का मुख , क्षत्रिय बाहु , वैश्य जंघा और शूद्र चरण रूप हुआ ?

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद — संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है :--

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत : ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँशूद्रो अजायत ॥

विराट् पुरुष का मुख
ब्राह्मण (ज्ञानीजन ,ज्ञानवान) हुए , क्षत्रिय
(पराक्रमी व्यक्ति), उसके शरीर में विद्यमान
बाहुओं के समान हैं । वैश्य अर्थात पोषण शक्ति
सम्पन्न व्यक्ति उसके जंघा एवं सेवाधर्मी
व्यक्ति , उसके पैर हुए ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या

:--

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य :
कृत :।

ऊरू तदस्य यद्वैश्य : पद्भ्याँ्
शूद्रोऽअजायत ॥

ब्राह्मण :। अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहूऽइति बाहू ।
राजन्य :। कृत :।। ऊरूऽइत्यूरू । तत् । अस्य । यत् ।
वैश्य :। पद्भ्यामिति पत्ऽभ्याम् । शूद्र :। अजायत ।।

पदार्थ :-- (ब्राह्मण :) वेदेश्वरविदनयो : सेवक
उपासको वा (अस्य) ईश्वरस्य (मुखम्) मुखमिवोत्तम :
(आसीत्) अस्ति (बाहू) भुजाविव बलवीर्य्ययुक्त :
(राजन्य :) राजपुत्र : (कृत :) निष्पन्न : (ऊरू) ऊरू
इव वेगादिकर्मकारी (तत्) (अस्य) यत्) (वैश्य :) यो
यत्र तत्र विशति प्रविशति तदपत्यम् (पद्भ्याम्)

सेवानिरभिमानाभ्याम् (शूद्र:) मूर्खत्वादिगुण्विशिष्टो मनुष्य: (अजायत) जायतेI

अन्वय:-- हे जिज्ञासवो! यूयमस्य सृष्टौ ब्राह्मणो मुखामासीद् बहू राजन्य: कृतो यदूरू तदस्य वैश्य आसीत् पद्भ्यां शूद्रोऽजायतेत्युत्तराणि यथाक्रमं विजानीत् II

भावार्थ:-- ये विद्याशमदमादिपूत्तमेषु गुणेषु मुखमिवोत्तमास्ते ब्राह्मणा: I

येऽधिकवीर्य्या बाहुवत्कार्य्यसाधकास्ते क्षत्रिया: I ये व्यवहारविद्याकुशलास्ते

वैश्या ये च सेवायां साधवो विद्याहीना: पादाविव मूर्खत्वादिनीचगुणयुक्तास्ते शूद्रा: कार्य्या मन्तव्याश्च II

पदार्थ:-- हे जिज्ञासु लोगो! (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (ब्राह्मण:) वेद ईश्वर का ज्ञाता इनका सेवक वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (राजन्य:) राजपूत (कृत:) किया (यत्) जो (ऊरू) जाँघों के तुल्य वेगादि काम करनेवाला (तत्) वह (अस्य) इसका (वैश्य:) सर्वत्र प्रवेश करनेहारा वैश्य है (पद्भयाम्) सेवा और अभिमान रहित होने से (शूद्र:) मूर्खपन आदि गुणों से युक्त शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ, ये उत्तर क्रम से जानो II भावार्थ:-- जो मनुष्य विद्या और
Page 76 of 331

शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हों , वे ब्राह्मण , जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्य्यों को सिद्ध करनेहारे हों , वे क्षत्रिय , जो व्यवहारविद्या में प्रवीण हों , वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण , विद्याहीन , पगों के समान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त है , वे शूद्र करने और मानने चाहियें ॥

चन्द्रमा इत्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । अनुष्टुप् छन्द :। गान्धार : स्वर :॥ पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्रमें कहा है ॥

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।(पु .सू .12)

(कृष्ण यजुः पुरुषसूक्त में इसप्रकार दिया गया है -- ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुख्मासीद्बाहू राजन्यः कृत : । यह मन्त्र है । इसका वर्णन श्लोक 11 में किया गया है)

अन्वयः ---- चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत । श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च मुखात् अग्निः अजायत ।।

Page 78 of 331

शब्दार्थ:---चन्द्रमा--चन्द्र; मनसो----मन से, मन के द्वारा; जातः--उत्पन्न हुआ था; चक्षोः--आँखों से, नेत्रों से;सूर्यो--सूर्य, ज्योति; अजायत-- उत्पन्न हुआ; ! श्रोत्रात्---कानों से; वायुः---- वायु; च---और; प्राणः----प्राणवायु; च---और; मुखात्---मुख से; अग्निः---तेज; अजायत----उत्पन्न हुआ;

अर्थ--विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ I नेत्रों से सूर्य अर्थात् ज्योति (प्रकाश) की उत्पत्ति हुई I कानों से वायु तथा प्राणवायु की उत्पत्ति हुई और मुख अग्नि, तेज की उत्पत्ति हुई I

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार है----- चन्द्रमा मन से प्रकट हुआ I नेत्रों अर्थात दोनों चक्षुओं से सूर्य अर्थात प्रकाश ज्योति का प्रादुर्भाव हुआ I कानों से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि का आविर्भाव हुआ I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है--- विराट पुरुष परमात्मा के मन से

चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, कर्ण से वायु एवं प्राण तथा मुख से अग्नि का प्रकटीकरण

हुआ I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- इस परम् पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुए,

Page 78 of 331

नेत्रों से सूर्य प्रकट हुए, कानों से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुई ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योs अजायत I

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च
मुखादग्निरजायत II

उसी पुरुष के मन से चंद्रम, चक्षु से सूर्य, श्रोत्र से वायु और प्राण तथा मुख से

अग्नि प्रकट हुई I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुष सूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत I

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत I I

विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, कर्ण से वायु एवं प्राण तथा मुखसे अग्नि का प्राकट्य हुआ I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या
Page 79 of 331

:-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः
सूर्योऽअजायत ।

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च
मुखादग्निरजायत ।।

चन्द्रमा । मनस:। जात :। चक्षो :। सूर्य :। अजायत ॥
श्रोत्रात् । वायु :। च:। प्राण :। च । मुखात् । अग्नि :।
अजायत ।

पदार्तः :--(चन्द्रमा :) चन्द्रलोक : (मनस:)
मननशीलात् सामर्थ्यात् (जात :) (चक्षो :) ज्योति :
स्वरूपात् (सूर्य :) सूर्यलोक : (अजायत) जात :
(श्रोत्राद्) श्रोत्रावकाशरूपसामर्थ्यात्
(वायु :) (च) आकाशप्रदेशा : (प्राणः) जीवननिमित्त :
(च) (मुखात्) मुख्यज्योतिर्मयाद्भक्षणरूपात्
(अग्नि :) (पावक :) (अजायत)

अन्वय :-- हे मनुष्या :! अस्य ब्राह्मण : पुरुषस्य
मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षो : सूर्योऽजायत
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च
मुखादग्निरजायतेति बुध्यध्वम् ॥

भावार्थ :--यदिदं सर्वं जगत्
कारणादीश्वरेणोत्पादितं वर्त्तते तत्र
चन्द्रलोको मन :स्वरूप : सूर्य्यश्चक्षु : स्थानी
वायु : प्राणश्च
श्रोत्रवन्मुखमिवाग्निर्लोमवदोषधिवनस्पतयो

नाड़ीवन्नद्योऽस्थिवत् पर्वतादिर्वर्त्तत इति
वेदितव्यम् ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! इस पूर्ण ब्रह्म के (मनस:)ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से (चन्द्रमा :) चन्द्रलोक (जात :) उत्पन्न हुआ (चक्षो :) ज्योतिस्वरूप सामर्थ्य : से (सूर्य्य :) सूर्य्यमण्डल (अजायत) उत्पन्न हुआ (श्रोत्रात्) श्रोत्र नामक अवकाश रूप सामर्थ्य से (वायु :) वायु (च) तथा आकाश प्रदेश (च) और (प्राण :) जीवन के निमित्त दश प्राण और (मुखात्) मुख्य ज्योतिर्मय भक्षणस्वरूप सामर्थ्यसे (अग्नि :) अग्नि (अजायत) उत्पन्न हुआ है , ऐसा तुमको जानना चाहिए ॥

भावार्थ :-- जो यह सब जगत् कारणसे इश्वर ने उत्पन्न किया है , उसमें चन्द्रलोक मनस्वरूप , सूर्य्यलोक नेत्ररूप , वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य , मुख के तुल्य अग्नि , ओषधि और वनस्पति रोमों के तुल्य नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य हैं , ऐसा जानना चाहिए ॥

नाभ्या इत्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । अनुष्टुप छन्द :। गान्धार : स्वर :। पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं् शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् । (पु .सू .13)

[(कृष्ण यजुः पुरुषसूक्त में इसप्रकार दिया गया है - ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत । अन्वय :--मनसः चन्द्रमा जातः । चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखात् इन्द्रः च अग्नि च प्राणात् वायुः अजायत् ।) अर्थ —चन्द्रमा मन से उत्पन्न हुआ और चक्षु सूर्य से उत्पन्न हुए । मुख से इन्द्र और अग्नि प्राण से वायु उत्पन्न हुए ।)]

अन्वयः ---- नाभ्या अन्तरिक्षं आसीत् , शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमि : दिशः श्रोत्रात् तथा लोकां अकल्पयन् ॥

शब्दार्थः ---- नाभ्या ----नाभि से ; अन्तरिक्षं ---- आकाश; आसीत् ---था ; शीर्ष्णो ---मस्तक से ; द्यौः ---- स्वर्गलोक आदि अन्य लोक ; समवर्तत ----साथ -साथ प्रकट हुआ , प्राकट्य हुआ ; पद्भ्यां ---पैरों से ; भूमि :----भूमि ; दिशः ---दिशायें ; श्रोत्रात् -- कानों से ; तथा ---और; लोकां ---लोकों की ; अकल्पयन् ---कल्पना हुई , उत्पत्ति

हुई ;

Page 83 of 331

अर्थः--नाभि से अन्तरिक्ष हुआ था, मस्तक से स्वर्गलोक आदि लोकों का समानरुप् से उद्भव हुआ I पैरोंसे भूमि, कानों से दिशायें प्रकट हुईं I
इसी प्रकार लोकों की उत्पत्ति की कल्पना की गई थी I

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार है---- नाभि से अन्तरिक्ष-लोक की उत्पत्ति हुई, मस्तक से स्वर्ग लोक प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी हुई और कान से दिशाएँ प्रकट हुईंI इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकों की कल्पना की I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- विराट पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, सिर से द्युलोक, पाँवों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं | इसी प्रकार (अनेकानेक) लोकों को कल्पित किया गया है (रचा गया है) I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- उन्हीं परम् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, मस्तक से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी,कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं। इस प्रकार समस्त लोक उस पुरुष में ही कल्पित हुए।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

Page 83 of 331

Page 84 of 331

नाभ्या s आसीदन्तरिक्षं् शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत I

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ
s अकल्पयन् I

नाभि से अंतरिक्ष, शिर से स्वर्ग, पांवों से पृथ्वी, श्रोत्र से सब दिशाएं उत्पन्न हुईंI इसी प्रकार तीनों लोकों की कल्पना की गई I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षं् शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत I

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा
लोकाँ२ अकल्पयन् I

विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पावों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं I इसी प्रकार अनेकानेक लोकों को कल्पित किया गया है(रचा गया है)

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या

:-

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षँ् शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत I

Page 84 of 331

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा
लोकाँ२ ॥ऽअकल्पयन् ।

नाभ्या :। आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्ण :। द्यौ :। सम् । अवर्त्तत् ॥ पद्भ्यामिति पत्ऽभ्याम् । भूमि :। दिश :। श्रोत्तात् । तथा । लोकान् ॥ अकल्पयन् ॥

पदार्थ :-- (नाभ्या :) अवकाशयान्मध्यवर्त्तिसामर्थ्यात् (आसीत्) अस्ति (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्त्याकाशम् (शीर्ष्ण :) शिर इवोत्तमसामर्थ्यात् (द्यौ :) प्रकाशयुक्तलोक : (सम्) (अवर्त्तत) (पद्भ्याम्) पृथ्वीकारणरूपसामर्थ्यात् (भूमि :) (दिश :) पूर्वाद्या : (श्रोत्रात्) अवकाशमयात् (तथा) तेनैव प्रकारेण (लोकान्) (अकल्पयन्) कथयन्ति

अन्वय :--हे मनुष्या :! यथाऽस्य नाभ्या अन्तरिक्षमासीच्छीर्ष्णो द्यौ : पद्भ्यां भूमि : समवर्त्तत श्रोत्राद्दिशोऽकल्पयँस्तथाऽन्यान्ल्लोकानुत्पन्नान् विजानीत् ॥

भावार्थ :--हे मनुष्या :! यद्यदत्र सृष्टौ कार्य्यभूतं वस्तु वर्त्तते तत्तत्सर्वं विराडाख्यस्य कार्यकारणस्याऽवयवरूपं वर्त्तत इति वेद्याम् ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! जैसे इस पुरुष परमेश्वर के (नाभ्या :) अवकाशरूप मध्यम सामर्थ्य से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ

(शीर्ष्ण :) शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से (द्यौ :) प्रकाशयुक्त लोक (पद्भ्याम्) पृथ्वी के कारणरूप सामर्थ्य से (भूमि :) पृथ्वी (सम् , अवर्त्तत) सम्यक् वर्त्तमान हुई और (श्रोत्रात्) अवकाशरूप सामर्थ्य से (दिश :) पूर्व आदि दिशाओं की (अकल्पयन्) कल्पना करते हैं , (तथा) वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य (लोकान्) लोकों को उत्पन्न हुए जानो ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्यो ! जो-जो इस सृष्टि में कार्यरूप वस्तु है , वह-वह सब विराट् रूप कार्यकारण का अवयवरूप है , ऐसा जानना चाहिए ॥

यत्पुरुषेणेत्यस्य नारायण : ऋषि:। पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धार : स्वर :॥ पुनसत्मेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः । (पु॰सू॰ 14)

[यहाँ सृष्टि यज्ञ के प्रारम्भिक स्वरूप का दर्शन है]

अन्वयः --- यत् देवा पुरुषेण हविषा यज्ञम अतन्वत , वसन्तो अस्या आसीत् आज्यं , ग्रीष्म इध्मः ,शरद् हविः ।

Page 87 of 331

शब्दार्थः---- यत:---जब; पुरुषेण----पुरुष द्वारा अर्थात विराट् पुरुष द्वारा;

हविषा------आहुति से; देवा-----देवताओं ने; यज्ञम----यज्ञ कार्य को; अतन्वत----आयोजित किया; वसन्तो----वसन्त ऋतु; आसीत्---थी, होगई थी; आज्यं-- घी; ग्रीष्म:---गर्मी, ग्रीष्म ऋतु; इध्मः---- ईन्धन्; शरद्-----शीत ऋतु; हविः----हविष्य (सामग्री) I

अर्थः--- जब देवताओं ने यज्ञ कार्य को आयोजित किया उस समय विराट् पुरुष

द्वारा दी जाने वाली आहुति से वसन्त ऋतु घी में, गर्मी की ऋतु ईन्धन् में, तथा

शीत ऋतु हवन- यज्ञ की सामग्री में परिवर्तित हो गई थी I

{(कृष्ण यजुः पुरुषसुक्त में इसप्रकार दिया गया है----ॐ धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रः प्रविद्वान् प्ररिश्चतस्रः I तमेवं विद्वानमृत इह् भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते I यह मन्त्र है I) और इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है
-- --------------

धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रफ्प्रविद्वान् प्रतिशश्चतस्र ।

तमेवम् विद्वान् अमृत इह भवति नान्यफ्पन्धा अयनाय विद्यते॥18 II
Page 87 of 331

अर्थ :--ज्ञानीजन उस पुरुष को जानते हैं , जो की सृष्टि से भी पहले था , जिसने इसको अच्छी तरह से समझ लिया है , वह इस जन्म में ही मुक्ति प्राप्त कर लेगा , उसके लिए किसी दूसरे पथ को तलाशने की आवश्यकता नहीं है । मैं इन परमपुरुष , महान आदिपुरुष को जानता हूँ जो कि अंधकार से परे सूर्य की भांति चमकता है । एक अकेले उसी को जानकर कोई मृत्यु के पार जा सकता है अर्थात मृत्यु को लांघ सकता है । वहां उसपार जाने का कोई अन्य मार्ग नहीं है ।

एक अनन्त त्रिकाल सच , चेतन शक्ति दिखात । सिरजत , पालत , हरत , जग, महिमा बरनि न जात ॥

अर्थ :----समस्त सीमाओं से परे और भूतकाल , वर्तमान काल, और भविष्य काल , तीनों कालों में सच एक ही है । जो चेतना और शक्ति दिखाता है अर्थात जो चेतना शक्ति (दिव्य दृष्टि) के द्वारा दिखाई देता है । वह ही जगत का सृजन करता है अर्थात सृष्टि की रचना करता है , पालना करता है और इसको हरता है अर्थात इसका विनाश करता है । इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

रहीम का निम्न दोहा भी यही बताता है ।

एकै साधै सब सधै , सब साधै सब जाय । रहिमन सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय । ।

अर्थ ----रहीम कहते हैं कि एक की साधना करने से ही सब को साधा जा सकता है , सब को साधने से सबकुछ चला

जाता है I वृक्ष की एक जड़ को ही सींचने से वृक्ष फलता फूलता है और फैलता है I

पुरुषसूक्त को समझने के लिए विद्वद्जन इसे भी पढ़ें----

विशेष:--(श्रीमद्भागवत--महापुराण द्वितीय स्कन्ध सृष्टि-वर्णन नामक पांचवें और छठे अध्याय में इसप्रकार बताया गया है):------द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, और जीव-- वास्तव में भगवान् से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है I वेद (जो कुछ भी जानने योग्य है), नारायण परायण हैं अर्थात उनका गुणगान करने वाले हैं I देवता भी नारायण के अंगों से ही कल्पित हुए हैं और समस्त यज्ञ आदि भी उन नारायण अर्थात ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ही हैं और उनकी प्रसन्नता के लिए ही सब किये जाते हैं और उनसे जिन लोकों की प्राप्ति होती है, वे भी नारायण में ही कल्पित हैं I सभी प्रकार के योग, सभी तपस्यायें, नारायण अर्थात ईश्वर की ओर ले जाने वाली और नारायण में ही कल्पित हैं I समस्त साध्य और साधनों का पर्यवसान (मिलन) इन्हीं प्रभु, ईश्वर,नारायण में है I वे द्रष्टा होने पर भी ईश्वर हैं, स्वामी हैं; निर्विकार होने पर भी सर्व स्वरूप हैं I भगवान् माया के गुणों से रहित एवं अनंत हैं I सृष्टि, स्थिति, और प्रलय के लिए रजोगुण, सत्वगुण, और तमोगुण—ये तीन गुण माया माया के द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं I ये ही
Page 89 of 331

तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान, और क्रिया का आश्रय ले कार मायातीत नित्य मुक्त पुरुष को ही माया में स्थित होने पर कार्य, कर्ण और कर्तापन के अभिमान से बाँध लेते हैं, जबकि वे इन्द्रियातीत अर्थात 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5 कर्मेन्द्रियों, व एक मन से परे भगवान् गुणों के इन तीन आवरणों से अपने स्वरूप को भलीभांति ढक लेते हैं, इसलिए लोग उनको जान नहीं पातेI उन मायापति भगवान् ने एक से बहुत होने की इच्छा होने पर अपनी माया से अपने स्वरूप में स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया I भगवान् की शक्ति से ही काल के द्वारा उन तीनों गुणों में क्षोभ (हलचल, विकार) उत्पन्न होने से स्वभाव द्वारा रूपांतरित करने से कर्म द्वारा महत्तत्व का जन्म हुआ, और इसी प्रकार अहंकार, आदि अन्य गुणों, विराट् सृष्टि के पृथ्वी, शब्द सम्पूर्ण भोग तत्वों का अविर्भाव हुआ I

जिस समय ये पंचभूत, इन्द्रिय,मन और सत्वगुण आदि तीनों गुण परस्पर

संगठित नहीं थे, तब ये अपने रहने के लिए भोगों के साधनरूप शरीर की रचना नहीं कर सके I जब भगवान ने इन्हें अपनी शक्ति से प्रेरित किया, तब वे तत्व परस्पर एक दूसरे से मिल गये और आपस में कार्य कारण भाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टि पिंड और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना की I वह ब्रह्माण्डरूप अंडा एक हजार वर्ष तक
Page 90 of 331

Page 91 of 331

निर्जीवरूप से जल में पड़ा रहा; फिर काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करनेवाले भगवान् ने उसे जीवित कर दिया I उस अंडे को फोड़ कर उसमें से वही विराट् पुरुष निकला, जिसकी जंघा, चरण, भुजाएं, नेत्र, मुख और सिर सहस्रों की संख्या में हैं I विद्वान् पुरुष (उपासना के लिये) उसी के अंगों में समस्त लोक और उनमें रहने वाली वस्तुओं की कल्पना करते हैं I जैसे उसकी कमर से नीचे के अंगों में सातों पाताल और उसके पेडू (धुनी)से उपर के अंगों में सातों स्वर्ग की कल्पना की जाती है (जिन्हें इस्लाम व इसाई सात आसमान कहते हैं I) ब्राह्मण इस विराट पुरुष का मुख हैं, भुजाएं क्षत्रिय हैं, जांघों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं I पैरों से लेकर कटि पर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोक की कल्पना की गई है; नाभि में भुवर्लोक की, हृदय में स्वर्लोक की और परमात्मा के वक्ष:स्थल में महर्लोक की कल्पना की गई है I उसके गले में जनलोक, दोनों स्तनों में तपोलोक और मस्तक में ब्रह्मा का नित्य निवास सत्यलोक है I उस विराट् पुरुष कमर में अतल, जांघों में वितल, घुटनों में पवित्र सुतललोक, और जंघाओं में तलातल की कल्पना की गई
है I एड़ी के उपर की गांठों में महातल, पंजे में और एडियों में रसातल और तलुओं में पाताल समझना चाहिए I इस प्रकार विराट् पुरुष सर्व लोकमय है I विराट् भगवान् के अंगों में इसप्रकार भी लोकों

Page 91 of 331

Page 92 of 331

की कल्पना की जाती है की उनके चरणों में पृथ्वी है, नाभि में भुवर्लोक है और सर में स्वर्लोक है
I (पंचम अध्याय का भाव)---- उन्हीं विराट पुरुष के मुख से वाणी और उसके अधिष्ठाता अग्नि, उनकी सात धातुओं से गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्निक्, बृहती, पङ्ति और

जगती सातों छन्द उनकी सात धातुओं से निकले हैंI

उस विराट् पुरुष की जिह्वा से मनुष्यों, पितरों और देवताओं के भोजन करने

योग्य अमृतमय अन्न, सभी रस, रसनेन्द्रिय और उनके अधिष्ठाता वरुण देव, नासा छिद्रों से प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान—ये पांच प्राण और वायु, घ्राणेन्द्रिय से अश्विनीकुमार, समस्त औषधियां व सभी गन्ध उत्पन्न हुए i स्वर्ग और सूर्य उनकी नेत्रेन्द्रिय तथा नेत्र-गोलक बने I उनके कानों से दिशाएँ और तीर्थ तथा श्रोत्रेन्द्रिय से आकाश और शब्द निकले, त्वचा से यज्ञ, स्पर्श और वायु; रोम से उद्भिज पदार्थ, केश, दाढ़ी-मूंछ और नखों से मेघ, बिजली, शिला एवं लोहा आदि धातुएं, भुजाओं से संसार के रक्षक लोकपाल प्रकट हुए I उनका चलना-फिरना भू: भुव:
स्व: --- तीनों लोकों का आश्रय है I विराट् पुरुष का लिङ्ग जल,वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापति का आधार है, उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित आनन्द का उद्गम है i विराट् पुरुष की पायु-इन्द्रिय यम,

Page 92 of 331

Page 93 of 331

मित्र और मलत्याग का तथा गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरक का उत्पत्ति स्थान है I पीठ से पराजय, अधर्म और अज्ञान, नदियों से नद-नदी हड्डियों से पर्वतों का निर्माण हुआ है I उनके उदर में मूल प्रकृति, रस नाम की धातु तथा समुद्र, समस्त प्राणी और उनकी मृत्य समाई हुई है I उनका हृदय ही मन की जन्म भूमि है I यहां विज्ञजन यह सुचारू रूप से जान लें I यहां स्वयं ब्रह्मा जी द्वारा नारद जी को किये गये उपदेश के अनुसार ब्रह्मा जी ने नारद जी को बताया कि हम, तुम,धर्म, सनकादि, शंकर, विज्ञान, और अन्त:करण—सबके सब उनके चित्त में आश्रित हैं II कहां तक गिनाये जाएँ---यहां तक कि मैं, तुम, सनकादि, शंकर, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग,रेंगनेवाले जन्तु, गन्धर्व,अप्सरायें, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, और भी नाना प्रकार के जीव — जो आकाश, जल या स्थल में रहते हैं---ग्रह-नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे), तारे, बिजलीऔर बादल—ये सब-के-सब विराट् पुरुष ही हैं I यह सम्पूर्ण विश्व—जो कुछ भी था, है या होगा---सबको वह घेरे हुए है और उसके अंदर यह विश्व उसके केवल दस अंगुल (ब्रह्माण्ड के सात आवरणों का वर्णन करते हुए वेदान्त प्रक्रिया में ऐसा माना है कि — पृथ्वी से दस गुणा जल है, जल दस गुणा अग्नि, अग्नि से दस गुणा वायु, वायु से दस गुणा आकाश,

Page 93 of 331

Page 94 of 331

आकाश से दस गुणा अहंकार, अहंकार से दस गुणा महत्तत्व और महत्तत्व से दस गुणी मूल प्रकृति
है I वह प्रकृति भगवान् के केवल एक पाद में है I इसप्रकार भगवान् की महत्ता प्रकट की गयी है I यह दशांगुल-न्याय कहलाता है I) परिमाण में ही स्थित है I जैसे सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है I जो कुछ मनुष्य की क्रिया और संकल्प से बनता है, उससे वह परे है और अमृत एवं अभयपद अर्थात मोक्ष का स्वामी है I यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमा का पार नहीं पा सकता I सम्पूर्ण लोक भगवान् एक पादमात्र (अंशमात्र) हैं तथा उनके अंशमात्र लोकों में समस्त प्राणी निवास करते हैं I भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के ऊपर महर्लोक है I उसके भी ऊपर जन, तप और सत्यलोकों में क्रमशः अमृत, क्षोभ एवं अभय का नित्य निवास है I जन, तप और सत्य—इन तीनों लोकों में ब्रह्मचारी,-वानप्रस्थ एवं सन्यासी निवास करते हैं I दीर्घकालीन ब्रह्मचर्य से रहित गृहस्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के भीतर ही निवास करते हैं I शास्त्रों में दो मार्ग बतलाये गये हैं—एक अविद्यारूप कर्म-मार्ग, जो सकाम पुरुषों के लिए है और दूसरा उपासनारूप विद्या
का मार्ग, जो निष्काम उपासकों के लिए है I मनुष्य दोनों में से किसी एक का आश्रय लेकर भो प्राप्त कराने वाले दक्षिण मार्ग से अथवा मोक्ष प्राप्त

Page 94 of 331

Page 95 of 331

कराने वाले उत्तरमार्ग से यात्रा करता है; किन्तु पुरुषोत्तम भगवान् दोनों के आधारभूत
हैं I जैसे सूर्य अपनी किरणों से सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग रहते हैं, वैसे ही जिन परमात्मा से इस अंड की और पंचभूत, एकादश इन्द्रिय, एवं गुणमय विराट् की उत्पत्ति हुई है--वे प्रभु भी इन समस्त वस्तुओं के अंदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत हैं I

ब्रह्मा जी ने आगे बताया---जिस समय इस विराट् पुरुष के नाभि-कमल से मेरा जन्म हुआ, उस समय इस पुरुष के अंगों के अतिरिक्त मुझे और कोई भी यज्ञ की सामग्री नहीं मिली I तब मैंने उनके अंगों में ही यज्ञ के पशु, युप (स्तम्भ), कुश, यज्ञभूमि और यज्ञ के योग्य उत्तम काल कल्पना की I यज्ञ के लिए आवश्यक पात्र आदि स्नेहपदार्थ, छ: रस, लोहा, मिटटी, जल, ऋक, यजु:, साम, चातुर्होत्र, यज्ञों के नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओं के नाम, पद्धतिग्रन्थ, संकल्प, तन्त्र (अनुष्ठान की रीति), गति, मति, श्रद्धा, श्रद्धा, प्रायश्चित और समर्पण-यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट् पुरुष के अंगों से ही इकट्ठी की I इसप्रकार विराट् पुरुष के अंगों से ही सारी सामग्री का संग्रह करके मैंने उन्हीं सामग्रियों से उन यज्ञरूप परमात्मा का यज्ञ के द्वारा यजन किया I भाव या अभाव, कार्य या कारण के रूप में ऐसी कोई

Page 95 of 331

Page 96 of 331

वस्तु नहीं है, जो भगवान से भिन्न हो I (षष्ठम अध्याय) मुनिराज शर्मा}

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है------ उस समय देवताओं ने यज्ञ करना चाहा, परन्तु यज्ञ की कोई सामग्री उपलब्ध न हुई, तब उन्होंने पुरुषस्वरूप में ही हविष्य की भावना की I जब पुरुषरुप हविष्य से हि देवताओं ने यज्ञ क विस्तार किया, उस समय उनके सङ्कल्पानुसार वसन्त ऋतु घी हुई, ग्रीष्म रितुसे समिधा का काम दिया और शरद् ऋतु से विशेष प्रकार के चारु- पुरोडाशादि हविष्य की आवश्यकता पूर्ण हुई I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है---- जब देवों ने विराट पुरुष रूप को हवि मानकर यज्ञ का शुभारम्भ किया, तब घृत वसंत ऋतु, ईंधन(समिधा) ग्रीष्म ऋतु एवं हवि शरद ऋतु हुई I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- जिस पुरुषरूप हविष्य से देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, वसंत उसका घी था, ग्रीष्म काष्ठ एवं शरद् हवि थी।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

Page 96 of 331

यत्पुरुषेण हविषा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः
शरद्धविः ।

उक्त प्रकार देव – शरीर की प्राप्ति पर देवताओं
ने पुरुष रूप को मानस हविमानकर उसके द्वारा
मानस यज्ञ को विस्तृत किया । उस समय वसंत ऋतु ,
घृत , ग्रीष्म समिधा और शरद ऋतु हवि हुई ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस
प्रकार है :--

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ।

जब देवों ने विराट् पुरुषरूप को हवि मानकर
यज्ञ का शुभारम्भ किया , तब घृत बसंत ऋतु ,
ईंधन (समिधा) ग्रीष्मऋतु एवं हवि शरद्ऋतु हुई ।
{यहाँ सृष्टि यज्ञ के प्रारम्भिक स्वरूप का
वर्णन है ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या :-

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः ।

यत् । पुरुषेण । हविषा । देवा :। यज्ञम् । अतन्वत ॥
वसन्त :। अस्य । आसीत् । आज्यम् । ग्रीष्म :। इध्म :।
शरत् । हवि :॥

Page 98 of 331

पदार्थ:--(यत्) यदा (पुरुषेण) पूर्णेन परमात्मा (हविषा) होतुमादातुमर्हेण (देवा:) विद्वांस: (यज्ञम्) मानसं ज्ञानमयम् (अतन्वत) तन्वते विस्तृणन्ति (वसन्त:) पूर्वाह्ण: (अस्य) यज्ञस्य (आसीत्) अस्ति (आज्यम्) (ग्रीष्म:) मध्याह्न: (इध्म:) प्रदीपक: (शरत्) अर्द्धरात्र: (हवि:) होतव्यं द्रव्यम् II

अन्वय:----हे मनुष्या:! यद्धविषा पुरुषेण सह देवा यज्ञमतन्वत तदाऽस्य वसन्त आज्यं ग्रीष्म इध्म: शरद्धविरासीदिति यूयमपि विजानीत II

भावार्थ:-- यदा बाह्यसामग्रयभावे विद्वांसो सृष्टिकर्त्तुरीश्वरस्योपासनाख्यं मानसं ज्ञानयज्ञं विस्तारयेयुस्तदा पूर्वाह्णादिकाल एव साधनरूपेण कल्पनीय:ll

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! (यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवा:) विद्वान् लोग (यज्ञन्) मानसज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करते हैं, (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्त:) पूर्वाह्ण काल ही (आज्यम्) घी (ग्रीष्म:) मध्याह्न काल (इध्म:) इन्धन प्रकाशक और (शरत्) आधी रात (हवि:) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है, ऐसा जानो ll

भावार्थ:-- जब बाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर की उपासनारूप

Page 98 of 331

मानसज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें , तब पूर्वाह्न आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करना चाहिये ॥

सप्तास्येत्यस्य नारायण ऋषि : । पुरुषो देवता । अनुष्टुप छन्द : । गान्धार : स्वर :। पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि : सप्त समिधः कृताः ।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ (पु॰सू॰ 15)

अन्वयः --- यद् देवा यज्ञं पुरुषं पशुम् तन्वाना अवध्नन् अस्य सप्त आसन् परिधय : त्रिसप्त समिधः कृताः ।

शब्दार्थः ---- देवा ---देवताओंने ; यद् ---जिस; यज्ञं ---यज्ञ के लिये ; पुरुषं ---पुरुष को ; पशुम् ---प्राणी को , अर्थात बलि पशु ; तन्वाना ----कोमलता से , संकल्प द्वारा ; अवध्नन् ----बान्ध दिया , निश्चित् कर दिया , नियुक्त किया ; अस्य ---इसकी ; सप्त -----सात ; आसन्---बिस्तर , आसन; परिधय :----परिधियां ; त्रिसप्त ----इक्कीस् ; समिधः —-समिधायें ; कृताः ----बनायी गई ;

Page 100 of 331

अर्थ:-- जब देवताओं ने जिस यज्ञ के लिये पुरुष प्राणी को संकल्प द्वारा नियुक्त किया था सात समुद्र उसके आसन की परिधि थे और इक्कीस प्रकार की समिधायें बनाई थी I (यह अलग बात है कि मानसिक यज्ञ में छन्दों को ही समिधा कल्पित किया गया है I

श्रीमद्भागवत में अर्थ इस प्रकार मिलता है------- प्रजापति के प्राणरूपी देवताओं ने जब मानसिक यज्ञ का अनुष्ठान करते समय संकल्प द्वारा पुरुष रूपी पशु का बन्धन किया था, उस समय सात समुद्र, इस यज्ञ की परिधि थे और इक्कीस प्रकार के छंदों की समिधा हुई! (गायत्री आदि 7, श्रुति जगति आदि 7, और कृष्नि आदि 7---ये 21 छन्द हैं I)

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- देवों ने जिस यज्ञ का विस्तार किया, उसमें विराट पुरुष को ही पशु (हव्य) रूप की भावना से बाँधा (नियुक्त किया), उसमें यज्ञ की सात परिधियाँ (सात समुद्र) एवं इक्कीस (छंद) समिधाएँ हुईंI

मेरे अभिप्राय से अर्थ यह है--देवताओं ने जिस यज्ञ के लिये पुरुष प्राणी को संकल्प द्वारा नियुक्त किया था सात समुद्र उसके आसन की परिधि थे और इक्कीस प्रकार की समिधायें बनाई थी I (यह अलग बात है कि मानसिक यज्ञ में छन्दों को ही समिधा कल्पित किया गया है I)

Page 100 of 331

Page 101 of 331

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- देवताओं ने जब यज्ञ करते समय (संकल्प से) औरुश्रुप पशु का बंधन किया, तब सात समुद्र इसकी परिधि (मेखलाएँ) थे। इक्कीस प्रकार के छंदों की (गायत्री,अतिजगती, और कृति में से प्रत्येक के सात-सात प्रकार से) समिधाएँ बनीं।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि: सप्त समिधः कृताः I

देवा यद्यज्ञं तन्वाना s अवध्नन् पुरुषं पशुम् II

जब देवताओं ने मानस यज्ञ को विस्तृत करते हुए इस विराट्पुरुष में पशु रूप की भावना कर बाँधा, तब यज्ञ की सात परिधियाँ हुईं और इक्कीस छंद इसकी समिधाएँ हुईं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि: सप्त समिधः
कृताः I

Page 101 of 331

देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽ अवध्नन् पुरुषं पशुम् ॥

देवों ने जिस यज्ञ का विस्तार किया , उसमें विराट्पुरुष को ही पशु (हव्य) रूप की भावना से बाँधा (नियुक्त किया), उसमें यज्ञ की सात परिधियाँ (सात समुद्र) एवं इक्कीस (छंद) समिधाएँ हुईं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या

:-

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि : सप्त समिधः कृताः ।

देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥

सप्त । अस्य । आसन्। परिधय । इति परिऽधय :। त्रि :। सप्त । समिध इति सम्ऽइध :। यत् । यज्ञम् । तन्वाना :। अबध्नन् । पुरुषम् । पशुम् ॥

पदार्थ :--(सप्त) गायत्र्यादीनि छन्दांसि (अस्य) यज्ञस्य (आसन्) सन्ति (परिधय :) परित : सर्वत : सूत्रवद्धीयन्ते ये ते (त्रि :) त्रिवारम् (सप्त) एकविंशति : प्रकृति : महत्तत्वं , अहंकार :, पञ्च स्थूलानि , पञ्च सूक्ष्मभूतानि , पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि ,सत्त्वरजस्मांसि त्रयो गुणाश्चेत्येकविंसशति : (समिध :) सामग्रीभूताः

Page 103 of 331

(कृता:) निष्पदिता: (देवा:) विद्वांसः (यत्) यम् (यज्ञम्) मानसं ज्ञानमयम् (तन्वानाः) विस्तृण्वन्तः (अबध्नन्) बध्नन्ति (पुरुषम्) परमात्मानम् (पशुम्) द्रष्टव्यम्II

अन्वय:--हे मनुष्या:! यद्यं यज्ञं तन्वाना देवा: पशुं पुरुषं हृद्यबध्नन् तस्याऽस्य सप्त परिधय आसंस्त्रि: सप्त समिध: कृतास्तं यथाविद विजानीत II

भावार्थ:--हे मनुष्या:! यूयमिममनेकविधकल्पितपरिध्यादिसामग्रीयुक्तं यज्ञं कृत्वा पूर्णमीश्वरं विज्ञाय सर्वाणि प्रयोजनानि साध्नुत II

पदार्थ:--हे मनुष्यो! (यत्) जिस (यज्ञम्) मानसज्ञान यज्ञ को (तन्वाना:) विस्तृत करते हुए (देवा:)विद्वान् लोग (पशुम्) जानने योग्य (पुरुषम्) परमात्मा को हृदय में (अबध्नन्) बांधते(अस्य) इस यज्ञ के (सप्त) सात गायत्री आदि छन्द (परिधय:) चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान (आसन्) हैं (त्रि:, सप्त) इक्कीस अर्थात् प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय और सत्त्व, रजस्, तमस्, तीन गुण ये (समिध:) सामगीरूप (कृता:) किये उस यज्ञको यथावात् जानो II

भावार्थ:-- हे मनुष्यो! तुम लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री

Page 103 of 331

से युक्त मानस यज्ञ को कर उससे पूर्ण ईश्वर को जान के सब प्रयोजनों को सिद्ध

करो ॥

यज्ञेनेत्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । विराट् त्रिष्टुप छन्द :। धैवत : स्वर :॥ पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः । (पु॰सू॰ 16)

अन्वयः - तानि धर्माणि देवाः प्रथमानि आसन् यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त । ते ह् नाकं महिमानः सचन्त , यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति ।

शब्दार्थः ---- तानि ---उन्होंने , जिन्होंने ; धर्माणि ---धर्मात्मा , महात्मा ; देवाः ---देवताओं ने ; प्रथमा ---पहले से ही , पूर्व में ही ; न्यासन् ---धरोहर के रूप में रखे , सङ्कल्प् किये हुये ; यज्ञेन ---यज्ञ के द्वारा ; यज्ञम् ---यज्ञ -पुरुष का,; अयजन्त ---- अनुष्ठान किया ; ते ---वे ; ह् ---ही ; नाकं ----स्वर्गमें ; महिमानः ---महत्व , सम्मान ,

Page 105 of 331

महानता को प्राप्त हुए; सचन्त---संचय करते हैं; यत्र---जहां; पूर्वे---पूर्व में; पहले से ही; साध्याः---साधक गण; देवाः--देवगण; सन्ति—रहते हैं;

अर्थः--- धर्मात्मा देवताओं जिन्होंने पूर्वं में धरोहर स्वरुप संकल्प किये हुये यज्ञके द्वारा यज्ञपुरुष का अनुष्ठान किया I वे ही स्वर्गलोक की महानता अर्थात स्वर्ग के यश को सञ्चय करते हैं जहां पूर्व से ही साधक, सुर देवगण रहते हैं I अर्थात इसप्रकार देवताओं ने सबसे पहले पुरुष की आराधना की, यद्यपि यह एक अध्यात्मिक यज्ञ था, फिर भी यह धर्म में सबसे पहले हुआ, जो यह यज्ञ करते हैं, वे अवश्य ही स्वर्ग को प्राप्त करेंगे जिनको साध्य देवताओं ने प्राप्त किया है I

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है---- देवताओं ने पूर्वोक्त मानसिक यज्ञ द्वारा यज्ञस्वरूप पुरुष-प्रजापति की आराधना की I इस आराधना से समस्त जगत् को धारण करने वाले वे पृथ्वी आदि मुख्य भूत प्रकट हुए I इस यज्ञ की उपासना करने वाले महात्मा लोग उस स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं, जहां प्राचीन साध्य देवता निवास करते हैंI

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- आदि श्रेष्ठ धर्मपरायण देवों ने, यज्ञ से

Page 105 of 331

यज्ञरूप विराट सत्ता का यजन किया | यज्ञीय जीवन जीनेवाले धार्मिक महात्माजन पूर्वकाल के साध्य देवताओं के निवास, स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं I ईश्वर की महिमा बताने के लिए महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने ठीक ही कहा है------

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- -- देवताओं ने (पूर्वोक्त रूप से) यज्ञ के द्वारा यज्ञस्वरूप परम्-पुरुष का यजन (आराधन, यज्ञ) किया। इस यज्ञ से सर्व प्रथम धर्म उत्पन्न हुए। उन धर्मों के आचरण से वे देवता महान महिमावाले हो कर उस स्वर्गलोक का सेवन करते हैं, जहां प्राचीन साध्य-देवता निवास करते हैं।[अत:हम सभी सर्वव्यापी जड़-चेतनात्मकरूप विराट् पुरुष की करबद्ध स्तुति करते हैं।]

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों की व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् I

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः I

मानस यज्ञ के द्वारा देवताओं ने यज्ञ रूप प्रजापति की पूजा की और वे धर्मधारकों में प्रमुख हुए I जिस स्वर्ग लोक में प्राचीन साध्य
Page 106 of 331

Page 107 of 331

देवता निवास करते हैं, उसी स्वर्ग को सिद्ध महात्माजन प्राप्त होते हैं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् I

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः I

आदिकालीन श्रेष्ठ धर्मपरायण देवों ने, यज्ञ द्वारा यज्ञरूप विराट् का यजन कियाI यज्ञीय जीवन जीनेवाले (याजक) पूर्वकाल के सिद्ध-साध्यगणों तथा

देवताओं के निवास महिमाशाली स्वर्गलोक को मानते हैं I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनानिर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि
धर्माणि प्रथमान्यासन् I

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे
साध्याः सन्ति देवाः II

Page 107 of 331

यज्ञेन । यज्ञम । अयजन्त । देवा :। तानि । धर्माणि । प्रथमानि । आसन्।। ते । ह् । नाकम् । महिमान :। सचन्त । यत्र । पूर्वे । साध्या :। सन्ति । देवा :।

पदार्तः :--(यज्ञेन) उक्तेन ज्ञानेन (यज्ञम्) पूजनीयं सर्वरक्षकमग्निवत्तपनम् (अयजन्त) पूजयन्ति (देवा :) विद्वांस : (तानि) ईश्वरपूजनादीनि (धर्माणि) धारणात्मकानि (प्रथमानि) अनादिभूतानि मुख्यानि (आसन्) सन्ति (ते) (ह) एव (नाकम्) अविद्यामानदु :खं मुक्तिसुखम् (महिमान :) महत्त्वयुक्ता : (सचन्त) समवयन्ति प्राप्नुवन्ति (यत्र) यस्मिन् सुखे (पूर्वे) इत: पुर्वसम्भवा : (साध्या :) कृतसाधना : (सन्ति) (देवा :) देदीप्यमाना विद्वांस :।।

(निरुक्तकार इमं मन्त्रमेव व्याचष्टे -यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा अग्निनाग्निमयजन्त देवा अग्नि पशुरासीत्तमालभन्त तेनायजन्तेति च ब्राह्मणम् । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ते ह नाकं महिमान : समसेवन्त यत्र पूर्वे साध्या : सन्ति देवा : साधना द्युस्थाने देवगणा इति नैरुक्ता :।। निरुक्ति नैगम अध्याय 12। खं 41।।)

अन्वय :--हे मनुष्या :! ये देवा यज्ञेन यज्ञमयजन्त तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ते महिमान : सन्तो यत्र पूर्वे साध्या देवा : सन्ति तन्नाकं ह सचन्त तद्यूयमप्याप्नुत ।।

भावार्थ :--मनुष्यैर्योगाभ्यासादिना सदा परमेश्वर उपासनीय : । अनेनानादिकालीनधर्मेण मुक्तिसुखं प्राप्य पूर्वविद्वद्वदानन्दितव्यम् ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! जो (देवा :) विद्वान् लोग (यज्ञेन) पूर्वोक्त ज्ञानयज्ञ से (यज्ञम्)

पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वी ईश्वर की (अयजन्त) पूजा करते हैं (तानि) वे ईश्वर की पूजा आदि (धर्माणि) धारणरूप धर्म (प्रथमानि) अनादि रूप से मुख्य (आसन्) हैं (ते) वे विद्वान् (महिमान :) महत्त्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख में (पूर्वे) इस समय से पूर्व हुए (साध्या :) साधनों को किये हुए (देवा :) प्रकाशमान विद्वान् (सन्ति) हैं , उस (नाकम्) स्ब दु :खरहित मुक्तिसुख को (ह) ही (सचन्त) प्राप्त होते है , उसको तुम लोग प्राप्त होओ ॥

भावार्थ :--मनुष्यों को चाहिए कि योगाभ्यास आदि से सदा ईश्वर की उपासना कर इस अनादिकाल से प्रवृत्त धर्म से मुक्तिसुख को पाके पहिले मुक्त हुए विद्वानों के समान आनन्द भोगें ॥

अद्भ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि :। आदित्यो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द :। धैवत स्वर :॥ पुनस्तेनमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

Page 110 of 331

------------------------- ------------------------- -- ----------------------

ऋग्वेद के अनुसार पुरुष सूक्त के 16 सूक्तों का उल्लेख मिलता है I

बाद में 2 सूक्त और संज्ञान में आये हैं जो इस प्रकार हैं I वैसे यजुर्वेद सायण-भाष्य में २२ सूक्त बताये गये हैं I विशेष—[(कृष्ण यजुर्वेद पुरुषसूक्त व सायण भाष्य और सांख्य मेंइसप्रकार दिया गया है—

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णें तमसस्तु पारे ।

सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते ।।17 II

अन्वय -तमस: तु पारे आदित्यवर्णे एतम् महान्तम् पुरुषं अहम् वेद । यत् धीरो सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य नामानि कृत्वा अभिवदन् आस्ते।।

शब्दार्थ = तमस: -अविद्या रूप अंधकार से, तु-तो ,पारे -अतीत /परे/से दूर, आदित्यवर्णे - सूर्य की भांति स्वयंप्रकाशस्वरूप में, एतम् - इस, महान्तम् पुरुषं- महान पुरुष (परमेश्वर) को, अहम् वेद -मैं जानता हूं । यत्-जो, धीरो - ध्यानशील/ बुध्दिमान/ अथवा बुद्धिमान के लिए, सर्वाणि भूतानि - सभी प्राणियों को, विचिन्त्य - विचार करके / उनके अनुरूप चिंतन करके, नामानि

Page 110 of 331

Page 111 of 331

कृत्वा - नामों/ विभिन्न नामसंज्ञा प्रदान करके, अभिवदन्- संबोधित करते हुए /नमस्क्रिया द्वारा, आस्ते- विराजमान हैं / बैठा है।।

सरलार्थ = अविद्या रूप अंधकार से अतीत अर्थात् परे सूर्य के भांति

स्वयंप्रकाशस्वरूप इस महान पुरुष (परमेश्वर) को मैं जानता हूं । जो ध्यानशील, बुद्धिमान (अथवा बुद्धिमान के लिए) सभी प्राणियों को विचारकर विभिन्न नामसंज्ञा प्रदान करके, संबोधित करते हुए विराजमान है अर्थात् बैठा (प्रतिष्ठित) है) पाठान्तर से यह श्लोक इस प्रकार भी है:--वेदाहमेतम् पुरुषम् महान्तम् आदित्यवर्णम् तमसस्तु पारे । सर्वाणि रूपाणि विजित्य धीरो नामानि कृत्वा भिवदन्यदास्ते॥
17II

अर्थ:--मैं उस महान, प्रसिद्ध पुरुष को जानता हूँ, जो सूर्य के भांति चमकता है जो अन्धकार से परे है, जिसने सभी स्वरूपों को बनाया, जिसने सबको नाम दिया और जो सब पर राज्य करता है I (इस श्लोक में विचिन्त्य के स्थान पर विजित्य शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ होता है जीतकर अर्थात सबको अपने अधिकार में लेकर)

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों की व्याख्या है उसमें

Page 111 of 331

Page 112 of 331

यह श्लोक संख्या 18 पर दिया है जिसका का अर्थ इस प्रकार है:-

वेदाहमेतं पुरुषम महान्तमादित्यवर्णं तमस: परस्तात् I

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य:पन्था विद्यतेऽयनाय II

मैं इस अत्यंत महान, अनुपम आदित्य रूप पुरुष को अन्धकार रहित जानता हूँI उस आदित्य को जान लेने पर मृत्यु को जीता जाता है I आश्रय प्राप्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमस: परस्तात् I

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य:पन्था विद्यतेऽयनाय II

सूर्य के समतुल्य तेजसम्पन्न, अंधकाररहित, वह विराट् पुरुः है, जिसको जानने के पश्चात साधक (उपासक) को मोक्ष की प्राप्ति होती है I मोक्ष प्राप्ति का यही मार्ग है, इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं I

Page 112 of 331

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम्

व्याख्या :--

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं
तमस: परस्तात् ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य :पन्था
विद्यतेऽयनाय ॥

वेद । अहम्। एतम् । पुरुषम् । महान्तम् ।
आदित्यवर्णमित्यादित्यऽवर्णम् । विदित्वा । अति।
मृत्युम् । एति । न । अन्य :। पन्था :। विद्यते । अयनाय ॥

पदार्थ :-- (वेद) जानामि (अहम्) (एतम्) पूर्वोक्तं
परमात्मानाम् (पुरुषम्)

स्वस्वरूपेण पूर्णम् (महान्तम्)
महागुणविशिष्टम् (आदित्यवर्णम्) आदित्यस्य
वर्ण : स्वरूपमिव स्वरूपं यस्य तं स्वप्रकाशम्
(तमस:) अज्ञानान्धकाराद्वा (परस्तात्) परस्मिन्
वर्त्तमानम् (तम्) (एव) (विदित्वा) विज्ञाय (अति)
उल्लङ्घने (मृत्युम्) दु :खप्रदं मरणम् (एति)
गच्छति (न) (अन्य :) भिन्न : (पन्था :) मार्ग :
(विद्यते) भवति (अयनाय) अभीष्टस्थानाय
मोक्षाय ॥

अन्वय :--हे जिज्ञासोऽहं यमेतं
महान्तमादित्यवर्णं तमस : परस्ताद्वर्त्तमानं

पुरुषं वेद तमेव विदित्वा भवान्
मृत्युमत्येति । अन्य : पन्था अयनाय न विद्यते ॥

भावार्थ :-- यदि मनुष्या ऐहिकपारमार्थिके सुखे इच्छेयुस्तर्हि सर्वेभ्यो बृहत्तमं स्वप्रकाशानन्दस्वरूपमज्ञानलेशाद् दूरे वर्त्तमानं परमात्मानं ज्ञात्वैव मरणाद्यगाधदु :खसागरात् पृथग्भवितुं शक्नुवन्त्ययमेव सुखप्रदो मार्गोऽस्ति । अस्मादन्य : कश्चिदपि मनुष्याणां मुक्तिमार्गो न भवति ॥

पदार्थ :-- हे जिज्ञासु पुरुष ! (अहम्) मैं जिस (एतम्) इस पूर्वोक्त (महान्तम्) बड़े -बड़े गुणों से युक्त (आदित्यवर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप् (तमस:) अन्धकार वा अज्ञान से (परस्तात्) पृथक् वर्त्तमान (पुरुषम्) स्वस्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हूं (तम् , एव) उसीको (विदित्वा) जान के आप(मृत्युम्) दु :खदायी मरण को (अति , एति) उल्लङ्घन कर जाते हो , किन्तु (अन्य :) इससे भिन्न (पन्था :) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है ॥

भावार्थ :-- यदि मनुष्य इस लोक -परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सबसे अति बड़े स्वयंप्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक वर्त्तमान परमात्मा को मरणादि अथाह दु :खसागर से पृथक हो

सकते हैं , यही सुखदायी मार्ग है , इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की मुक्ति का मार्ग नहीं है ll

प्रजापतिरित्यस्योत्तरनारायण ऋषि :l आदित्यो देवता l भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः l धैवत

स्वर :ll पुनरीश्वर : कीदृश इत्याह ll फिर ईश्वर कैसा है , इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ll

----

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों की व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

अद् भ्य : सम्भृत : पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मण : समवर्त्तताग्रे l

तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति
तन्मर्त्यस्यदेवत्वंमाजानमग्रे ll

पृथ्वी आदि की रचना के निमित्त पंचभूत से जिस रस की पुष्टि हुई और जो

विश्वकर्म वाला है , उसका रस सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ , उस रस को और रूप को धारण करते हुए सूर्य नित्य प्रकट होते हैं l

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद — संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है :--

अद् भ्य : सम्भृत : पृथिव्यै रसाच्च
विश्वकर्मण : समवर्त्तताग्रे ।

तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति
तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥

सर्वप्रथम सब कर्म करने वाले परमात्मा (विश्वकर्मा) ने पृथ्वी एवं जल बनाये और उस जलरूप रस (प्राणतत्व) से सृष्टि का निर्माण हुआ । मर्त्य को देवत्व प्रदान करते हुए वह विश्व - निर्माता विश्व का निर्माण करता है ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या :-

अद् भ्य : सम्भृत : पृथिव्यै रसाच्च
विश्वकर्मण : समवर्त्तताग्रे ।

तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति
तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥

अद्भ्य इत्युत्ऽभ्यः । सम्भृत इति सम्ऽभृतः । सम्। अवर्त्तत । अग्रे ॥ तस्य । त्वष्टा । विदधदिति विऽदधत् । रूपम् । एति । तत् । मर्त्यस्य । देवत्वमिति देवऽतवम् आजानमित्याऽजानम् । अग्रे ॥

पदार्थ:-- (अद्भय:) जलेभ्य: (सम्भृत:) सम्यक् पुष्ट (पृथिव्यै) पर्थिव्या:I अत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी (रसात्) जिह्वाविषयात् (च) (विश्वकर्मणः) विश्वानि सर्वाणि सत्यानि कर्माणि यस्याश्रयेण तस्मात् सूर्य्यात् (सम्) (अवर्त्तत) (अग्रे) प्राक् (तस्य) (त्वष्टा) तनूकर्ता (विदधत्) विधानं कुर्वन् (रूपम्) स्वरूपम् (एति) (तत्) (मर्त्यस्य) मनुष्यस्य (देवत्वम्) विद्वत्त्वम् (आजानम्) समन्ताज्जनानाम् मनुष्याणामिदं कर्त्तव्यं कर्म (अग्रे) आदित:II

अन्वय:-- हे मनुष्या:! योऽद्भय: पृथिव्यै विश्वकर्मणश्च सम्भृतस्तस्माद् रसादग्र इदं सर्वं समवर्त्तत तस्याऽस्य जगतो तद् रूपं त्वष्टा विदधदग्रे मर्त्यस्याजानं देवत्वमेतिII

भावार्थ:-- हे मनुष्या:! योऽखिलकार्यकर्ता परमात्मा कारणात् कार्याणि निर्मिमीते

सकलस्य जगत: शरीराणां रूपाणि विदधाति तज्ज्ञानं तदाज्ञापालनमेव

देवत्वमस्तीति जानीत II

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! जो (अद्भय:) जलों (पृथिव्यै:) पृथिवी (च) और (विश्वकर्मण:) सब कर्म जिसके आश्रय से होवे उस सूर्य से (सम्भृत:) सम्यक् पुष्ट हुआ उस (रसात्) रस से (अग्रे) पहिले
Page 117 of 331

यह सब जगत् (सम् अवर्त्तत) वर्त्तमान होता है (तस्य)उस इस जगत् के (तत्) उस (रूपम्) स्वरूप को (त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाला ईश्वर (विदधत्) विधान करता हुआ (अग्रे) आदि में (मर्त्यस्य) मनुष्य के (आजानम्) अच्छे प्रकार कर्तव्य कर्म और (देवत्वम्) विद्वता को (एति) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्यों ! जो सम्पूर्ण कार्य करने हारा परमेश्वर कारण से कार्य

बनाता है , सब जगत् के शरीरों के रूपों को बनाता है , उसका ज्ञान और उसकी आज्ञा का पालन ही देवत्व है , ऐसा जानो ॥

वेदाहमित्यस्योत्तरनारायण ऋषि :। आदित्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द :। धैवत : स्वर :॥ अथ विज्ञानं जिज्ञासवे कथमुपदिशेदित्याह ॥

अब विद्वान् जिज्ञासु के लिये कैस उपदेश करे , इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

Page 119 of 331

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते I

तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा II श्लोक 19)

सर्वात्मा प्रजापति गर्भ में प्रविष्ट होकर अजन्मा होते हुए भी अनेक कारण रूप होकर जन्म लेते हैं I ब्रह्मज्ञानीजन उन प्रजापति के स्थान को देखते हैं I सम्पूर्ण भुवन उस कारणात्मक प्रजापति रूप ब्रह्म में ही स्थित है I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते I

तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा II

प्रजापालक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान है, वह अजन्मा होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता है I उसकी कारण शक्ति में सम्पूर्ण भुवन समाहित हैं I ज्ञानीजन उसके मुख्य स्वरूप को देख पाते हैं I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

Page 119 of 331

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।

तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

प्रजापतिरिति प्रजाऽपति :। चरति । गर्भे । अन्त :। अजायमान :। बहुधा । वि । जायते ॥ तस्य । योनिम् । परि । पश्यन्ति । धीरा :। तस्मिन् । ह । तस्थु :। भुवनानि । विश्वा ॥

पदार्थ :-- (प्रजापति :) प्रजापालको जगदीश्वर : (चरति) (गर्भे) गर्भस्थे जीवात्मानि (अन्त :) हृदि (अजायमान :) स्वस्वरूपेणानुत्पन्न : सन् (बहुधा) बहुप्रकारै : (वि) विशेषेण (जायते) प्रकटो भवति (तस्य) प्रजापते : (योनिम्) स्वरूपम् (परि) सर्वत : (पश्यन्ति) प्रेक्षन्ते (धीरा :) ध्यानवन्त : (तस्मिन्) जगदीश्वरे (ह) प्रसिद्धम् (तस्थु :) तिष्ठन्ति (भुवनानि) भवन्ति येषु तानि लोकजातानि (विश्वा) सर्वाणि ॥

अन्वय :--हे मनुष्या :! योऽजायमान : प्रजापतिगर्भेऽन्तश्चरति बहुधा विजायते तस्य यं योनिं धीरा : परिपश्यन्ति तस्मिन् ह विश्वा भुवनानि तस्थु :॥

भावार्थ :-- योऽयं सर्वरक्षक ईश्वर : स्वयमुत्पन्न : सन् स्वसामर्थ्याज्जगदुत्पाद्य तत्रान्त : प्रविश्य सर्वत्र विचरति यमनेकप्रकारेण प्रसिद्धं विद्वांस एव जानन्ति

तं जगदधिकरणं सर्वव्यापकं परमात्मानं विज्ञाय मनुष्यैरानन्दितव्यम् ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! जो (अजायमान :) अपने स्वरुप से उत्पन्न नहीं होनेवाला (प्रजापति :) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्त :) सबके हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (वि , जायते) विशेषकर प्रकट होता (तस्य) उस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को (धीरा :) ध्यानशील विद्वान् जन (परि , पश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक-लोकान्तर तस्थु : स्थित हैं ॥

भावार्थ :-- जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट होके सर्वत्र विचरता है , जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं , उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिए ॥

यो देवेभ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि :। सूर्य्यो देवता । अनुष्टुप् छन्द :। गान्धार : स्वर :॥ अथ सूर्य : कीदृश इत्याह ॥ अब सूर्य्य कैसा है , इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में

Page 122 of 331

पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों की व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहित I

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये
II (श्लोक 20)

जो सूर्यात्मक प्रजापति सब ओरसे देवताओं के लिए प्रकाशित होते हैं और जो देवताओं में पूजनीय एवं उनसे प्रकट हुए हैं, उन तेजस्वी ब्रह्म को नमस्कार हैI

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवाना पुरोहित: I

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये II

देव समुदाय में अग्रणी एवं उन्हें(देवोंको) प्रकाशित करने वाले, जिनका प्राकट्य सब देवों से पहले ही हुआ है, उन तेज सम्पन्न ब्रह्म को नमन है I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहित: I

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये
II
Page 122 of 331

य:। देवेभ्य :। आतपतीत्याऽतपति । य:। देवानाम् । पुरोहित इति पुर :ऽहित :।। पूर्व :। य:। देवेभ्य :। जात :। नम:। रुचाय । ब्राह्मये ।

पदार्थ :-- (य:) सूर्य : (देवेभ्य :) दिव्यगुणेभ्य : पृथिव्यादिभ्य : (आतपति) समन्तात् तपति (य:) (देवानाम्) पृथिव्यादिलोकानाम् (पुरोहित :) पुरस्ताद्धिताय मध्ये धृत : (पूर्व :) (य:) (देवेभ्य :) पृथिव्यादिभ्य : (जात :) उत्पन्न : (नम:) अन्नम् (रचाय) रुचिकरात् (ब्राह्मये) यो ब्रह्मण : परमेश्वरस्यापत्यमिव तस्मात् । अत्रोभयत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी ।।

अन्वय :-- हे मनुष्य :! यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितो यो देवेभ्य : जातस्तस्माद् रुचाय ब्राह्मये नमो जायते ।।

भावार्थ :-- हे मनुष्या :! येन जगदीश्वरेण सर्वेषां हितायान्नाद्युत्पादननिमित्त : सूर्य्यो निर्मितस्तमेव सततमुपासीध्वम् ।।

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! (य:) जो सूर्यलोक (देवेभ्य :) उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ (आतपति) अच्छे प्रकार तपता है (य:) जो (देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों के (पुरोहित :) प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया (य:) जो (देवेभ्य :) पृथिवी आदि से (पूर्व :) प्रथम (जात ;) उत्पन्न हुआ उस (रचाय) रूचि करानेवाले (ब्राह्मये) परमेश्वर

Page 124 of 331

के सन्तान के तुल्य सूर्य्य से (नम:) अन्न उत्पन्न होता है II

भावार्थ:-- हे मनुष्यों! जिस जगदीश्वर ने सबके हित के लिए अन्न आदि की उत्पत्ति के निमित्त सूर्य्यको बनाया है, उसी परमेश्वर की उपासना
करो II

रुचिमित्यस्योत्तरनारायण ऋषि:I विश्वेदेवा देवता:I अनुष्टुप छन्द:I गान्धार: स्वर:II अथ विद्वत्कृत्यमाह II अब विद्वानों का कृत्य कहते हैंII

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों की व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽ अग्रे तदब्रुवन् I

यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन् वशे II (श्लोक 21)

देवताओं ने श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप सूर्य को प्रकट कर प्रथम यह कहा कि हे आदित्य! जो ब्राह्मण तुमें अजर अमर रूप से इस प्रकार प्रकट जानते हैं, देवता उस ज्ञानी ब्राह्मण के वशवर्ती होते हैं I
Page 124 of 331

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद — संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है :--

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तद्ब्रुवन् ।

यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽ असन् वशे ॥

ब्रह्मज्ञानी देवों का प्रारम्भिक कथन है कि जो प्रकाशमय ब्रह्म को प्रकट करने वाले ज्ञानी उसको (विराट् सत्ताको) जानते हैं , उनके अधिकार में समस्त देवशक्तियाँ रहती हैं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या :---

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन् ।

यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवाऽअसन् वशे ॥

रुचम् । ब्राह्मम् । जनयन्त :। देवा :। अत्रे । तत् । अब्रुवन् । य:। त्वा । एवम् । ब्राह्मण :। विद्यात् । तस्य । देवा :। असन् । वशे ।

पदार्थ :-- (रुचम्) रुचिकरम् (ब्राह्मम्) ब्राह्मोपासकम् (जनयन्त :) निष्पादयन्त : (देवा :) विद्वांस : (अग्रे) (तत्)

Page 126 of 331

ब्रह्मजीवप्रकृतिस्वरूपम् (अब्रुवन्) ब्रुवन्तु (य:) (त्वा) (एवम्) अमुना प्रकारेण (ब्राह्मण:) (विद्यात्) विजानीयात् (तस्य) देवा:) विद्वांसः (असन्) स्यु: (वशे) तदधीना:II

अन्वय:--हे ब्रह्मनिष्ठ! ये रुचं ब्राह्मं त्वा जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् यो ब्राह्मण एवं विद्यात् तस्य ते देवा वशे असन्II

भावार्थ:--इदमेवाऽ ऽद्यं विद्वत्कृत्यमस्ति यद्वेदेश्वरधर्मादिषु रुचिरुपदेशेना- ध्यापनधार्मिकत्वजितेन्द्रियत्व-शरीरात्मबलवर्द्धनमेवं कृते सति सर्वे दिव्या गुना भोगाश्च प्राप्तुं शक्या:II

पदार्थ:--हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष! जो (रुचम्) रुचिकारक (ब्राह्मम्) ब्रह्म के उपासक (त्वा) आपको (जनयन्त:) सम्पन्न करते हुए (देवा:) विद्वान् लोग (अत्रे) पहिले (तत्) ब्रह्म, जीव और प्रकृति के स्वरूप को (अब्रुवन्) कहें (य:) जो (ब्राह्मण:) ब्राह्मण (एवम्) ऐसे (विद्वान्) जाने (तस्य) उसके वे (देवा:) विद्वान् (वशे) वशमें (असन्) हों

भावार्थ:-- यही विद्वानों का पहिला कर्तव्य है
की जो वेद, ईश्वर और धर्मादि में रूचि, उपदेश, अध्यापन, धर्मात्मता, जीतेन्द्रियता, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाना, ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग प्राप्त हो सकते हैं II

Page 126 of 331

श्रीश्च त इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि :। आदित्यो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप छन्दः । धैवत : स्वर :।। अथेश्वर : कीदृश इत्याह ।। अब ईश्वर कैसाहै , इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों की व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।

इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण सर्वलोकं म ऽ
इषाण ।। (श्लोक 22)

हे ज्योतिस्वरूप ब्रह्म ! जो लक्ष्मी सबको समृद्ध करती है , वह वैभव रूपा लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी रूप है , दिन -रात दोनों तुम्हारे पार्श्व हैं , नक्षत्र तुम्हारा रूप और द्यावा पृथ्वी तुम में व्याप्त हैं । कर्म -फल की इच्छा वाले तुम , मेरे लिए परलोक की इच्छा करते हुए मुझे मुक्त करने की इच्छा करो ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद — संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है :--

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।

[illegible] ll

[illegible] ! [illegible], [illegible] l [illegible] l [illegible]! [illegible] l

--[illegible], [illegible], [illegible]-[illegible]—

[illegible]-[illegible] 1 [illegible] 16 [illegible] l [illegible] 17 [illegible] 22 [illegible]

[illegible]—[illegible] 1 [illegible] 16 [illegible] l [illegible] 17 [illegible] 22 [illegible]—[illegible] 1-3,8-11,14 l [illegible] 4,5,7,12,13,15,20,21 l [illegible] 6 l [illegible] 16 l [illegible] 17,19 l [illegible] 18 l [illegible] 22 l

[illegible] :---

[illegible] l

[illegible] ll

श्री :। च। ते । लक्ष्मी :। च। पत्न्यौ ।
अहोरात्रेऽइत्यहोरात्रे । पार्श्वेऽइति
पार्श्वे । नक्षत्राणि । रूपम् । अश्विनौ ।
व्यात्तमिति विऽआत्तम् । इष्णन् । इषाण । अमुम् ।
मे । इषाण । सर्वलोकमिति सर्वऽलोकम् । मे । इषाण ॥

पदार्थ :-- (श्री :) सकला शोभा (च) (ते) तव
(लक्ष्मी :) सर्वमैश्वर्य्यम् (च) (पत्न्यौ)
स्त्रीवद्वर्त्तमाने (अहोरात्रे) (पार्श्वे)
(नक्षत्राणि) (रूपम्) (अश्विनौ)
सूर्याचन्द्रमसौ (व्यात्तम्) विकसितं मुखमिव ।
अत्र वि , आङ् पूर्वाड् डुदाञ् धातो : क्त :।
(इष्णन्) इच्छन् (इषाण) कामय (अमूम्) इत: परं
परोक्षं सुखम् (मे) मह्यम् (इषाण) प्रापय
(सर्वलोकम्) सर्वेषां दर्शनम् (मे) मह्यम्
(इषाण)॥

अन्वय :-- हे जगदीश्वर ! यस्य ते श्रीश्च
लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे यस्य
ते सृष्टावश्विनौ व्यात्तं नक्षत्राणि रूपं स
त्वं मेऽमुमिण्णन्निषाण मे सर्वलोकमिषाण मे
सर्वाणि सुखानीषाण ॥

भावार्थ :-- हे राजादयो मनुष्या :! यथेश्वरस्य
न्यायादयो गुणा व्याप्ति : कृपा पुरुषार्थ :
सत्यं रचनं सत्या नियमाश्च सन्ति तथैव
युष्माकमपि सन्तु यतो युष्माकमुत्तरोत्तरं
सुख वर्द्धेतेति ॥

अत्रेश्वर
सृष्टिराजगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य
पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति
वेद्यम् ॥

पदार्थ :-- हे जगदीश्वर ! जिस (ते) आपकी (श्री :) समग्र शोभा (च) और (लक्ष्मी :) सब ऐश्वर्य (च) भी (पत्न्यौ) दो स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान (अहोरात्रे) दिन -रात (पार्श्वे) आगे -पीछे जिस आपकी सृष्टि मेन (अश्विनौ) सूर्य -चन्द्रमा (व्यात्तम्) फैले मुख के समान (नक्षत्राणि) नक्षत्र (रूपम्) रूप वाले हैं , सो आप (मे) मेरे (अमुम्) परोक्ष सुख को (इष्णन्) चाहते हुए (इषाण) चाहना कीजिये (मे) मेरे लिये (सर्वलोकम्) सबके दर्शन को (इषाण) प्राप्त कीजिये , मेरे लिये सब् सुखों को (इषाण) पहुंचाइये ॥

भावार्थ :--हे राजा आदि मनुष्यों ! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण , व्याप्ति , कृपा , पुरुषार्थ , सत्य रचना और सत्य नियम हैं , वैसे ही तुम लोगों के भी हों , जिससे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढ़े ॥

पुरुष -सूक्तस्य सायणभाष्यम् अनुसारेण :----

Page 131 of 331

‘सहस्रशीर्षा' इति षोडशर्चं षष्ठं सूक्तम् । नारायण नामर्षिरन्त्या त्रिष्टुप् शिष्टा अनुष्टुभः । अव्यक्तमहदादिविलक्षणश्चेतनो यः पुरुषः ‘पुरुषाश्च परं किंचित्’ (कठोपनिषद वल्ली 3 सूक्त 11)

इत्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धः स देवता । तथा चानुक्रान्तं--- सहस्रशीर्षा षोळश नारायणः

पौरुषमानुष्टुभं त्रिष्टुबन्तं तु' इति । गतो विनियोगः ।।

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः
स॒हस्र॑पात् ।

स भूमिं॑ वि॒श्वतो॑
वृ॒त्वात्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम् ॥

सहस्रऽशीर्षा । पुरुषः । सहस्रऽअक्षः ।
सहस्रऽपात् । सः । भूमिम् । विश्वतः । वृत्वा।
अति । अतिष्ठत् । दशऽअङ्गुलम् ॥ १ ॥

सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं सहस्रशीर्षा ।
सहस्रशब्दस्योपलक्षणत्वादनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः। यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तः

पातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम् । एवं सहस्राक्षित्वं सहस्रपादत्वं च । “सः पुरुषः “भूमिं ब्रह्माण्डगोलकरूपां “विश्वतः
Page 131 of 331

सर्वतः “वृत्वा परिवेष्ट्य “दशाङ्गुलं दशाङ्गुलपरिमितं देशम् “अत्यतिष्ठत् अतिक्रम्य व्यवस्थितः । दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम्। ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वतो व्याप्यावस्थित
इत्यर्थः॥

पुरु॑ष ए॒वेदं सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भव्य॑म्
। उ॒तामृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒
यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥

पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम् । यत्
। च। भव्यम् ।

उत। अमृतऽत्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन ।
अतिऽरोहति ।। २ ॥

यत् “इदं वर्तमानं जगत् तत् “सर्वं “पुरुष “एव । यत् च “भूतम् अतीतं जगत् “यच्च “भव्यं भविष्यज्जगत् तदपि पुरुष एव । यथास्मिन् कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेऽपि विराट्पुरुषस्यावयवाः तथैवातीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमित्यभिप्रायः । "उत अपि च “अमृतत्वस्य देवत्वस्य अयम् “ईशानः स्वामी । “यत् यस्मात्कारणात् “अन्नेन प्राणिनां भोग्येनान्नेन निमित्तभूतेन “अतिरोहति स्वकीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति तस्मात्प्राणिनां
Page 132 of 331

कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य
वस्तुत्वमित्यर्थः ॥

ए॒तावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्यायाँ॑श्च॒ पूरु॑षः
।पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑
त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥

एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् । च।
पुरुषः ।

पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रिऽपात् ।
अस्य । अमृतम् । दिवि ।। ३ ।।

अतीतानागतवर्तमानरूपं जगद्यावदस्ति “एतावान् सर्वोऽपि “अस्य पुरुषस्य “महिमा स्वकीयसामर्थ्यविशेषः। न तु तस्य वास्तवस्वरूपम् । वास्तवस्तु "पुरुषः अतः महिम्नोऽपि “ज्यायान् अतिशयेनाधिकः । एतच्चोभयं स्पष्टीक्रियते। “अस्य पुरुषस्य “विश्वा सर्वाणि “भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि “पादः चतुर्थोंऽशः। “अस्य पुरुषस्य अवशिष्टं “त्रिपात् स्वरूपम् “अमृतं विनाशरहितं सत् “दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशस्वरूपे व्यवतिष्ठत इति शेषः । यद्यपि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तैतैत्तिरीय आरण्यक. ८.श्लोक १; तैत्तिरीय उपनिषद.

अनुवाक २. श्लोक १) इत्याम्नातस्य परब्रह्मण इयत्ताभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यं
Page 133 of 331

Page 134 of 331

तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्वात् पादत्वोपन्यासः ॥ ।

त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त्पुरु॑ष॒ः पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त्पुनः॑ ।

ततो॒ विष्व॒ङ्व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने अ॒भि ॥

त्रिऽपात् । ऊर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः ।
पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति। ततः ।
विष्वङ् । वि। अक्रामत् । साशनानशने इति । अभि
।। ४ ।।

योऽयं “त्रिपात् "पुरुषः संसाररहितो ब्रह्मस्वरूपः सोऽयम् “ऊर्ध्व “उदैत्

अस्मादज्ञानकार्यात्संसाराद्बहिर्भूतोऽत्रत्यैर्गुणदोषैरस्पृष्ट उत्कर्षेण स्थितवान्। तस्य “अस्य सोऽयं “पादः लेशः सोऽयम् “इह मायायां “पुनः अभवत् सृष्टिसंहाराभ्यां पुनःपुनरागच्छति । अस्य सर्वस्य जगतः परमात्मलेशत्वं भगवताप्युक्तं---- विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ' (भ. गीता. अध्याय१०. श्लोक४२) इति । “ततः मायायामागत्यानन्तरं “विष्वङ् देवमनुष्यतिर्यगादिरूपेण विविधः सन् “व्यक्रामत् व्याप्तवान् । किं कृत्वा । “साशनानशने अभिलक्ष्य । साशनं भोजनादिव्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातम् अनशनं

Page 134 of 331

तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकम् । तदुभयं यथा स्यात्तथा स्वयमेव विविधो भूत्वा
व्याप्तवानित्यर्थः ॥

तस्मा॑द्वि॒राळ॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः ।

स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः
॥

तस्मात् । विऽराट्। अजायत । विऽराजः । अधि।
पुरुषः ।।

सः । जातः । अति । अरिच्यत । पश्चात् । भूमिम् ।
अथो इति । पुरः ॥ ५ ॥

विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपञ्च्यते । “तस्मात् आदिपुरुषात् “विराट् ब्रह्माण्डदेहः “अजायत उत्पन्नः । विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट् । “विराजोऽधि विराड्देहस्योपरि तमेव देहमधिकरणं कृत्वा “पुरुषः तद्देहाभिमानी कश्चित् पुमान् अजायत । सोऽयं सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स्वयमेव स्वकीयया मायया विराड्देहं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवरूपेण प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत् । एतच्चाथर्वणिका उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति---- स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव' (नृ. ता. २. १, ९) इति । “स “जातः विराट् पुरुषः
Page 135 of 331

“अत्यरिच्यत अतिरिक्तोऽभूत् । विराड्व्यतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपोऽभूत् । “पश्चात् देवादिजीवभावादूर्ध्वं “भूमिं ससर्जेति शेषः ।
“अथो भूमिसृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां “पुरः ससर्ज । पूर्यन्ते सप्तभिर्धातुभिरिति पुरः
शरीराणि ॥॥१७॥

यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत ।

व॒स॒न्तो अ॑स्यासी॒दाज्यं॑ ग्री॒ष्म इ॒ध्मः
श॒रद्ध॒विः ॥

यत् । पुरुषेण । हविषा । देवाः । यज्ञम् ।
अतन्वत ।

वसन्तः । अस्य । आसीत्। आज्यम् । ग्रीष्मः ।
इध्मः । शरत् । हविः ॥ ६ ॥

“यत् यदा पूर्वोक्तक्रमेणैव शरीरेषुत्पन्नेषु सत्सु "देवाः उत्तरसृष्टिसिद्धयर्थं बाह्यद्रव्यस्यानुत्पन्नत्वेन हविरन्तरसंभवात् पुरुषस्वरूपमेव मनसा हविष्ट्वेन संकल्प्य “पुरुषेण पुरुषाख्येन “हविषा मानसं यज्ञम् “अतन्वत अन्वतिष्ठन् तदानीम् “अस्य यज्ञस्य “वसन्तः वसन्तर्तुरेव “आज्यम् “आसीत् अभूत् । तमेवाज्यत्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः । एवं “ग्रीष्म “इध्मः आसीत्। तमेवेध्मत्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः। तथा “शरद्धविः आसीत् । तामेव
Page 136 of 331

पुरोडाशादिहविष्ट्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः
। पूर्वं पुरुषस्य हविः सामान्यरूपत्वेन
संकल्पः । अनन्तरं
वसन्तादीनामाज्यादिविशेषरूपत्वेन संकल्प इति
द्रष्टव्यम् ॥

[(यजुर्वेदीय पु ० सू ० के इस श्लोक (ॐ
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ;) का अर्थ
जो कि इसके 14 वें श्लोक में दिया है)]

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न्पुरु॑षं
जा॒तम॑ग्र॒तः । तेन॑ दे॒वा अ॑यजन्त सा॒ध्या
ऋष॑यश्च॒ ये ॥

तम् । यज्ञम् । बर्हिषि । प्र । औक्षन् ।
पुरुषम् । जातम् । अग्रतः । तेन । देवाः ।
अयजन्त। साध्याः । ऋषयः । च। ये ॥ ७ ॥

यज्ञं यज्ञसाधनभूतं “तं पुरुषं पशुत्वभावनया
यूपे बद्धं “बर्हिषि मानसे यज्ञे “प्रौक्षन्
प्रोक्षितवन्तः । कीदृशमित्यत्राह। “अग्रतः
सर्वसृष्टेः पूर्वं “पुरुषं “जातं
पुरुषत्वेनोत्पन्नम् । एतच्च प्रागेवोक्तं
तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ' इति ।
तेन पुरुषरूपेण पशुना “देवा "अयजन्त । मानसयागं
निष्पादितवन्त इत्यर्थः । के ते देवा
इत्यत्राह। “साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः
प्रजापतिप्रभृतयः

Page 138 of 331

तदनुकूलाः “ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः “च “ये सन्ति । ते सर्वेऽप्ययजन्तेत्यर्थः ॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तं
पृषदा॒ज्यम् ।

प॒शून्ताँश्च॑क्रे
वाय॒व्या॑नार॒ण्यान्ग्रा॒म्याश्च॒ ये ॥

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः । सम्ऽभृतम् ।
पृषत्ऽआज्यम् ।।

पशून् । तान् । चक्रे । वायव्यान् । आरण्यान्।
ग्राम्याः । च । ये ॥८॥

“सर्वहुतः । सर्वात्मकः पुरुषः यस्मिन् यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुत् । तादृशात् “तस्मात् पूर्वोक्तात् मानसात् "यज्ञात् “पृषदाज्यं दधिमिश्रमाज्यं “संभृतं संपादितम् । दधि चाज्यं चेत्येवमादिभोग्यजातं सर्वं संपादितमित्यर्थः । तथा “वायव्यान् वायुदेवताकाँल्लोकप्रसिद्धान् “आरण्यान् “पशून “चक्रे उत्पादितवान् । आरण्या हरिणादयः । तथा “ये “च “ग्राम्याः गवाश्वादयः तानपि चक्रे। पशूनामन्तरिक्षद्वारा वायुदेवत्यत्वं यजुर्ब्राह्मणे समाम्नायते-- वायवः स्थेत्याह वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः। वायव

Page 138 of 331

Page 139 of 331

एवैनान्परिददाति ' (तै. ब्राह्मण. ३. २. १. ३) इति ।

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ ऋच॒ः सामा॑नि जज्ञिरे ।

छन्दां॑सि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः । ऋचः । सामनि । जज्ञिरे ।

छन्दांसि । जज्ञिरे । तस्मात् । यजुः । तस्मात् । अजायत ।। ९ ॥ "सर्वहुतः “तस्मात् पूर्वोक्तात् यज्ञात् “ऋचः “सामानि च जज्ञिरे उत्पन्नाः। “तस्मात् यज्ञात् “छन्दांसि गायत्र्यादीनि “जज्ञिरे। “तस्मात् यज्ञात् "यजुः अपि अजायत ॥ तस्मा॒दश्वा॑ अजायन्त॒ ये के चो॑भ॒याद॑तः ।

गावो॑ ह जज्ञिरे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जा॒ता अ॑जा॒वयः॑ ॥

तस्मात् । अश्वाः । अजायन्त । ये । के। च ।
उभयादतः ।

गाव: । ह । जज्ञिरे । तस्मात् । तस्मात् । जाताः
। अजावयः ॥ १०॥

“तस्मात् पूर्वोक्ताद्यज्ञात् “अश्वा “अजायन्त उत्पन्नाः। तथा “ये "के “च

Page 139 of 331

Page 140 of 331

अश्वव्यतिरिक्ता गर्दभा अश्वतराश्च उभयादतः ऊर्ध्वाधोभागयोरुभयोः दन्तयुक्ताः सन्ति तेऽप्यजायन्त। तथा “तस्मात् यज्ञात् "गावः च “जज्ञिरे । किंच “तस्मात् यज्ञात् "अजावयः च
"जाताः ॥ ॥ १८ ॥

यत्पुरु॑षं॒ व्यद॑धुः कति॒धा व्य॑कल्पयन् ।

मुखं॒ किम॑स्य॒ कौ बा॒हू का ऊ॒रू पादा॑ उच्येते
॥

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा। वि ।
अकल्पयन् ।।

मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरू
इति । पादौ । उच्येते इति ॥११॥

प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिसृष्टिं वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्ना उच्यन्ते । प्रजापतेः प्राणरूपा देवाः “यत् यदा “पुरुषं विराड्रूपं “व्यदधुः संकल्पेनोत्पादितवन्तः तदानीं “कतिधा कतिभिः प्रकारैः “व्यकल्पयन् विविधं कल्पितवन्तः । “अस्य पुरुषस्य “मुखं “किम् आसीत्। “कौ “बाहू अभूताम् “का “ऊरू। कौ च “पादावुच्येते । प्रथमं सामान्यरूपः प्रश्नः पश्चात् मुखं किमित्यादिना विशेष विषयाः प्रश्नाः॥

ब्रा॒ह्म॒णो॑ऽस्य॒ मुख॑मासीद्बा॒हू रा॑ज॒न्यः॑ कृ॒तः ।

Page 140 of 331

Page 141 of 331

ऊ॒रू तद॑स्य॒ यद्वैश्यः॑ प॒द्भ्यां शू॒द्रो अ॑जायत ॥

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहू इति ।
राजन्यः । कृतः ।

ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः ।
पत्ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥ १२ ॥

इदानीं पूर्वोक्तानां प्रश्नानामुत्तराणि दर्शयति । “अस्य प्रजापतेः “ब्राह्मणः ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टः पुरुषः “मुखमासीत मुखादुत्पन्न इत्यर्थः । योऽयं “राजन्यः क्षत्रियत्वजातिमान् पुरुषः सः "बाहू “कृतः बाहुत्वेन निष्पादितः । बाहुभ्यामुत्पादित इत्यर्थः । तत् तदानीम् अस्य प्रजापतेः “यत् यौ “ऊरू तद्रूपः "वैश्यः संपन्नः । ऊरुभ्यामुत्पन्न इत्यर्थः । तथास्य “पद्भ्यां पादाभ्यां "शूद्रः शूद्रत्वजातिमान् पुरुषः "अजायत । इयं च मुखादिभ्यो ब्राह्मणादीनामुत्पत्तिर्यजुःसंहितायां सप्तमकाण्डे ‘स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत' (तैत्तीरिय. संहिता. ७. १. १. ४) इत्यादौ विस्पष्टमाम्नाता। अतः प्रश्नोत्तरे उभे अपि तत्परतयैव योजनीये ॥

च॒न्द्रमा॒ मन॑सो जा॒तश्चक्षो॒ः सूर्यो॑ अजायत ।

Page 141 of 331

Page 142 of 331

मुखा॒दिन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ प्रा॒णाद्वा॒युर॑जायत ॥

चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षोः । सूर्यः ।
अजायत ।

मुखात् । इन्द्रः । च। अग्निः । च। प्राणात् ।
वायुः । अजायत ॥ १३ ॥

यथा दध्याज्यादिद्रव्याणि गवादयः पशव ऋगादिवेदा ब्राह्मणादयो मनुष्याश्च तस्मादुत्पन्ना एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मादेवोत्पन्ना इत्याह । प्रजापतेः “मनसः सकाशाद् “चन्द्रमाः “जातः । “चक्षोः च चक्षुषः “सूर्यः अपि “अजायत । अस्य “मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च देवावुत्पन्नौ । अस्य “प्राणाद्वायुरजायत ॥

नाभ्या॑ आसीद॒न्तरि॑क्षं शी॒र्ष्णो द्यौः
सम॑वर्तत ।

प॒द्भ्यां भूमि॒र्दिश॒ः श्रोत्रा॒त्तथा॑
लो॒काँ अ॑कल्पयन् ॥

नाभ्यः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः ।
द्यौः । सम् । अवर्तत ।

पत्ऽभ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा ।
लोकान् । अकल्पयन् ॥ १४ ॥

Page 142 of 331

यथा चन्द्रादीन् प्रजापतेर्मनःप्रभृतिभ्योऽकल्पयन तथा “अन्तरिक्षादीन् “लोकान् प्रजापतेः नाभ्यादिभ्यो देवाः “अकल्पयन् उत्पादितवन्तः । एतदेव दर्शयति । “नाभ्याः प्रजापतेर्नाभेः “अन्तरिक्षमासीत् । "शीर्ष्णः शिरसः “द्यौः “समवर्तत उत्पन्ना। अस्य “पद्भ्यां पादाभ्यां “भूमिः उत्पन्ना। अस्य “श्रोत्रात् "दिशः उत्पन्नाः।।

स॒प्तास्या॑सन्परि॒धय॒स्त्रिः स॒प्त स॒मिधः॑
कृ॒ताः ।

दे॒वा यद्य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना अब॑ध्न॒न्पुरु॑षं
प॒शुम् ॥

सप्त । अस्य । आसन् । परिऽधयः । त्रिः । सप्त ।
सम्ऽइधः । कृताः ।

देवाः । यत् । यज्ञम् । तन्वानाः । अबध्नन् ।
पुरुषम् । पशुम् ॥ १५ ॥

“अस्य सांकल्पिकयज्ञस्य गायत्र्यादीनि “सप्त छन्दांसि परिधयः “आसन् । ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः परिधय उत्तरवेदिकास्त्रय आदित्यश्च सप्तमः परिधिप्रतिनिधिरूपः । अत एवाम्नायते-- न पुरस्तात्परि दधात्यादित्यो ह्येवोद्यन् पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्ति' (तैत्तीरिय. संहिता २.६.६.३) इति । तत एत आदित्यसहिताः सप्त परिधयोऽत्र सप्त छन्दोरूपाः । तथा “समिधः
Page 143 of 331

“त्रिः सप्त त्रिगुणीकृतसप्तसंख्याकाः एकविंशतिः “कृताः । द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः (तैत्तीरिय. संहिता. ५.१.१०.३) इति श्रुताः पदार्था एकविंशतिदारुयुक्तेध्मत्वेन भाविताः। यत् यः पुरुषो वैराजोऽस्ति ते “पुरुषं "देवाः प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपाः यज्ञं तन्वानाः मानसं यज्ञं तन्वानाः कुर्वाणाः पशुम् "अबध्नन् विराट्पुरुषमेव पशुत्वेन भावितवन्तः । एतदेवाभिप्रेत्य पूर्वत्र ‘ यत्पुरुषेण हविषा' इत्युक्तम् ॥

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि
प्रथ॒मान्या॑सन् ।

ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑
सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥

यज्ञेन । यज्ञम् । अयजन्त। देवाः । तानि ।
धर्माणि । प्रथमानि । आसन् ।

ते । ह । नाकम् । महिमानः । सचन्त । यत्र ।
पूर्वे । साध्याः । सन्ति । देवाः ॥ १६ ॥

पूर्व प्रपञ्चेनोक्तमर्थं संक्षिप्यात्र दर्शयति । "देवाः प्रजापतिप्राणरूपाः "यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन संकल्पेन यज्ञं यथोक्तयज्ञस्वरूपं प्रजापतिम् "अयजन्त पूजितवन्तः । तस्मात्पूजनात “तानि प्रसिद्धानि “धर्माणि जगद्रूपविकाराणां धारकाणि "प्रथमानि
Page 144 of 331

मुख्यानि आसन् । एतावता सृष्टिप्रतिपादकसूक्तभागार्थः संगृहीतः । अथोपासनतत्फलानुवादकभागार्थः संगृह्यते ।

"यत्र यस्मिन् विराटप्राप्तिरूपे नाके "पूर्वे "साध्याः पुरातना विराडुपास्तिसाधकाः “देवाः "सन्ति तिष्ठन्ति तत् "नाकं विराट्प्राप्तिरूपं स्वर्ग “ते “महिमानः तदुपासका महात्मानः "सचन्त समवयन्ति प्राप्नुवन्ति ॥ ॥ १९॥ ॥ ७ ॥

टिप्पणी

नारायणोपरि पौराणिकसंदर्भाः

सोमयागे प्राग्वंशे गार्हपत्य एवं आहवनीयाग्निखरयोः मध्ये दक्षिणाग्नेः अर्द्धचन्द्राकारं खरं भवति। अस्याः अग्नेः अधिपतिः नलः नैषिधो अस्ति। उत्तरवेदी मध्ये आग्नीध्रस्य खरः भवति। अनुमानमस्ति यत् प्राग्वंशे यः दक्षिणाग्निः अस्ति, सैव उत्तरवेद्यां उत्तरदिश्यां आग्नीध्रऋत्विजस्य खरमस्ति(आग्नीध्रोपरि टिप्पणी पठनीयः अस्ति)। पुराणेषु वर्णनमस्ति यत् बदरीतीर्थः नर-नारायणयोः तपःस्थानमस्ति। गंगायाः एके कूले नरः तपोरतः अस्ति, अपरे कूले नारायणः। आग्नीध्रऋत्विजस्य नारायणेन साकं समानता अस्ति वा न वा, अयं अन्वेषणीयं अस्ति।

पुरुषशब्दोपरि पौराणिकसंदर्भाः
Page 145 of 331

Page 146 of 331

पुरुषशब्दोपरि वैदिकसंदर्भाः पुरुषसूक्तोपरि पौराणिकसंदर्भाः पुरुषसूक्तोपरि टिप्पणी
वायुपुराणे अध्यायः १.सर्ग ७.सूक्त ५६ तः आरभ्य पुरुषसूक्तस्य विस्तृतव्याख्या उपलब्धमस्ति। भागवतपुराणे स्कन्ध ३.अध्याय २६.सूक्त २५ एवं लिङ्गपुराणे १.८८.२८ पुरुषशब्दस्य व्याख्यारूपेण समाधितः व्युत्थानस्य वर्णनमस्ति।
१०.९०.१अ
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकोऽभवत्।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः
स्वयम्भुवः ।।वायुपुराणम् सर्ग १.अध्याय
५.सूक्त २६।।
सहस्रशिरसं साक्षाद् यं अनन्तं प्रचक्षते ।
सङ्कर्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥
भागवतपु. स्कन्ध ३.अध्याय २६.सूक्त २५ ॥
सहस्राक्ष उपरि पौराणिकसंदर्भाः सहस्रोपरि वैदिकसंदर्भाः

Page 146 of 331

Page 147 of 331

सहस्रशीर्षा -- कथितुं शक्यन्ते यत् अत्र शीर्षः साधारण शीर्षः नास्ति, अपितु यज्ञस्य शीर्षः अस्ति। सोमयागे प्रवर्ग्यकृत्ये द्वादशशीर्षाणां निर्माणं करणीयमस्ति(प्रवर्ग्योपरि टिप्पणी पठनीयः)। या प्रजाः अस्ति, तस्याः शिरोभवनम्, प्रवरणम्, तस्यां रेतः सिञ्चनम्। ये द्वादशशीर्षाः भवन्ति, तेषां प्रयोजनं तैत्तिरीयारण्यके ५.१२.१ कथितमस्ति। अनुमानमस्ति यत् सहस्रसंख्या सामवेदस्य, शतसंख्या यजुर्वेदस्य एवं दशसंख्या ऋग्वेदस्य प्रतीकमस्ति। शौनकीयअथर्ववेद ४.६.१ अनुसारेण - ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः । स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥ अतएव, दशशीर्षावस्थायां विषस्य अरसकरणं भवति। शतशीर्षावस्थायां ये प्राणाः रौद्राः सन्ति, तेषां शमनं भवति (शतरुद्रीयं)। ऋग्वेद ८.७८.१ अनुसारेण - पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर। शता च शूर गोनाम्॥ ८.०७८.०१। पुरोडाशः मस्तिष्कस्य प्रतीकं भवति। अत्र अन्धसः रूपान्तरणं सहस्रप्रकारस्य पुरोडाशे कथितं अस्ति।

सहस्राक्ष विषये, अथर्ववेदे ४.२०.८ कथनमस्ति - तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४॥
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः । अथो
सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५॥

Page 147 of 331

Page 148 of 331

दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥
कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७॥ उदग्रभं परिपाणाद्यातुधानं किमीदिनम् । तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥ अयं संकेतमस्ति यत् सहस्राक्ष अथवा सहस्रचक्षु - अवस्थायां स्वदोषाणां दर्शनस्य क्षमतायाः प्राप्तिर्भवति। संसारे स्वदोषाणां दर्शनं सर्वाधिकं कठिनं अस्ति। पुराणेषु अक्षाणां चतुःप्रकाराः सन्ति - कृत, त्रेता, द्वापर, कलि। महाभारत वनपर्व ७२ मध्ये कथनमस्ति यत् यदा नलः अक्षविद्यायां निपुणं भवति, तदा कलिः तस्य देहं विसृजति।

सहस्रपादस्य विषये, अथर्ववेद ७.४२.२ मध्ये कथनमस्ति - श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः । स नो नि यच्छाद्वसु यत्पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत्॥ अस्य मन्त्रस्य सायणभाष्ये सहस्रपादस्य भाष्यं सहस्ररश्मिः कृतं अस्ति। अतएव, सहस्राक्षः भूत्वा स्वपापानां दर्शनं पर्याप्तं नास्ति। स्वज्योतिषा अन्येषां पापानां अपि अपनयनं अपेक्षितं अस्ति। अपि च, अथर्ववेद १५.३.१५ अनुसारेण - अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः परुशाको अत्त्रिः । य इदं विश्वं भुवनं जजान ।

Page 148 of 331

Page 149 of 331

पुरुषशब्दविषये, पुरुषोपि पञ्चपशुषु अन्तिमः पशुः अस्ति (अज, अवि, गौ, अश्व, पुरुष)। तेषां साम्यः सामवेदस्य भक्तिभिः सह अस्ति (हिंकारः, प्रस्तावः, उद्गीथः, प्रतिहारः, निधनम्)। अन्येभ्यः पशुभ्यः पुरुषः केन प्रकारेण विशिष्टः अस्ति। पशवः चतुष्पादाः भवन्ति, पुरुषः द्विपादः अस्ति। गुह्यार्थे द्विपादः ऊर्ध्वाधो गत्यर्थकः अस्ति, एवं डा. फतहसिंहस्य कथनमस्ति। पशवः चतुष्पादाः सन्ति। तेषां गतिः तिर्यक् गतिः अस्ति। पशुशब्दोपरि टिप्पणी पठनीयः अस्ति। कथनमस्ति यत् पशवः चक्षणहीनाः सन्ति। अत्र चक्षणस्य अर्थं स्वगुणदोषाणां चक्षणं प्रतीयते। अनेन प्रकारेण, पुरुष-पशु मध्ये व्यावहारिकरूपेण के भेदाः सन्ति, अस्य विस्तृतविवेचनं अपेक्षितमस्ति।

१०.९०.१ब

स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।

भूम्याः वृतत्वं केन प्रकारेण भवेत्। महाभारते वनपर्वे १३४ अध्याये अष्टावक्र - वन्दि संवादः विद्यते यत्र अष्टावक्रः दशसंख्यायाः वैशिष्ट्यं कथ्यते। एकः वैशिष्ट्यं अस्ति - दश दिशः। यदि साधकः दशदिशानामुपरि आधिपत्यं प्राप्नोति, तदा भूम्याः वृतत्वं संभवति।

Page 149 of 331

Page 150 of 331

दशदिशासु अष्टदिशानां गुणानां विवेचनं अष्टसखी शब्दस्य टिप्पण्यां विद्यते।

अत्यतिष्ठद् - ऋग्वेद १.१६३.२ मध्ये कथनमस्ति - इन्द्र एणं (अर्वोपरि) प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
अतएव, अत्यतिष्ठत् - यमनाय, नियन्त्रणाय।
दशाङ्गुलम् - विष्णुधर्मोत्तरपुराणे ३.३६ कथनमस्ति यत् ग्रीवायाः मानं दश अङ्गुलं भवति। अङ्गुलमानस्य रहस्यं किमस्ति, अन्वेषणीयः। महाभारते द्रोणपर्व १९०.५५ मध्ये कथनमस्ति यत् युधिष्ठिरस्य रथः, यः पृथिवीतः चतुरङ्गुलमानेन उच्छ्रितः आसीत्, अनृतवचनेन भूमिस्पर्शी अभवत्। लक्ष्मीनारायणसंहिता १.५८१.३१ अनुसारेण यत्र नारायणेन भूम्या उपरि स्वकण्ठमण्याः स्थापना कृता आसीत्, तत् पुरुषोत्तमक्षेत्रः अस्ति। पुरुषसूक्तस्य पुरुषोत्तमक्षेत्रेण सह तादात्म्यं अस्ति वा न वा, अन्वेषणीयः अस्ति। १०.९०.२अ

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।

यथा सर्वविदितमस्ति, पशवः भूत-भव्यस्य अनुमानं कर्तुं अशक्ताः सन्ति।

सर्व उपरि वैदिकसंदर्भाः १०.९०.२ब

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ईशानोपरि पौराणिकसंदर्भाः

ईशानः उपरि टिप्पणी

Page 150 of 331

Page 151 of 331

पुराणेषु सार्वत्रिकरूपेण शिवस्यार्चनं पञ्चभिर्नामभिः - ईशानः, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात इति करणीयस्य निर्देशाः सन्ति। नारदपुराण १.९१.६३ अनुसारेण ईशानपुरुषयोः भेदः अयमस्ति यत् ईशानशिवः पञ्चशीर्षात्मकः अस्ति, पुरुषः चतुश्शीर्षः। ईशानशिवस्य चत्वारि मुखानि चतुर्दिक्षु सन्ति, एकः मध्ये। अन्यत्र कथनमस्ति (लिङ्गपुराणम् २.१४.२१) यत् ईशानशिवः क्षेत्रज्ञः अस्ति, पुरुषः प्रकृतिः। क्षेत्रज्ञः प्रकृतेः भोक्ता अस्ति। ईशानः आकाशतत्त्वेन सह सम्बद्धः अस्ति, पुरुषः वायुतत्त्वेन (द्र. महाभूतोपरि टिप्पणी)। ईशानशिवः शान्त्यातीतकलया सम्बद्धः अस्ति, पुरुषः शान्तिकलया। शिवपुराणे ४.४२.२३ कथनमस्ति - ईशानः सर्वविद्यानां इति। अस्यां स्थित्यां प्रकृत्याः रूपं सरस्वत्यात्मकं अस्ति। ईशानस्य पत्नी सम्पत्तिः अस्ति(ब्रह्मवैवर्त्त २.१.१०७) या दारिद्र्यस्य नाशं करोति। सायणभाष्ये सार्वत्रिकरूपेण ईशानशब्दस्य अर्थं समर्थः, ईश्वरः इति कृतमस्ति। यदन्नेनातिरोहति। पुरुषेण अन्नभक्षणान्तरं अन्नतः अमृतस्य प्राप्तिः ईशानरूपेणैव संभवमस्ति। १०.९०.३ब

पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि

Page 151 of 331

पादोपरि पौराणिकसंदर्भाः I पादोपरि टिप्पणी १०.९०.६

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविःI आज्योपरि टिप्पणी

इध्मोपरि पौराणिकसंदर्भाः I इध्मोपरि टिप्पणी

वराहपुराणे १८.२५ इध्मशब्दस्य निरुक्तिः विद्यते। ध्मा - प्रपूरणे, इ - आगति। काशकृत्स्न धातुकोशे ध्मा धातुः शब्दाग्नयोः संयोगे अस्ति, यथा शंखस्य ध्मानम्। वसन्तर्तौ इध्मस्य आवश्यकता नास्ति। वसन्तः समित्, सममिति अर्थे। अनेन कारणेन प्रपूर्णनस्य आवश्यकता नास्ति।

जावानी महाभारते ध्माकारौ भीम- अर्जुनौ हविरुपरि वैदिकसंदर्भाः

शरद्धविः। अस्मिन् संदर्भे तैत्तिरीयब्राह्मणस्य २.६.१९. अयं कथनं उल्लेखनीयमस्ति - वसन्तेनर्तुना देवाः ।
वसवस्त्रिवृता स्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा ।
हविरिन्द्रे वयो दधुः । ग्रीष्मेण देवा ऋतुना ।
रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता यशसा बलम् ।
हविरिन्द्रे वयो दधुः ।
वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः । स्तोमे सप्तदशे स्तुतम् । वैरूपेण विशौजसा । हविरिन्द्रे वयो दधुः । शारदेनर्तुना देवाः । एकविँश ऋभवः स्तुतम् । वैराजेन श्रिया श्रियम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । हेमन्तेनर्तुना देवाः
Page 152 of 331

Page 153 of 331

। मरुतस्त्रिणवे स्तुतम् । बलेन शक्वरीः सहः । हविरिन्द्रे वयो दधुः । शैशिरेणर्तुना देवाः । त्रयस्त्रिँशेऽमृतँ स्तुतम् । सत्येन रेवतीः क्षत्त्रम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः। अत्र न केवलं शारदेन, अपितु सर्वैः ऋतुभिः इन्द्राय हविःप्रदानस्य उल्लेखमस्ति। अतएव, शरद्ऋतोः वैशिष्ट्यानां विशद् अध्ययनस्य आवश्यकता अस्ति। वैदिकवाङ्मये सार्वत्रिकरूपेण शरदस्य लक्षणं बर्हिः अस्ति। देहे यः विद्योतनं, स्फूर्जनं अस्ति, तत् स्थानिकं नास्ति, अपितु तस्य विस्तारं बर्हिरिव सर्वत्रास्ति। अयं भक्त्याः पक्वावस्था अस्ति - श्रद्धा, अन्नाद्यं। वायुपुराणे ३०.७ वर्षाऋतोः संज्ञा जीवः अस्ति, शरदस्य सुधावन्त, हेमन्तस्य मन्युमन्त। अन्यत्र हेमन्तस्य लक्षणानि स्विष्टकृत्, स्वाहा इत्यादयः सन्ति। १०.९०.७

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।

बर्हिरुपरि वैदिकसंदर्भाः

यथा डा. सुकर्मपालसिंहतोमरस्य शोधप्रबन्धे कथितमस्ति, समाधिअवस्थायां या आनन्दवृष्टिः भवति, तस्याः प्रभावं पुरुषस्य बहिर्वृत्तिषु अपि भवति। आनन्दवृष्ट्याः प्रथमं प्रभावं मज्जा, वपा उपरि भवति। तथा अस्य प्रभावस्य च्यवनं इन्द्रियेभ्योउपरि अपि भवति। अतएव,

Page 153 of 331

Page 154 of 331

इन्द्रियाणां संज्ञापि बर्हिः भवति। तैत्तिरीयसंहिता ६.३.९.५ आदीनां कथनं अस्ति - अग्रं वा एतत् पशूनां यद् वपाग्रमोषधीनां बर्हिः। बर्हिषः अथवा वपायाः अग्रविशेषणस्य किमर्थमस्ति। एकः संभावितार्थः -- ये तापसजनाः सन्ति, ते स्वअन्तःकरणैः, स्वकीयैः इन्द्रियैः भूत-भविष्यस्य ज्ञानं कर्तुं शक्ताः भवन्ति। लघुउदाहरणं। दीर्घकालीने उपवासे भोजनस्य स्वप्नाः दृश्यन्ते। बुभुक्षायाः या अनुभूति केवलं वपास्तरे आसीत्, तस्याः अवतरणं स्वप्नेषु भवितुं आरभ्यते। अग्रिमे चरणे तेषां अनुभूतिः चक्षु, श्रोत्रादिइन्द्रियेषु अपि भवति।

साध्योपरि पौराणिकसंदर्भाः

साध्योपरि वैदिकसंदर्भाः

ऋतूनां संदर्भे, शरदऋतोः लक्षणं बर्हिः अस्ति। अतःपरं हेमन्त-शिशिरयोः संज्ञा घोरः अस्ति। वर्षासु यः जलः पंकमिश्रितः भवति, शरत्सु तत् स्वच्छतां प्राप्नोति। ये जलाः पापयुक्ताः आसन्, ते विलीना भवन्ति। अस्याः स्थित्याः संज्ञा साध्यानां यज्ञः अस्ति। ताण्ड्यब्राह्मण ८.३.५ अनुसारेण साध्याः सोमयागे तृतीयसवनस्य छेदनं कुर्वन्ति। ते प्रातः एवं माध्यन्दिनसवनेनैव स्वर्गं प्राप्नुवन्ति। येषां पापानां मार्जनं

Page 154 of 331

Page 155 of 331

मृत्युविना (तृतीयसवनं) संभवं नास्ति, तत्र साध्यानां गतिर्नास्ति। एतेषां पापानां संज्ञा घोरः भवति।१०.९०.८

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्याश्च ये।।

गवामयनसत्रयागस्य त्रयः भागाः भवन्ति - .....। विषुवत् अहः माध्यन्दिनसवनेन तुल्यः अस्ति। अस्मिन्नहनि आदित्यस्य ये रश्मयः सन्ति, तेषां पृथिव्यां उपरि पातः ऋजुतमेन पथा भवति, यथा भौगोलिकरूपेण पृथिव्योपरि कल्पितायां विषुवत् रेखोपरि। अनुमानमस्ति यत् साध्यानां यागः विषुवत् अह्न यावत् सीमितः अस्ति। अतः परं यः यागं अस्ति, तत् यथार्थरूपेण मर्त्यस्तरस्य अमृतस्तरे रूपान्तरणस्य कृत्यमस्ति।

महाभारते आदिपर्वे १२९.४५ उत्तरपाञ्चालराज्ये द्रुपदस्य पितुः पृषतस्य उल्लेखमस्ति। अत्र पाञ्चालराज्यः सर्वहुतशब्दस्य पर्यायवाची प्रतीयते। डा. फतहसिंहः कथयति स्म यत् द्रुपदः यागेषु पशुबन्धनार्थं मेथ्याः संज्ञा अस्ति द्रुपदेषु बद्धः। द्रु - द्रुतगतौ। द्रुपदस्य विपरीतं द्रोणः - द्रु न, स्थैर्यम् अस्ति। यदि कोपि जनः यथार्थतः सर्वहोता, सर्वेषां जनानां होता, नेता, दूतः भवितुं इच्छति, तेषु मनःसु प्रवेशं वाञ्छति, तर्हि तस्य चेतनातन्त्रस्य

Page 155 of 331

Page 156 of 331

अव्यवस्था अन्येषां चेतनातन्त्रेभ्यः न्यूना भवितुं अपेक्षितमस्ति। आधुनिकविज्ञाने अस्य संज्ञा एण्ट्रांपी आफ इन्फोर्मेशन अस्ति। यदि एवं न भवति, तर्हि चेतनातन्त्रोपरि येषां संवादानां आपतनं भविष्यति, ते विरूपाः, विकृताः भविष्यन्ति। श्रीरजनीशमहोदयानुसारेण (कुण्डली और सात शरीर प्रवचनमाला) कण्ठस्य विशुद्धिसंज्ञकचक्रस्य चेतनायाः अयं वैशिष्ट्यं अस्ति।

पृषदाज्योपरि वैदिकसंदर्भाः

पृषदाज्यस्य संभरणस्य का आवश्यकता अस्ति। कथनमस्ति यत् यः सोमः स्कन्दति, अनावश्यकरूपेण स्रवति, तस्य पुनः सम्भरणस्य आवश्यकता भवति। पृषदाज्यस्य संभरणमपि सोमस्य संभरणस्य एकं कृत्यमस्ति। पृषदाज्यं प्राणानां रूपमस्ति। ये ग्राम्याः एवं आरण्यकाः पशवः सन्ति, तेषु पृषदाज्यरूपीप्राणानां विद्यमानता अस्ति। यः शुद्धआज्यः अस्ति, तस्मात् प्राणैः सह मनसः अपि विकासं भवति। पुरुषः मनसा सह अस्ति। किन्तु ये पशवः सन्ति, तेषु मनसः विकासं नास्ति, अयं ब्राह्मणे कथितमस्ति । पृषदाज्यं वैश्वदेवस्य स्थिरस्ति, यत्र जीवानां प्राणेषु एकात्मता नास्ति। यत्र एकात्मता भवति, सा स्थिति दशमीतिथितः परः एकादशीरुच्यते।

१०.९०.९

Page 156 of 331

Page 157 of 331

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत।।

वैदिकवाङ्मये सर्वहुतशब्दस्य उल्लेखाः सन्ति।
लक्ष्मीनारायण संहितातः १.३०९ स्पष्टं भवति सर्वहुतस्य किं वैशिष्ट्यं भवितुं शक्यते। लोके कथानकाः प्रचलिताः सन्ति यत् अमुकः भक्तः यदा बुभुक्षाग्रस्तः भवति, तदा सः पिपीलिकाभ्यः भोजनं प्रस्तौति। तेन तस्य स्वस्य बुभुक्षा शान्ता भवति। अस्यैव लोकस्य कथानकस्य विस्तारं लक्ष्मीनारायणसंहितायां अस्ति। यः सर्वेषां प्राणिनां बुभुक्षायाः स्वात्मनि अनुभवं कर्तुं शक्नोति, तस्य यज्ञात्, तस्य जीवनशैलीतः पृषदाज्यस्य संभरणं संभवमस्ति। प्रथमावस्थायां पृषदाज्यस्य संभरणं भविष्यति, तत्पश्चचात् आज्यस्य। अयमेव सोमयागः भविष्यति, यथा लक्ष्मीनारायणसंहितायाः कथायां सर्वहुतराजा पुष्करे सोमयागः करोति। १०.९०.१०

तस्मा॒दश्वा॑ अजायन्त॒ ये के चो॑भ॒याद॑तः । गावो॑ ह जज्ञिरे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जा॒ता अ॑जा॒वयः॑ ॥

अश्वोपरि वैदिकसंदर्भाः, अश्वोपरि पौराणिकसंदर्भाः

अत्र पञ्चग्राम्यपशुषु चतुर्णां पशूनां उल्लेखमस्ति। पुरुषस्य उल्लेखं पूर्वमेव

Page 157 of 331

Page 158 of 331

कृतमस्ति। एतेषां पशूनां किं महिमा अस्ति। शतपथब्राह्मण ६.२.१.५ अनुसारेण पुरुषपशुः वैश्वकर्मणः अस्ति, अर्थात् पुरुषः पुरुषार्थयुक्तः अस्ति, सः दैवोपरि निर्भरः नास्ति। अन्ये चत्वारः ग्राम्याः पशवः दैवोपरि एव निर्भराः सन्ति। अश्वः वारुणमस्ति। वारुणं अर्थात् यत्र-यत्र अनृतमस्ति, तत्र-तत्र वरुणः बन्धनस्य, ग्रन्थेः सर्जनं करिष्यति। अनेनैव कारणेन महाभारते अश्वनिपुणस्य नकुलस्य संज्ञा विराड्नगरे ग्रन्थिकः अस्ति। यत्र अनृतं नास्ति, तत्र अश्वः सूर्यः, श्वेताश्वः भवितुं शक्यते। गावः रौद्राः, रुद्रदेवत्याः सन्ति। यागानां अवसाने अग्नेः स्विष्टकृत् इष्टिः भवति। तत् रुद्रस्य शमनाय भवति। रुद्रदेवः रौद्रप्रकृत्यापेक्षया सु-इष्टः भवतु, अयमर्थः। गौपशुः पृथिव्योपरि सूर्यस्य रश्मीनां संग्रहं करोति, येन भूतेषु या रौद्रता अस्ति, तस्य शमनं भवति। अविपशुः त्वष्टृदेवात्मकः अस्ति। त्वष्टृदेवस्य कार्यं ब्रह्माण्डे या ऊर्जा अस्ति, तस्याः सम्यक् उपयोजनं अस्ति। त्वष्टा देवः सूर्यं स्वभ्रम्योपरि रोपयित्वा तस्य रूपनिर्माणं करोति। तेन सूर्यस्य उदयः भवति। अतएव, छान्दोग्योपनिषदे अविभक्तिः उदयेन सह सम्बद्धा अस्ति। अयं प्रतीयते यत् अविशब्दः आविःशब्दस्य, आविर्भावस्य परोक्षरूपमस्ति।

Page 158 of 331

Page 159 of 331

आवश्यकता अस्ति यत् व्यवहारे ये पापाः सन्ति, तेषां उदयं न भवेत्, पुण्यानामेव उदयं भवेत्।
अजाभक्तिः सूर्योदयात् पूर्वावस्था अस्ति।
अस्याः सम्बन्धं व्याधिभिः सह अपि अस्ति। १०.९०.१२अ

ब्राह्मणो अस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।

द्र. भविष्यपुराणम् ३.४.५.८

बाह्वोपरि वैदिकसंदर्भाः

बाहू राजन्यः कृतः केन कारणेन। पद्मपुराण १.३.१०५ आदिषु कथनमस्ति यत् ब्रह्मणः वक्षसः अवेः प्राकट्यमभवत्। वक्षः वैक्सिंग-वेनिंग, ध्माकरणस्य स्थानमस्ति। अविः आविर्भाव - तिरोभावस्य, उदयावस्थायाः प्रतीकमस्ति, पाप-पुण्यानां आविर्भावः - तिरोभावः। बाहुविषये सार्वत्रिकमन्त्रमस्ति - सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोः हस्ताभ्यां इति। बाहुमूले पाप-पुण्यानां आविर्भावः - तिरोभावः प्रचलति। अनेनानुसारेणैव बाह्वग्रे कर्मः प्रचलिष्यति। अतएव, वैदिकवाङ्मये सार्वत्रिककथनमस्ति - देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां आददे, इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा । मैसं १.१.१०, काठ.सं. १.९। बाहुमूले सवितृदेवस्य प्रसवस्य, प्रेरणस्य आवश्यकता अस्ति। नारदपुराणादिषु (नारद १.७.३)

Page 159 of 331

Page 160 of 331

कथनमस्ति यत् बाहुराजा असूयादोषतः ग्रस्तः आसीत्, अनेन कारणेन तस्य राज्यः शत्रुभिः अपहृतमासीत्। बाह्वोः द्वे रूपौ स्तः - ऊर्ध्वबाहुः, तिर्यक्बाहुः। यदा वीर्यसंरक्षणस्य आवश्यकता भवति, तदा ऊर्ध्वबाहुरूपः अपेक्षितमस्ति (माश ५,४, १, १७। १०.९०.१२ब

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

ऊरवोरुपरि टिप्पणी

देहे उरः, उदरादिकं यः मध्यभागमस्ति, तस्य संज्ञा ज्योति-अण्डः अस्ति (इन्द्राग्नी शिखण्डाभ्याम् (प्रीणामि)। तैसं ५.७.१५.१)। यावत् क्षुधादीनि पापानि विद्यमानानि सन्ति, तावत् अस्याण्डस्य भेदनं अपेक्षितं नास्ति। इन्द्राग्नी देवौ क्षुधादीनां पापानां अपहर्तारौ स्तः। यदा पापानां क्षयः भवति, तदा ज्योतिराण्डस्य भेदनं, ऊरवोः स्थापनं अपेक्षितं अस्ति। इन्द्राबृहस्पती ऊरवोः देवौ स्तः। यावत् पापानां प्रतिष्ठा अस्ति, तावत् अमावास्या अस्ति। यदा पापानां क्षयः भवति, तदा पौर्णमासः भवति (तैब्रा ३, १, १, ११)।

ऊरू वैश्यः केन प्रकारेण। पद्मपुराण १.३.१०५ आदिषु कथनमस्ति यत् ब्रह्मणः उदरात् गौ- महिष्यादीनां सृष्टिरभवत्। गोः कृत्यं सूर्यस्य रश्मिभिः भोजनस्य निर्माणं,

Page 160 of 331

Page 161 of 331

अन्यशब्देषु, रश्मीनां संचयं अस्ति। पृथ्वीरूपी या गौः अस्ति, तस्यापि अयमेव कार्यमस्ति। यस्य ऊर्जायाः संचयं भवति, तस्य उपयोगं सर्वभूतानां पुष्ट्यै भवति। देहे यः ऊरुसंज्ञकः अंगः अस्ति, तत् उदरस्य निकटतमः अस्ति। व्यावहारिकरूपेण, नायं ऊरु अस्ति, अयं पूरुः अस्ति। अनुमानमस्ति यत् यदा नाभिद्वारः सूर्यस्य रश्मीनां आगमनाय द्वारं भवति, तदैव पूरुः ऊरुः भवति। पूरुः अर्थात् यः देहस्य न्यूनतायाः पूरणं करोति। ऊरु - यः देहस्य चेतनायाः अतिक्रमणं कृत्वा बहिर्गन्तुं शक्यते।

१०.९०.१३

चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।।

तुलनीयः -- स प्राणेभ्य एवाधि पशून्निरमिमीत मनसः पुरुषं चक्षुषोऽश्वं प्राणाद्गां श्रोत्रादविं वाचोऽजं तद्यदेनान्प्राणेभ्योऽधि निरमिमीत तस्मादाहुः प्राणाः पशव इति मनो वै प्राणानां प्रथमं तद्यत्मनसः पुरुषं निरमिमीत तस्मादाहुः पुरुषः प्रथमः पशूनां वीर्यवत्तम इति मनो वै सर्वे प्राणा मनसि हि सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठितास्तद्यन्मनसः पुरुषं निरमिमीत तस्मादाहुः पुरुषः सर्वे पशव इति। माश ७,५,२,६

Page 161 of 331

मनउपरि पौराणिकसंदर्भाः मनउपरि संक्षिप्तटिप्पणी एवं संदर्भाः, चक्षुरुपरि वैदिकसंदर्भाः, प्राणोपरि पौराणिकसंदर्भाः, प्राणोपरि वैदिकसंदर्भाः,

वायुरुपरि टिप्पणी

डा. फतहसिंहः कथयति स्म यत् वैदिकवाङ्मये शब्दानां त्रिप्रकाराः सन्ति -- बहुवचनं, द्विवचनं एवं एकवचनम्। शब्दस्य यः एकवचनमस्ति, तत् दिव्यरूपमस्ति। अनेन प्रकारेण, अथर्ववेदे ११.६ सूक्ते प्राणस्य एकवचनस्य रूपस्य वर्णनमस्ति। अस्य प्राणस्य रूपं वायुरूपं दृश्यते। अस्मिन् सूक्ते स्तनयित्नु, विद्युत्, वर्षणादिशब्दाः सन्ति। वैदिकवाङ्मये एतेषां मूलं वायुरस्ति।

महाभारते शान्तिपर्व ३२८.३८ मध्ये यदा स्थूलदेहस्थिताः प्राणाः ब्रह्माण्डस्थितानां वायूनां रूपाणि धारयिष्यन्ति, तदा उदानादीनां प्राणानां ब्रह्माण्डे किं रूपं अस्ति, अस्य वर्णनमस्ति।
१०.९०.१५

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥
१५॥

परिधिरुपरि टिप्पणी एवं संदर्भाः, कवचोपरि टिप्पणी
Page 162 of 331

Page 163 of 331

१०.९०.१६अ

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

एषा ऋचा ऋग्वेदे १.१६४.५० अपि विद्यमाना अस्ति। अस्याः सायणभाष्ये कथनमस्ति यत् आदित्याश्चैवेहासन्नङ्गिरसश्च तेऽग्रेऽग्निनाग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन्(ऐतरेय. ब्राह्मण. १. १६) । यथा विदितमस्ति, अङ्गिरसां यज्ञः मन्दगत्या प्रचलति, श्वःसुत्यया, आदित्यानां त्वरितगत्या, अद्यसुत्यया। अतएव अयं संभवमस्ति यत् यज्ञेन यज्ञं शब्दौ मन्दगति एवं तीव्रगतियज्ञयोः वाचकौ स्तः। तैत्तीरीयब्राह्मणं ३.९.१९ तः संकेतं मिलति यत् एकः यज्ञः निष्कामयज्ञः अस्ति, द्वितीयः कामनापरकः।

ऋग्वेद १.१६४.४३ ऋचा अस्ति - शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण । उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥ अत्र कथनमस्ति - उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। अयं अर्धर्चः यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् इति अर्धर्चस्य तुल्यं अस्ति। सायणभाष्यानुसारेण उक्षा - फलसेचनसमर्थः। जगद्व्यवहारे बहवः

Page 163 of 331

Page 164 of 331

कार्याः, अनुष्ठानाः भवन्ति ये त्वरितफलदायकाः सन्ति। धारणा अस्ति यत् शक्तिपूजा त्वरितफलदायी अस्ति, न शिवपूजा। डा. फतहसिंहानुसारेण पृश्निशब्दः चित्र-विचित्रस्य, जगद्व्यवहारस्य बोधकः अस्ति। नायं सात्त्विकव्यवहारः। किन्तु या संसारव्यवहारस्य प्रथमानुभूतिः अस्ति, तत् मिथ्या नास्ति, तस्याः पाचनं, परिपाकं एव यज्ञमस्ति। एते धर्माः प्रथमानि सन्ति। काशिकानुसारेण धर्मशब्दः पुंल्लिंगः अस्ति, धर्माणि नपुंसकः।

१०.९०.१६ब

ते ह नाकं महिमानः सचन्ते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

नाकोपरि संदर्भाः,

ये स्वसंकल्पानां सिद्धिहेतु यज्ञेन यज्ञं कुर्वन्ति, ते ह नाकं महिमानः सचन्ते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।
संकल्पसिद्धियज्ञस्य आरम्भः लघुत्तमाकारतः भविष्यति एवं क्रमिकरूपेण बृहत्तररूपं धारयिष्यति। अयं एकः विकल्पः अस्ति। द्वितीयः विकल्पः साध्यानां देवानां अस्ति। यदा संकल्पः अतिप्रबलः अस्ति, तदा क्रमस्य आवश्यकता नास्ति।

Page 164 of 331

Page 165 of 331

इसप्रकार पुरुषसूक्त सृष्टि के उद्भव एवं विकासकर्म की कल्पना का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है जो ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करता है और उस ईश्वर की महिमा दर्शाता है I

ऐतरेय - उपनिषद् में सृष्टि - सृजन वर्णन --

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन

मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति I

(प्रथम अध्याय प्रथम खण्ड-श्लोक 1)

अर्थ- जब इस सृष्टि की रचना नहीं हुई थी, कुछ भी नहीं था, तब उस समय पहले पहल वह नियंता, कर्ता, आत्मा परमात्मा अकेला वही था I अन्य कोई भी, कुछ भी (आँख खोलनेवाला, झपकनेवाला, कोई होड़ करनेवाला प्रतिद्वंद्वी, प्रतिस्पर्धा करनेवाला- प्रतिस्पर्धी) नहीं था, बस वही आत्मा था I उस ‘आत्मा’ ने बारीकी से विचार किया, देखा-भाला, सोचा- समझा, और निर्णय लिया कि किस प्रकार ‘लोकों’ का अर्थात नाना-रूप सृष्टि का, कैसे-कैसे, किस-किस रूप में सर्जन करूं I

शङ्कराचार्य ने ईशादि नौ उपनिषद् में इसप्रकार कहा है—

Page 165 of 331

पहले यह जगत् एकमात्र आत्मा ही था ; उसके सिवाय और सक्रिय वस्तु नहीं थी । उसने यह सोचा कि 'लोकों की रचना करूं ।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि जिसप्रकार एक मकान बनाने किये उसका नक्शा बनाया जाता है , किसी काम को करने के लिए मन में विचार किया जाता है कि कार्य किसप्रकार , किस

तरीके से , किस योजना से किया जाये ।

इसी भाव को उन्होंने भाष्यार्थ में इस प्रकार समझाया है —'आत्मा के ईक्षणपूर्वक सृष्टि '--

भाष्य —आत्मा आप्नोतेरत्तेरततेर्वा परः सर्वज्ञः सर्वशक्तिरशनायादिसर्वसंसारधर्मवर्जितो नित्यषुद्धबुद्धमुक्त - स्वभावो S जो S जरो S मरो S मृतो S भयो S द्वयो वै ; इदं यदुक्तं नामरुपकर्मभेदभिन्नं जगदात्मैको S ग्रे जगतः सृष्टेः प्रागासीत् ।

किं नेदानीं स एवैकः ?

न ।

कथं तर्ह्यासीदित्युच्यते ?

यद्यपीदानीं स एवैकस्तथाप्यस्ति विशेषः ।

प्रागुत्पत्तेरव्याकृतनामरूपभेदमात्मभुतमात्म ैकशब्दप्रत्ययगो -चरं जगदिदानीं

व्याकृतनामरुपभेदत्वादनेकशब्दप्रत्ययगोचर -
मात्मैकशब्दप्रत्ययगोचरं चेति विशेषः ।

यथा
सलिलात्पृथक्फेननामरूपव्याकरणात्प्राक्स्सलिल
ैक-शब्दप्रत्ययगोचरमेव फेनम् , यदा
सलिलात्पृथङ्नामरुपभेदेन व्याकृतं भवति तदा
सलिलं फेनं चेत्यनेकशब्दप्रत्ययभाक् —
सलिलमेवेति चैकशब्दप्रत्ययभाक्च फेनं भवति
तद्वत् ।

नान्यत्किंचन न किंचिदपि
मिषन्निमिषद्व्यापारवदितरद्वा । यथा

सांख्यानामनात्मपक्षपाति स्वतन्त्रं प्रधानं
यथा च काणा -दानामणवो न तद्वदिहान्यदात्मनः
किंचिदपि वस्तु विद्यते । किं तर्हि ? आत्मैवैक
आसीदित्यभिप्राय : ।

स सर्वज्ञस्वाभाव्याद् आत्मा एक एव
सन्नीक्षत । ननु
प्रागुत्पत्तेरकार्यकरणत्वात्कथमीक्षितवान् ।
नायं दोषः , सर्वज्ञस्वाभाव्यात् तथा च
मन्त्रवर्णः –“अपाणिपादो जवनो
ग्रहीता ”(श्वेताश्वतर -उपनिषद् अध्याय 3 श्लोक
19) इत्यादिः केनाभिप्रायेणेत्याह —लोकान्
अम्भःप्रभृतीन् प्राणीकर्मफलोभोगस्थानभूतान्नु
सृजै सृजे S हमिति ।

Page 168 of 331

अर्थ- (व्याप्तिबोधक) ‘आप्’, (भक्षणार्थक) ‘अद्’ अथवा (सतत्गमनबोधक) ‘अत्’ धातु से ‘आत्मा’ शब्द निष्पन्न हुआ है I यह जो नाम, रूप, और कर्म के भेद से विविध

रूप प्रतीत होनेवाला जगत् कहा गया है वह पहले यानी संसार की सृष्टि से पूर्व सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् क्षुधा-पिपासा आदि सम्पूर्ण सांसारिक धर्मों से रहित, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव, अजन्मा, अजर, अमर, अमृत, अभय, और अद्वयरूप आत्मा ही था I

पूर्व o—क्या इस समय भी एकमात्र वही नहीं है?

सिद्धान्ती—ऐसी बात नहीं है I

पूर्व o—तो फिर ‘आसीत (था)’ ऐसा क्यों कहा है?

सिद्धान्ती—यद्यपि इस समय भी अकेला वही है तो भी कुछ विशेषता अवश्य है I [वह वोशेश्ता यही है कि] उत्पत्ति से पूर्व यह जगत् नाम-रुपादि भेद के व्यक्त न होने के कारण आत्मभूत और एक ‘आत्मा’ शब्द की प्रतीति का ही विषय था और इस समय नाम-रुपादि के भेद के व्यक्त हो जाने से वह अनेक शब्दों की प्रतीति का विषय भी हो रहा है; I

जिसप्रकार जलसे पृथक् फेनके नाम और रूप की अभिव्यक्ति होने से पूर्व फेन एकमात्र ‘जल’ शब्द की प्रतीति का ही विषय था; किन्तु जिस समय वह जलसे अलग नाम और रूप के भेद से व्यक्त हो जाता है उस समय

Page 168 of 331

Page 169 of 331

वह फेन ‘जल’ और ‘फेन’ इसप्रकार अनेक शब्दों की प्रतीति का विषय तथा केवल ‘जल’ इस एक शब्द की प्रतीति का विषय भी हो जाता है;

उसीप्रकार [उपर्युक्त भेद भी समझना चाहिये]

उसके सिवाय अन्य कोई व्यापारयुक्त अथवा निष्क्रिय वस्तु नहीं थी I जिसप्रकार सांख्यवादियों के मत में आत्मा से अतिरिक्त स्वतन्त्र प्रधान था, तथा कणादमतावलम्बियों के विचार में परमाणु थे, उस प्रकार इस (औपनिषद सिद्धान्त)-में आत्मा से अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं थी I तो फिर क्या था? एकमात्र आत्मा ही था— यह इसका अभिप्राय है I

सर्वज्ञस्वभाव होने के कारण उस आत्मा ने अकेले होते हुए ही ईक्षण (चिन्तन) किया I यदि कहो कि जगत् की उत्पत्ति से पूर्व कार्य और करण का अभाव रहते हुए भी उसने किस प्रकार ईक्षण किया? तो यह कोई दोष की बात नहीं है; क्योंकि वह आत्मा स्वभाव से ही सर्वज्ञ है I इस विषय में “हाथ-पाँव वाला न होकर भी वेगवान् और ग्रहण करनेवाला है” इत्यादि मन्त्रवर्ण भी है I उसने किस अभिप्राय से ईक्षण (चिन्तन किया, विचार किया) किया? इसपर श्रुति कहती है—‘मैं प्राणियों के कर्मफलोपभोग के आश्रयभूत अम्भ आदि लोकों की रचना करूं’ इसप्रकार ईक्षण किया I

Page 169 of 331

Page 170 of 331

ईशादिनवोपनिषद् में स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है----

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् I नान्यत्किंचन मिषत् I स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति I

अर्थ- ॐ इस परमात्मा के नाम का उच्चारण कर उपनिषद् का आरम्भ करते हैं I यह जगत् प्रकट होने से पहले एकमात्र परमात्मा ही था I उसके सिवा दूसरा कोई भी चेष्टा करने वाला नहीं था I उस परम् पुरुष परमात्मा ने, “मैं निश्चय ही लोकों की रचना करूं” इसप्रकार विचार किया I व्याख्या-इस मन्त्र में परमात्मा के सृष्टि रचना विषयव प्रथम संकल्प का वर्णन है I जब शिष्य अपनी अल्पबुद्धि से अपने चरों ओर फैली सृष्टि को समझ नहीं पाता तो स्वाभाविक उसके मन में प्रश्न उठते हैं कि यह सब कहाँ से आया इसके आने के पहले क्या था? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर के लिए वह सद्गुरु की शरण लेता है I

शिष्य के उक्त प्रश्नों के उत्तर में गुरु कहते हैं कि “प्रारम्भ में इस दृश्य जगत् की उत्पत्ति के पहले “केवल आत्मा ही था” I

“सृष्टि के पहले ब्रह्म था” यह ण कहकर सद्गुरु ने जानबूझ कर आत्मा शब्द का प्रयोग किया क्योंकि दृश्य जगत् की खोज तभी सार्थक हो सकती है जब हम अपने भीतर अपनी ही आत्मा को जान लें I अर्थात charity begins at home.

Page 170 of 331

Page 171 of 331

यहाँ प्रसंगवश ‘ब्रह्म’ तथा ‘आत्मा’ के शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है? यह समझ लेना उपयोगी होगा I हिन्दू शास्त्र में ‘ब्रह्म’ शब्द का अर्थ है परम् सत्य जो सर्वत्र व्याप्त है, सम्पूर्ण सृष्टि जिसकी अभिव्यक्ति है, जो जगत् का शाश्वत आधार है, अनंत है, समस्त ज्ञान एवं ज्ञान का स्रोत है I आत्मा शब्द का अर्थ ही जीवन उर्जा हैI उसका अनुभव स्वयं अपने ही अंदर किया जा सकता है I आत्मा का अनुभव करते ही अद्वय ब्रह्म का भी अनुभव प्राप्त हो जाता है I
ऋषि कहते हैं कि “देखने-सुनने और समझ में आनेवाले जड़-चेतनमय प्रत्यक्ष जगत् के इस रूप में प्रकट होने से पहले सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सम्पूर्ण सांसारिक धर्म क्षुधा- पिपासा आदि से रहित, नित्य-शुद्ध-बुद्ध, मुक्त स्वभाव, अजन्मा, अजर-अमर,अमृत, अभय और अद्वय रूप आत्मा ही था, वह सर्वव्यापी सत्य ब्रह्म ही है I

फिर ऋषि कहते हैं कि “और कोई भी अन्य सत्ता नहीं थी” I पूर्व कथन को और स्पष्ट करने के लिए नकारात्मक ढंग से कहा कि “केवल ब्रह्म था, अद्वितीय-सर्वव्यापी-परिपूर्ण ब्रह्म और इसमें या इसके अतिरिक्त कोई भी सत्ता नहीं थी I उस समय उन परब्रह्म परमात्मा के सिवा दूसरा कोई भी चेष्टा करनेवाला नहीं था I सर्वज्ञ स्वभाव होने के कारण उस परम् पुरुष परमात्मा ने अकेले होते हुए ही ईक्षण किया अर्थात चिन्तन किया कि “मैं प्राणियों

Page 171 of 331

Page 172 of 331

के कर्मफल उपभोग के आश्रयभूत ‘अम्भ’ आदि लोकों की रचना करूं” I

स इमांल्लोकानसृजत I अम्भो मरीचीर्मापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाS न्तरिक्षं मरीचयः I पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः I (प्रथम अध्याय प्रथम खण्ड-श्लोक 2) अर्थ- ‘ईक्षण’ करने के बाद उसने इन लोकों का सर्जन कर दिया I उसने चार लोकों को रचा—‘अम्भस्’, ‘मरीचि’, ‘मर’

, और
‘आपस्’, I दयु-लोक से परे और दयु-लोक तक जो लोक है, वह ‘अम्भस्’—लोक (महर्लोक, अर्थात मह-लोक है; उसके नीचे अन्तरिक्ष में जो सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि, प्रकाश-युक्त लोक हैं, वह ‘मरीचि’-लोक अर्थात् सूर्य-लोक, या अन्तरिक्ष लोक है; यह पृथिवी जिसमें प्राणी उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, यह मर्त्य-लोक, मृत्यु-लोक, मर-लोक है; पृथिवी के भी जो नीचे है, वह ‘आपस्-लोक’

, आप अर्थात् जल, जल
के अधिपति जल के देवता का वरुण-लोक है;

शङ्कराचार्य ने ईशादि नौ उपनिषद् में इसप्रकार कहा है—

इसी भाव को उन्होंने भाष्यार्थ में इस प्रकार समझाया है—‘सृष्टिक्रम’—

अर्थ-उसने अम्भ, मरीचि, मर, और आप—इन लोकों की रचना की I जो दयु-लोक से परे है और स्वर्ग की प्रतिष्ठा है वह ‘अम्भ’ है, अन्तरिक्ष (भुवर्लोक) ‘मरीचि’ है, पृथिवी ‘मर-लोक’ है और

Page 172 of 331

Page 173 of 331

जो (पृथिवी) नीचे है वह ‘आप’ है I

भाष्य- स आत्मेमांल्लोकानसृजत सृष्टवान् I यथेह बुद्धिमांस्तक्षादिरेवंप्रकारान्प्रासादादीन् सृज इति ईक्षित्वेक्षानन्तरं प्रासादादीन्सृजति तद्वत् I

ननु सोपादानस्तक्षादिः प्रासादादीन्सृजतीति युक्तं निरुपादानस्त्वात्मा कथं लोकान् सृजति?

नैष दोष:; [निरुपादानास्य आत्मनः सृष्टि कर्तृत्वम्]

सलिलफेनस्थानीये आत्मभूते नामरूपे अव्याकृते आत्मैकशब्दवाच्ये व्याकृतफेनस्थानीयस्य जगत उपादानभूते सम्भवतः I तस्माद् आत्मभूतानामरुपोपादान-भूतः सन्सर्वज्ञो जगन्निर्मिमीत इत्यविरुद्धम् I

अथवा, यथा विज्ञानवान्मायावी निरुपदान आत्मानमेव आत्मान्तरत्वेनाकाशेन गच्छन्तमिव निर्मिमीते, तथा सर्वज्ञो देवः सर्वशक्तिर्महामाय आत्मानमेवात्मान्तरत्वेन जगद्-रूपेण निर्मिमीत इति युक्तरम् I एवं च सति कार्यकारणोभयासद्वाद्यादिपक्षाश्च न प्रसज्जन्ते सुनिराकृताश्च भवन्ति I

काँल्लोकानस्रिज्तेत्याह—‘आत्मसृष्ट लोकाख्यानम्’---

Page 173 of 331

अम्भो मरीचिर्मरमाप इति । आकाशादिक्रमेण अण्डमुत्पाद्याम्भ :प्रभृतीन् लोकानसृजत । तत्राम्भः प्रभृतीन् स्वयमेव व्याचष्टे श्रुतिः
।

अदस्दम्भ :शब्दवाच्यो लोकः परेण दिवं द्युलोकात्परेण परस्तात् ; सो S म्भ :शब्दवाच्य :, अम्भोभरणात् । द्यौः प्रतिष्ठाश्रयस्तस्याम्भसो लोकस्य । द्युलोकादधस्तादन्तरिक्षं यत्तन्मरीचय : । एको S प्यनेक —स्थानभेदत्वा द्बहुवचनभाक् —मरीचय इति ; मरिचिभिर्वा रश्मिभिः सम्बन्धात् । या अधस्तात् पृथिव्यास्ता आप उच्यन्ते ; अप्नोते ;, लोकाः । यद्यपि पञ्चभुतात्मकत्वं लोकानां तथाप्यबाहुल्यादब्नामभिरेवाम्भो मरीचीर्मरमाप इत्युच्यन्ते ।

अर्थ - उस आत्मा ने इन लोकों की रचना की । जिसप्रकार इसलोक में बुद्धिमान शिल्पकार आदि 'मैं इसप्रकार के महल आदि बनाऊं ' ऐसा विचार करके उस विचार के अनन्तर ही महल आदि की रचना करते हैं उसी प्रकार [उसने ईक्षण करके इन लोकादि की रचना की] । शंका —शिल्पकारादि तो उन महल आदि की उपादन सामग्री से युक्त होते हैं इसलिए वे महल आदि की रचना करते हैं —ऐसा कहना ठीक ही है ; किन्तु उपादान (सामग्री)-से रहित आत्मा किसप्रकार लोकों की रचना करता है ?

Page 175 of 331

समाधान—यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि जल मरण (व्यक्त न हुए) फेनस्थानीय अव्याकृत नाम और रूप, जो आत्मस्वरूप और एक मात्र ‘आत्मा’ शब्द के ही वाच्य हैं, व्याकृत फेनस्वरूप जगत् के उपादान हो सकते हैं I अत: वह सर्वज्ञ आत्मा अपने आत्मभूत नाम और रूप का उपादानस्वरूप हो कर जगत् की रचना करता है—इसमें कोई विरोध नहीं है I

अथवा जिसप्रकार बुद्धियुक्त मायावी कोई उपादान न होने पर भी स्वयं अपने को ही अपने अन्य रूप से आकाश में चलता हुआ-सा बना लेता है, उसीप्रकार वह सर्वशक्तिमान, महामायावी, सर्वज्ञ देव अपने ही को जगत् –रूप अपने अन्य स्वरूप से रच लेता है—यह बहुत युक्तियुक्त ही है I ऐसा होने पर कार्य और कारण-इन दोनों को असत् बतलाने वालों के (असद्वाद आदि) पक्षों की प्राप्ति नहीं होती और उनका पूर्णतया निराकरण हो जाता है I

उसने किन लोकों की रचना की?

इसपर कहते हैं—अम्भ, मरीचि, मर, और आप आदि की I उसने आकाशादिक्रम से अण्ड को उत्पन्न कर अम्भ आदि लोकों की रचना की I उन अम्भ आदि लोकों की श्रुति स्वयं ही व्याख्या करती है I

अद:--वह ‘अम्भ’ शब्द से कहा जानेवाला लोक है, जो द्युलोक से परे है; वह जल (मेघों)-को धारण करनेवाला होने से ‘अम्भ’ शब्द से कहा जाता है I उस अम्भलोक का द्युलोक प्रतिष्ठा यानी आश्रय है I

Page 175 of 331

Page 176 of 331

द्युलोक से नीचे जो अन्तरिक्ष है वह मरीचिलोक है I वह एक होने पर भी अनेकों स्थानभेदों के कारण ‘मरीचय:’ इस प्रकार बहुवचन रूप से प्रयुक्त हुआ है I अथवा किरणों से सम्बन्धित होने के कारण ‘मरीचि’ कहलाता है I पृथ्वी ‘मर’ है; क्योंकि उसमें प्राणी मरते हैं I जो लोक पृथ्वी से नीचे की ओर हैं वे ‘आप’ कहलाते हैं; क्योंकि ‘अप्’ शब्द [नीचे के लोकों में रहनेवाले प्राणियों द्वारा प्राप्य होने के कारण प्राप्तिरूप अर्थवाले] ‘आप्’ धातु से बना हुआ है I यद्यपि सभी लोक पंचभूतमय हैं तथापि अम्भ, मरीचि, मर और आप-ये लोक आप (जल)-की अधिकता होने के कारण ‘आप’ ही खे जाते हैं I

ईशादिनवोपनिषद् में स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है----

अर्थ- उसने अम्भ अर्थात द्युलोक तथा ऊपर के लोक, मरीचि(अन्तरिक्ष), मर(मृत्युलोक) और जल(पृथ्वी के नीचे के लोक) इन सब लोकों की रचना की I द्युलोक स्वर्ग लोक से ऊपर के लोक तथा उनका आधारभूत द्युलोक भी वे सब ‘अम्भ’ नाम से कहे जाते हैं, अन्तरिक्ष लोक (भुवलोक) ही मरीचि है तथा यह पृथ्वी ही ‘मर’-मृत्युलोक के नाम से कही जाती है जो पृथ्वी के नीचे-भीतरी भाग में (स्थूल पाताल आदि लोक) हैं वे जल के नाम से कहे जाते हैं I

व्याख्या-जैसा कि पूर्व मन्त्र के अन्त में कहा जा चुका है कि परब्रह्म समार्थ्य वासनाओं के

Page 176 of 331

Page 177 of 331

तादात्म्य से उनकी प्रेरणा या प्रभाव से उनके अनुकूल जगत की सृष्टि का विचार कर उसने इन लोकों की सृष्टि की I

संस्कृत भाषा में लोक का तात्पर्य है-“असंख्य जीवों के द्वारा बनाया हुआ सम्पूर्ण कर्म एवं भोग का क्षेत्र अत: वासनाओं की अभिव्यक्ति हेतु चार क्षेत्र बने I उपनिषद् इनका नाम बताता है-अम्भ, मरीचि, मर तथा जल(आप:) उक्त लोकों का क्या तात्पर्य

है इस पर संक्षेप में चर्चा की जा रही है—

अम्भ-स्वर्गलोक से उपर जो मह:, जन:, तपा: और सत्यलोक हैं, वे एवं उनका आधार द्युलोक इन पाँचों को अम्भ नाम से कहा गया है I ‘अम्भ’ दो शब्दों ‘अम’ अर्थात प्राण+भ: अर्थात भरण करनेवाला लोक है जिसकी प्रत्यक्ष प्रतिष्ठा के रूप में द्युलोक है I

मरीचि—‘मरीचि’ संस्कृत में किरणों को कहा जाता है I यहाँ उसका तात्पर्य वायुमण्डल से I सूर्य उसी वस्तु को प्रकाशित करता है जिसपर उसकी किरणें पड़ रही हों I पृथ्वी के चारों वायुमण्डल में उड़ते हुए धूल के कणों के आलोकित क्षेत्र को मरीचि कहा जाता है I

मरीचि का अर्थ शब्द कल्पद्रुम (मुंह मांगी वस्तु देने वाला) के अनुसार पापों, क्षुद्र जीवों या तमस को मारने वाला कहा गया है I अन्तरिक्ष में

Page 177 of 331

Page 178 of 331

ऐसे तेजस्वी मारक प्रवाह की पुष्टि वर्तमान विज्ञान भी करता है I

मर—संस्कृत में ‘मर’ का अर्थ होता है, मृत्यु, ऋषि स्पष्ट रूप से कहते हैं कि हमारे निवास की इस पृथ्वी के पिण्ड को ही ‘मर’ कहा जाता है जहाँ मृत्यु के संगीत पर नश्वरता तथा परिवर्तन का

नृत्य होता रहता है I इसको मृत्युलोक भी कहते हैं I

आप:--पृथ्वी की सतह के भीतर स्थूल सघन क्षेत्र खनिजों के भंडार तथा पानी को आप: बताया गया है I

वस्तुत: ऋग्वेद ने आप: को सृष्टि के मूल क्रियाशील प्रवाह के रूप में व्यक्त किया है I आप: सृष्टि का आधारभूत द्रव्य है I आप: जल को भी कहते हैं I पर इसका अर्थ ‘जल’ लेने से मन्त्र का भाव सिद्ध नहीं होता I अत: आप: को वेद की अवधारणा के अनुकूल ही स्वीकार करना चाहिए I इसी आप: तत्व के गर्भ में ब्रह्म का संकल्प बीज रूप में पक कर विश्व रूप बनता है I यह गुण मातृ सत्ता का होने से आप: को ‘देवी आप:’ या ता: आप: कहना उचित है I

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति I

सोS द्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् I

(प्रथम अध्याय प्रथम खण्ड-श्लोक 3)

अर्थ- उसने फिर ‘ईक्षण’ किया, यह सोचा कि ये तो ‘लोक’ रचे गये I इन लोकों की रक्षा कैसे होगी?

Page 178 of 331

Page 179 of 331

इसलिये ‘लोकपालों’ की रचना भी कर डालूं, उसने ‘जल’ में से पुरुष निकाला I यहां ‘जल’ अर्थ पानी नहीं, अपितु पञ्च-महाभूतों के सूक्ष्म रूप को, जिसके कारण रचना सम्भव हो सकती है, ‘जल’ कहा गया है; (इसीलिये जल को जीवन कहा गया है I ‘जल’ से पुरुष निकाला गया—इस वाक्य में ‘पुरुष’ का अभिप्राय विराट् पुरुष से है, उस पुरुष से जिसे जगह-जगह ‘हिरण्य-गर्भ’ कहा गया है I ‘जल’ से ‘पुरुष’ को, ‘जल’ अर्थात् प्राकृतिक-सूक्ष्म-तत्वों से ‘विराट्- पुरुष को—हिरण्यगर्भ को—रचने के बाद उसे मूर्छित किया गया I जैसे कच्चे लोहे को तपा कर उसे पानी में मूर्छित (Tempered) किया जाता है ताकि वह दृढ हो जाये,पक्का हो जाये, इसी प्रकार ‘विराट्- पुरुष’ भी तो प्रारम्भ में कच्ची हालत में था, उसे मूर्छित करने की, उसके परिपाक आवश्यकता थी I

शङ्कराचार्य ने ईशादि नौ उपनिषद् में इसप्रकार कहा है—

अर्थ-उसने ईक्षण (विचार) किया कि—‘ये लोक तो तैयार, अब

लोकपालों की रचना करुं—ऐसा सोचकर उसने जल में से ही एक पुरुष निकालकर अवयव युक्त किया I
इसी भाव को उन्होंने भाष्यार्थ में इस प्रकार समझाया है—‘पुरुषरूप लोकपाल की रचना’—

भाष्य- स ईश्वरः पुनरेवेक्षत I इमे नु अम्भः प्रभृतयो मया सृष्टा लोकाः परिपालयितृवर्जिता

Page 179 of 331

विनश्येयुः , तस्मादेषां रक्षणार्थं लोकपालाँल्लोकानां पालयितृन्नु सृजै सृजे S हमिति ।

एवमीक्षित्वा सो S द्भ्य एव अप्प्रधानेभ्य एव पञ्चभूतेभ्यो येभ्यो S म्भःप्रभृतीन्सृष्टवांस्तेभ्य एवेत्यर्थः । पुरुषं पुरुषाकारं शिरःपाण्यादिमन्तं समुद्धृत्य अद्भ्यः समुपादाय मृत्पिण्डमिव कुलालः पृथिव्याः , अमूर्छयन्मूर्छितवान् संपिण्डितवान् स्वावयवसंयोजनेनेत्यर्थ :।

अर्थ - उस ईश्वर ने फिर भी ईक्षण (विचार) किया । मेरे रचे हुए ये अम्भ आदि लोक बिना किसी रक्षक के नष्ट हो जायेंगे । अथ इनकी रक्षा के लिए मैं लोकपालों की —लोकों की रक्षा करनेवालों की रचना करूं ।

ऐसा सोचकर उसने जलसे —जलप्रधान पंचभूतों से अर्थात् जिनसे उसने अम्भ आदि लोकों की रचना की थी उन्हींसे पुरुष यानी सिर और हाथ आदि वाले पुरुषाकारको , जिसप्रकार कुम्हार पृथिवी से मिट्टी का पिंड निकलता है , उसी प्रकार निकालकर मूर्छित किया अर्थात् अवयवों की योजना कर उसको बढ़ाया ।

ईशादिनवोपनिषद् में स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है ----

Page 181 of 331

अर्थ- उसने फिर विचार किया ये तो हुए लोक अब लोकपालों की भी रचना मुझे अवश्य करनी चाहिये I यह विचार करके उसने जल से ही हिरण्यगर्भ रूप पुरुष को निकाल कर उसे मूर्ति मान् बनाया I

व्याख्या- इसप्रकार इन उक्त लोकों की रचना के उपरान्त परमेश्वर ने फिर विचार किया कि लोकों की रचना तो हो गई अब इनकी रक्षा करने के लिए लोकपालों की रचना भी मुझे अनिवार्य रूप से करनी चाहिये अन्यथा बिना रक्षक के सबलोक सुरक्षित नहीं रह सकेंगे I अत: ब्रह्म ने सृष्टि के मूल क्रियाशील प्रवाह आप: से विराट पुरुष को समस्त अंगों से युक्त करके, मूर्त रूप दिया अर्थात विराट संरचना की सामर्थ्य को जागृत किया I पुरुष सम्बोधन सृजनात्मक पुरुषार्थ करने में समर्थ के लिए प्रयुक्त होता है I ब्रह्मा की उत्पत्ति जल के भीतर से कमल नाल से हुई तथा उन्होंने लोकपालों और प्रजा को बढ़ाने वाले प्रजापतियों की रचना की अत: यहाँ पुरुष शब्द का तात्पर्य ब्रह्मा मान लेना उचित है?

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डम् I

मुखाद्वाचोS ग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः

प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षीभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां

Page 181 of 331

कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोS पानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः I

(प्रथम अध्याय प्रथम खण्ड-श्लोक 4)

अर्थ- ब्रह्म ने विराट्-पुरुष को तपाया I अभीतक विराट्-पुरुष एक अगढ़ रूप में था, पुरुषाकार तो था परन्तु उसके मुख, नाक, आँख, कान,आदि द्वार खुले नहीं थे, बंद थे, तपाने से उसका मुख खुल गया, जैसे अंडा खुल जाता है I विराट्-पुरुष के मुख से वाक्- शक्ति प्रकट हुई, और उस महापुरुष की वाक् से वाणी का देवता ‘अग्नि’ प्रकट हुआ I नासिकाएँ खुल गईं, नासिकाओं से प्राण-शक्ति प्रकट हुई, और उस महापुरुष के प्राण से प्राण का देवता ‘वायु’ प्रकट हुआ I आँखों के गोलक खुल गये, उनसे चक्षु-शक्ति प्रकट हुई और चक्षु से चक्षु का देवता ‘आदित्य’ प्रकट हुआ I कान खुल गये, कानों से श्रोत्र-शक्ति प्रकट हुई और श्रोत्र से श्रोत्र की देवता ‘दिशायें’ प्रकट हुईं I त्वचा खुल गई, त्वचा से लोम प्रकट हुए और लोम से ‘ओषधि’ तथा ‘वनस्पति’ प्रकट हुए I हृदय खुल गया, हृदय से मन प्रकट हुआ, और मन से मन का देवता ‘चन्द्रमा’ प्रकट हुआ I नाभि खुल गई, नाभि से अपान प्रकट हुआ, अपान से अपान का देवता ‘मृत्यु’ पक्त हुआ I शिश्न खुल गया,उससे उत्पादन-
Page 182 of 331

Page 183 of 331

शक्ति प्रकट हुई, उत्पादन-शक्ति से उसका देवता ‘जल’ हुआ—‘जल’ ही उत्पादन-शक्ति का आधार है I इसप्रकार चर्लोकों को बनाकर ‘अग्नि’, ‘वायु’

,

‘आदित्य’, ‘दिशायें’, ‘वनस्पति’, ‘चन्द्रमा’

,

‘मृत्यु’

, तथा ‘जल’—इन आठ लोकपालों को, अर्थात् ‘ब्रह्माण्ड’ के आधारभूत आठ तत्वों को विराट्- पुरुष से रचा I शङ्कराचार्य ने ईशादि नौ उपनिषद् में इसप्रकार कहा है—अर्थ-उस विराट् पुरुष के उद्देश्य से ईश्वर ने संकल्प कियाI उस संकल्प किये पिण्ड से अण्डे के समान मुख उत्पन्न उत्पन्न हुआ I मुख से वाक् और वागिन्द्रिय से अग्नि उत्पन्न हुआ I (फिर) नासिकारन्ध्र प्रकट हुए, नासिकरन्ध्रों से प्राण हुआ और प्राण से वायु I [इसीप्रकार] नेत्र प्रकट हुए तथा नेत्रों से चक्षु-इन्द्रिय और चक्षु से आदित्य उत्पन्न हुआ I [फिर] कान उत्पन्न हुए तथा कानों से श्रोत्रेन्द्रिय और श्रोत्र से दिशाएँ प्रकट हुईं I [तदनन्तर] त्वचा प्रकट हुई तथा त्वचा से लोम और लोमों से ओषधि एवं वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं I [इसीप्रकार हृदय उत्पन्न हुआ तथा हृदय से मन और मन से चन्द्रमा प्रकट हुआ I [फिर] नाभि उत्पन्न हुई तथा नाभि से अपान और अपानसे मृत्यु की अभिव्यक्ति हुई I [तदनन्तर] शिश्न प्रकट हुआ तथा शिश्न से रेतस् और रेतस् से आप उत्पन्न हुआ I

इसी भाव को उन्होंने भाष्यार्थ में इस प्रकार समझाया है—

Page 183 of 331

‘इन्द्रियगोलक , इन्द्रिय और इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं की उत्पत्ति ’—

भाष्य -तं पिण्डं पुरुष -विधमुद्दिश्याभ्यतपत् । तदभिध्यानं संकल्पं कृतवानित्यर्थ :, “यस्य ज्ञानमयं तपः ” (मुण्डकोपनिषद् अध्याय 1 खण्ड 1 श्लोक 9) इत्यादिश्रुतेः । तस्याभितप्तस्येश्वरसंकल्पेन तपसाभितप्तस्य पिण्डस्य मुखं निरभिद्यत मुखाकारं सुषिरमजायत यथा पक्षिणो ऽण्डं निर्भिद्यत एवम् । तस्मान्निर्भिन्नान्मुखाद्वाक्करणमिन्द्रियं निरवर्तत ; तदाधिष्ठाताग्निस्ततो वाचो लोकपालः । तथा नासिके निरभिद्येताम् । नासिकाभ्यां प्राणः , प्राणाद्वायु :, इति सर्वत्राधिष्ठानं करणं देवता च त्रयं क्रमेण निर्भिन्नमिति । अक्षिणी कर्णौ त्वग् हृदयमन्तःकरणाधिष्ठानम् , मनो ऽन्तःकरणम् । नाभिः सर्वप्राणबन्धनस्थानम् । अपानसंयुक्तत्वादपान इति पाय्विन्द्रियमुच्यते । तस्मात् तस्याधिष्ठात्री देवता मृत्युः । यथान्यत्र , तथा शिश्नं निरभिद्यत प्रजननेन्द्रियस्थानम् । इन्द्रियं रेतो रेतोविसर्गार्थत्वात्सह रेतसोच्यते । रेतस आप इति ।

अर्थ - उस पुरुषाकारपिण्ड के उद्देश्य से ईश्वर ने तप किया । अर्थात् उसका अभिध्यान यानी संकल्प किया , जैसाकि “जिसका तप ज्ञानमय है ” इस श्रुति से सिद्ध होता है । उस अभितप्त -ईश्वर के संकल्परूप तप

से तपे हुए पिण्डका मुख प्रकट हुआ अर्थात् उसमें मुखाकार छिद्र इसप्रकार उत्पन्न हो गया जैसेकि पक्षी का अंडा फट जाता है I उस छिद्ररूपमुख से वाक्-इन्द्रिय उत्पन्न हुई और उस वाक् से वाणी का अधिष्ठाता लोकपाल अग्नि हुआ I इसी प्रकार नासिकारन्ध्र उत्पन्न हुए, उन नासिकारन्ध्रों से प्राण एयर प्राण से वायु हुआ I इसप्रकार सभी जगह इन्द्रियगोलक, इन्द्रिय और उसके अधिष्ठाता देव-ये तीनों ही क्रमशः उत्पन्न हुए I दो नेत्र, दो कान, और त्वचा [-ये इन्द्रियस्थान हैं], हृदय अन्त:करण का अधिष्ठान है और मन अन्त:करण है I नाभि सम्पूर्ण प्राणों के बन्धन का स्थान है I अपान वायुयुक्त होने के कारण पायु इन्द्रिय अपान कहलाती है; उससे उसकी अधिष्ठात्री देवता मृत्यु उत्पन्न हुई I जैसे कि अन्यत्र [इन्द्रिय, इन्द्रियस्थान और देवता] बतलाये गये हैं, उसी प्रकार प्रजननेन्द्रिय का आश्रयस्थान शिश्न उत्पन्न हुआ I उसमें रेत: इन्द्रिय है, जो रेतोविसर्ग (विर्यत्याग)-की हेतुभूत होने से रेत: (वीर्य)-के सम्बन्धसे ‘रेतस्’ कही जाती है और रेत:से आप (वीर्य के अधिष्ठाता जल)-का प्रादुर्भाव हुआ I

ईशादिनवोपनिषद् में स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है----

अर्थ- परमात्मा ने उस हिरण्यगर्भ रूप पुरुष को लक्ष्य करके संकल्प रूप तप किया उस तप से तपे हुए
Page 185 of 331

Page 186 of 331

हिरण्यगर्भ के शरीर से पहले अंडे की तरह फूटकर मुख छिद्र प्रकट हुआ, मुख से वाक् इन्द्रिय और वाक् इन्द्रिय से अग्नि देवता प्रकट हुआ, फिर नासिका के दोनों छिद्र प्रकट हुए, नासिका छिद्रों से प्राण उत्पन्न हुआ, और प्राण से वायु देवता उत्पन्न हुआ, फिर दोनों आँखों के छिद्र प्रकट हुए, आँखों के छिद्रों से नेत्र-इन्द्रिय प्रकट हुई, और नेत्र-इन्द्रिय से सूर्य प्रकट हुआ फिर दोनों कानों के छिद्र प्रकट हुए,कानों से श्री=ओत्र इन्द्रिय प्रकट हुई और श्रोत्र इन्द्रिय से दिशाएं प्रकट हुई फिर त्वचा प्रकट हुई, त्वचा से रोम उत्पन्न हुए, और रोमों से औषधि एवं वनस्पतियाँ प्रकट हुई फिर हृदय प्रकट हुआ, हृदय से मन का आविर्भाव हुआ और मन से चंद्रमा उत्पन्न हुआ फिर नाभि प्रकट हुई, नाभि से अपान-वायु प्रकट हुआ, अपानवायु से मृत्यु देवता उत्पन्न हुआ फिर लिंग प्रकट हुआ लिंग से वीर्य और वरी से जल उत्पन्न हुआ I

व्याख्या-इसप्रकार हिरण्यगर्भ पुरुष को उत्पन्न करके उसके अंग-उपांगों को व्यक्त करने के उद्देश्य से जब परमात्मा ने संकल्प-रूप तप किया तब उस तप के फलस्वरूप हिरण्यगर्भ पुरुष के शरीर में सर्वप्रथम अंडे की भांति फूटकर मुख छिद्र निकला I इस मुख में शब्दोच्चारण की क्षमता थी उसी वाणी से अग्नि की उत्पत्ति हुई I वाणी की शक्ति से अभिव्यक्ति का उपकरण (गोलक) मुंह है I मुख की

Page 186 of 331

Page 187 of 331

क्रिया वाणी के केंद्र को इन्द्रिय कहा जाता है I और इस केंद्र

के अधिष्ठाता देवता अग्नि हैं I

आँख मुंह जैसे स्थूल उपकरणों को संस्कृत में गोलक कहा जाता है अर्थात् ज्ञान एवं कर्म के उपकरण I मस्तिष्क में स्थित अनुभूति केन्द्रों को संस्कृत में इन्द्रिय कहा जाता है I यह केंद्र अपने से जुड़े हुए उपकरणों का संचालन करते हैं I अनुभूति की जो योग्यता इन्द्रियों में दिखाई देती है उसे संस्कृत में देवता कहा जाता है अर्थात् अनुभूति हेतु आवश्यक दिव्य शक्ति I

ईश्वर, जो वास्तव में समष्टि वासनाओं से तद्रूप (सदृश, समान) हुआ परब्रह्म ही है, वह जिस विराट् पुरुष की रचना कर रहा है उसकी वाणी की शक्ति रखनेवाली इन्द्रिय अर्थात् मुख की रचना के बाद उसमें नाक का विकास हुआ I

जिस कर्म में यहाँ यह वर्णन है उसी कर्म से गर्भ में भ्रूण में भी इन्द्रियों का विकास होता है I आज के पाश्चात्य देशों के स्वास्थ्य विशेषज्ञों द्वारा किये अनुसन्धान से भी यही बात पुष्ट

होती है I

मुख के बाद पहले नाक विकसित होती है (गोलक) फिर सूंघने की शक्ति का विकास होता है (इन्द्रिय) और

Page 187 of 331

इसके अधिष्ठातृ देव हैं वायु जिसके माध्यम के बिना किसी गन्ध का अनुभव नहीं हो सकता I इसका तात्पर्य है कि हमारी नाक को गन्ध की अनुभूति तभी होती है जब उस इन्द्रिय पर उसके अधिष्ठातृ देवता वायु की कृपा हो I

नाक के उपरान्त दो आँखें उत्पन्न हुई I आँख से गोलक बना फिर दृष्टि (इन्द्रिय) आई और उसके अधिष्ठातृ देवता हैं सूर्य I हमारी दृष्टि की शक्ति का लाभ हमें तभी मिल सकता है जब उस वस्तु पर कोई प्रकाश पड़ रहा है I अर्थात् दृष्टि की शक्ति प्रकाश के माध्यम में ही व्यक्त होती है I सूर्य सभी प्रकाशों का आदि स्रोत है I संस्कृत भाषा में आदित्य शब्द सूर्य में निहित प्रकाश को परिलक्षित करता है I

आँखों के उपरान्त कान के बाहर के उपकरण प्रकट हुए (गोलक) इसके बाद सुनने की शक्ति आई (इन्द्रिय) और फिर प्रकट हुए अधिष्ठातृ देवता ‘दिशा’ I ये दिशाएँ चारों ओर उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम में फैली हैं, ऊपर भी है नीचे भी है I यह वास्तव में आकाश का ही विस्तार है I यदि आकाश न होता तो दिशाओं का अस्तित्व नहीं होता I दिशा शब्द से आकाश का ही संकेत है आकाश ही सुनने की शक्ति का देवता है I पूर्णाकार विराट् पुरुष के परिपूर्ण अंग ग्रहण के बाद उसके शरीर कप त्वचा से ढक दिया गया I उससे स्पर्श शक्ति का प्राकट्य हुआ I त्वचा (चर्म) से रोम उत्पन्न हुए, रोमों से औषधियों और
Page 188 of 331

वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई । जैसे व्यक्ति के शरीर में रोमावली स्वत : उत्पन्न होती है उसीप्रकार पृथ्वी पर भी अचर जड़ वनस्पति स्वयं आती है ।

इसके उपरान्त हृदय उत्पन्न हुआ फिर विचार तथा भावना , प्रेम और आत्मीयता , विवेक एवं संकल्प के उपकरण हृदय से प्रकट हुए । हृदय गोलक वह केंद्र है , जहाँ से मन रूपी इन्द्रिय प्रकट होती है , जिसके द्वारा अनुभूति की शक्ति मिलती है । मन का अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा है ।

पूर्व में जैसा हमने देखा कि पहले उपकरण , फिर उसके बाद देवता का प्राकट्य होता है । उसी कर्म में नाभि प्रकट हुई फिर उससे अपान वायु आदि अर्थात प्राण । हिन्दू शस्त्रों में प्राणं वायु नहीं होता प्रत्युत प्राण का अर्थ होता है कर्म शक्ति की अभिव्यक्ति । स्थूल शरीर में स्थित आत्मा की अभिव्यक्ति शक्ति को पांच भागों में बांटा गया है । क्रिया शक्ति की इन अभिव्यक्तियों को उस साहित्य में पंच प्राण कहा जाता है वे इसप्रकार हैं —

1] जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों के माध्यम से जो शक्ति कार्य करती है उसे मुख्य ‘प्राण ’ कहा जाता है ।

2] जीवित शरीर में जो शक्ति शरीर से मल , मूत्र , वीर्य का त्याग करती है उसे ‘अपान ’ कहा जाता है ।

Page 190 of 331

3] पाचन की क्रिया करने वाली शक्ति को ‘व्यान’ कहा जाता है I

4] पचाये हुए भोजन के तत्व को शरीर के हर भाग को समान रूप से वितरण करनेवाली शक्ति को ‘समान’ कहते हैं I

5] अन्त में प्राण की अन्तिम अभिव्यक्ति जहाँ मन और बुद्धि मृत्यु के समय स्थूल शरीर को छोड़ते हैं उस शक्ति को ‘उदान’ कहा जाता है I

अत: एक प्राण शक्ति की ही पांच अभिव्यक्तियाँ हैं I इसमें ‘अपान’ की स्थिति नाभि में होती है I

मृत्यु के सिद्धांत के अनुसार शरीर परित्याग की क्रिया ही मृत्यु कहलाती है I मृत्यु के समय पर अपान अत्यंत सक्रिय हो जाता है I अपान से मृत्यु देवता की उत्पत्ति हुई I

इसके उपरान्त जननेन्द्रिय ‘लिंग’

, फिर उससे
वीर्य और वीर्य से आप: अर्थात् जल या सृजनशीलता की उत्पत्ति हुई I यहाँ वीर्य से पुन: ‘आप:’ की उत्पत्ति कही गई है I जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि आप: सृष्टि कर्ता आधारभूत प्रवाह है I वीर्य में ही पुन: सृष्टि करने में समर्थ ‘बीज’ तैयार होता है I वीर्य उस सूक्ष्म आप: प्रवाह के चक्र को पुन: प्रयुक्त करने में सक्षम हैं I उसी आप: तत्व में चेतना पुन: रूप ग्रहण करने लगती है I

Page 190 of 331

विशेष:--(श्रीमद्भागवत -- महापुराण द्वितीय स्कन्ध सृष्टि - वर्णन नामक पांचवें और छठे अध्याय में इसप्रकार बताया गया है):----

द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, और जीव-- वास्तव में भगवान् से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है i वेद (जो कुछ भी जानने योग्य है), नारायण परायण हैं अर्थात उनका गुणगान करने वाले हैं i देवता भी नारायण के अंगों से ही कल्पित हुए हैं और समस्त यज्ञ आदि भी उन नारायण अर्थात ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ही हैं और उनकी प्रसन्नता के लिए ही सब किये जाते हैं और उनसे जिन लोकों की प्राप्ति होती है, वे भी नारायण में ही कल्पित हैं i सभी प्रकार के योग, सभी तपस्यायें, नारायण अर्थात ईश्वर की ओर ले जाने वाली और नारायण में ही कल्पित हैं i समस्त साध्य और साधनों का पर्यवसान (मिलन) इन्हीं प्रभु, ईश्वर,नारायण में है i वे द्रष्टा होने पर भी ईश्वर हैं, स्वामी हैं; निर्विकार होने पर भी सर्व स्वरूप हैं i

भगवान् माया के गुणों से रहित एवं अनंत हैं i सृष्टि, स्थिति, और प्रलय के लिए रजोगुण, सत्वगुण, और तमोगुण—ये तीन गुण माया माया के द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं i ये ही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान, और क्रिया का आश्रय ले कार मायातीत नित्य मुक्त पुरुष को ही माया में स्थित होने पर कार्य, कर्ण और कर्तापन के अभिमान से बाँध लेते हैं, जबकि वे इन्द्रियातीत अर्थात 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5
Page 191 of 331

Page 192 of 331

कर्मेन्द्रियों, व एक मन से परे भगवान् गुणों के इन तीन आवरणों से अपने स्वरूप को भलीभांति ढक लेते हैं, इसलिए लोग उनको जान नहीं पाते i

उन मायापति भगवान् ने एक से बहुत होने की इच्छा होने पर अपनी माया से अपने स्वरूप में स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया i भगवान् की शक्ति से ही काल के द्वारा उन तीनों गुणों में क्षोभ (हलचल, विकार) उत्पन्न होने से स्वभाव द्वारा रूपांतरित करने से कर्म द्वारा महत्तत्व का जन्म हुआ, और इसी प्रकार अहंकार, आदि अन्य गुणों, विराट् सृष्टि के पृथ्वी, शब्द सम्पूर्ण भोग तत्वों का अविर्भाव हुआ i

जिस समय ये पंचभूत, इन्द्रिय,मन और सत्वगुण आदि तीनों गुण परस्पर संगठित नहीं थे, तब ये अपने रहने के लिए भोगों के साधनरूप शरीर की रचना नहीं कर सके i जब भगवान ने इन्हें अपनी शक्ति से प्रेरित किया, तब वे तत्व परस्पर एक दूसरे से मिल गये और आपस में कार्य कारण भाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टि पिंड और ब्रह्मांड दोनों की रचना की I

वह ब्रह्मांडरूप अंडा एक हजार वर्ष तक निर्जीवरूप से जल में

पड़ा रहा; फिर काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करनेवाले भगवान् ने उसे जीवित कर दिया i उस अंडे को फोड़ कार उसमें से वही विराट् पुरुष निकला, जिसकी जंघा, चरण, भुजाएं, नेत्र, मुख और सिर

Page 192 of 331

Page 193 of 331

सहस्रों की संख्या में हैं i विद्वान् पुरुष (उपासना के लिये) उसी के अंगों में समस्त लोक और उनमें रहने वाली वस्तुओं की कल्पना करते हैं i जैसे उसकी कमर से नीचे के अंगों में सातों पाताल और उसके पेडू से उपर के अंगों में सातों स्वर्ग की कल्पना की जाती है (जिन्हें इस्लाम व इसाई सात आसमान कहते हैं i)

ब्राह्मण इस विराट पुरुष का मुख हैं, भुजाएं क्षत्रिय हैं, जांघों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं i पैरों से लेकर कटि पर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोक की कल्पना की गई है; नाभि में भुवर्लोक की, हृदय में स्वर्लोक की और परमात्मा के वक्ष:स्थल में महर्लोक की कल्पना की गई है I उसके गले में जनलोक, दोनों स्तनों में तपोलोक और मस्तक में ब्रह्मा का नित्य निवास सत्यलोक है I उस विराट् पुरुष कमर में अतल, जांघों में वितल, घुटनों में पवित्र सुतललोक, और जंघाओं में तलातल की कल्पना की गई है I एड़ी के उपर की गांठों में महातल, पंजे में और एडियों में रसातल और तलुओं में पाताल समझना चाहिए i इस प्रकार विराट् पुरुष सर्व लोकमय है i विराट् भगवान् के अंगों में इसप्रकार भी लोकों की कल्पना की जाती है की उनके चरणों में पृथ्वी है, नाभि में भुवर्लोक है और सर में स्वर्लोक है I

(पंचम अध्याय का भाव)

Page 193 of 331

Page 194 of 331

उन्हीं विराट पुरुष के मुख से वाणी और उसके अधिष्ठाता अग्नि, उनकी सात धातुओं से गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्निक्, बृहती, पङ्ति और जगती सातों छन्द उनकी सात धातुओं से निकले हैं i

उस विराट् पुरुष की जिव्ह्या से मनुष्यों, पितरों और देवताओं के भोजन करने योग्य अमृतमय अन्न, सभी रस, रसनेन्द्रिय और उनके अधिष्ठाता वरुण देव, नासा छिद्रों से प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान—ये पांच प्राण और वायु, घ्राणेन्द्रिय से अश्विनीकुमार, समस्त औषधियां व सभी गन्ध उत्पन्न हुए i स्वर्ग और सूर्य उनकी नेत्रेन्द्रिय तथा नेत्र-गोलक बने i उनके कानों से दिशाएँ और तीर्थ तथा श्रोत्रेन्द्रिय से आकाश और शब्द निकले, त्वचा से यज्ञ, स्पर्श और वायु; रोम से उद्भिज पदार्थ, केश, दाढ़ी-मूंछ और नखों से मेघ, बिजली, शिला एवं लोहा आदि धातुएं, भुजाओं से संसार के रक्षक लोकपाल प्रकट हुए i उनका चलना-फिरना भू: भुव: स्व: --- तीनों लोकों का आश्रय है i विराट् पुरुष का लिङ्ग जल,वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापति का आधार है, उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित आनन्द का उद्गम है i विराट् पुरुष की पायु-इन्द्रिय यम, मित्र और मलत्याग का तथा गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरक का उत्पत्ति स्थान है i पीठ से पराजय, अधर्म और अज्ञान, नदियों से नद-नदी हड्डियों से पर्वतों का निर्माण हुआ है i उनके उदर में मूल प्रकृति, रस नाम की धातु तथा समुद्र,

Page 194 of 331

समस्त प्राणी और उनकी मृत्य समाई हुई हैi उनका हृदय ही मन की जन्म भूमि है i यहां विज्ञजन यह सुचारू रूप से जान लें i यहां स्वयं ब्रह्मा जी द्वारा नारद जी को किये गये उपदेश के अनुसार ब्रह्मा जी ने नारद जी जो बताया कि हम, तुम,धर्म, सनकादि, शंकर, विज्ञान, और अन्त:करण—सबके सब उनके चित्त में आश्रित हैं ii कहां तक गिनाये जाएँ--- यहां तक कि मैं, तुम, सनकादि, शंकर, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग,रेंगनेवाले जन्तु, गन्धर्व,अप्सरायें, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, और भी नाना प्रकार के जीव—जो आकाश, जल या स्थल में रहते हैं---ग्रह-नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे), तारे, बिजलीऔर बादल—ये सब-के-सब विराट् पुरुष ही हैं i यह सम्पूर्ण विश्व—जो कुछ भी था, है या होगा---सबको वह घेरे हुए है और उसके अंदर यह विश्व उसके केवल दस अंगुल (ब्रह्माण्ड के सात आवरणों का वर्णन करते हुए वेदान्त प्रक्रिया में ऐसा माना है कि—पृथ्वी से दस गुणा जल है, जल दस गुणा अग्नि, अग्नि से दस गुणा वायु, वायु से दस गुणा आकाश, आकाश से दस गुणा अहंकार, अहंकार से दस गुणा महत्तत्व और महत्तत्व से दस गुणी मूल प्रकृति है i वह प्रकृति भगवान् के केवल एक पाद में है i इसप्रकार भगवान् की महत्ता प्रकट की गयी है i यह दशांगुल-न्याय कहलाता है i) परिमाण में ही स्थित है i जैसे सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-

Page 195 of 331

Page 196 of 331

भीतर—सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है I जो कुछ मनुष्य की क्रिया और संकल्प से बनता है, उससे

वह परे है और अमृत एवं अभयपद अर्थात मोक्ष का स्वामी हैI

यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमा का पार नहीं पा सकता I सम्पूर्ण लोक भगवान् एक पादमात्र (अंशमात्र) हैं तथा उनके अंशमात्र लोकों में समस्त प्राणी निवास करते हैं I भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के ऊपर महर्लोक है i उसके भी ऊपर जन, तप और सत्यलोकों में क्रमशः अमृत, क्षोभ एवं अभय का नित्य निवास है I

जन, तप और सत्य—इन तीनों लोकों में ब्रह्मचारी,- वानप्रस्थ एवं सन्यासी निवास करते हैं i दीर्घकालीन ब्रह्मचर्य से रहित गृहस्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के भीतर ही निवास करते हैं i शास्त्रों में दो मार्ग बतलाये गये हैं—एक अविद्यारूप कर्म-मार्ग, जो सकाम पुरुषों के लिए है और दूसरा उपासनारूप विद्या का मार्ग, जो निष्काम उपासकों के लिए है i मनुष्य दोनों में से किसी एक का आश्रय लेकर भो प्राप्त कराने वाले दक्षिण मार्ग से अथवा मोक्ष प्राप्त कराने वाले उत्तरमार्ग से यात्रा करता है; किन्तु पुरुषोत्तम भगवान् दोनों के आधारभूत हैं i जैसे सूर्य अपनी किरणों से सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग रहते हैं, वैसे ही जिन परमात्मा से इस

Page 196 of 331

अंड की और पंचभूत, एकादश इन्द्रिय, एवं गुणमय विराट् की उत्पत्ति हुई है--वे प्रभु भी इन समस्त वस्तुओं के अंदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत हैं I

ब्रह्मा जी ने आगे बताया---जिस समय इस विराट् पुरुष के नाभि-कमल से मेरा जन्म हुआ, उस समय इस पुरुष के अंगों के अतिरिक्त मुझे और कोई भी यज्ञ की सामग्री नहीं मिली i तब मैंने उनके अंगों में ही यज्ञ के पशु, युप (स्तम्भ), कुश, यज्ञभूमि और यज्ञ के योग्य उत्तम काल कल्पना की i यज्ञ के लिए आवश्यक पात्र आदि स्नेहपदार्थ, छ: रस, लोहा, मिटटी, जल, ऋक, यजु:, साम, चातुर्होत्र, यज्ञों के नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओं के नाम, पद्धतिग्रन्थ, संकल्प, तन्त्र (अनुष्ठान की रीति), गति, मति, श्रद्धा, श्रद्धा, प्रायश्चित और समर्पण-यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट् पुरुष के अंगों से ही इकट्ठी की i इसप्रकार विराट् पुरुष के अंगों से ही सारी सामग्री का संग्रह करके मैंने उन्हीं सामग्रियों से उन यज्ञरूप परमात्मा का यज्ञ के द्वारा यजन कियाi भाव या अभाव, कार्य या कारण के रूप में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो भगवान से भिन्न हो। (षष्ठम अध्याय का भाव)

(संक्षिप्त—देवीभागवत के नवम स्कन्ध के द्वितीय एवं तृतीय अध्याय में इसी भाव को कुछ इस प्रकार प्रकट किया गया है):--
Page 197 of 331

Page 198 of 331

आत्मा, आकाश, काल, दिशा, विश्वगोल तथा गोलोकधाम-ये सभी नित्य हैं । कभी इनका अन्त नहीं होता। गोलोकधाम में एक ओर वैकुण्ठ धाम है । नम्र पुरुष वहां जा सकते हैं। ऐसे ही प्रकृति को भी नित्य माना जाता है। यह परब्रह्म की सनातनी लीला है।

जिसप्रकार अग्नि में दाहिका शक्ति, चन्द्रमा एवं कमल में कमनीयता तथा सूर्य में प्रभा सदा वर्तमान रहती है, वैसे ही यह प्रकृति परमात्मा में नित्य विराजमान है । कभी यह उनसे अलग नहीं रह सकती । जैसे स्वर्णकार सुवर्ण के अभाव में कुंडल नहीं तैयार कर सकता था कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा बनाने में असमर्थ है, ठीक उसी प्रकार परमात्मा को यदि प्रकृति का सहयोग न मिले तो वे सृष्टि नहीं कर सकते। जिसके सहारे श्री हरि सदा शक्तिमान बने रहते हैं, वह प्रकृति देवी ही शक्तिस्वरूपा हैं। इस प्रकृति में वाकचातुरी, शक्ति और पराक्रम विद्यमान हैं। परमात्मा में भी ये इन गुणों का सन्निवेश करा देती हैं। अतएव इसे 'शक्ति' देवी कहते हैं । ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश, बल और ऐश्वर्य से परिपूर्ण होने के कारण इसका नाम भगवती शक्ति हुआ है। यह ऐश्वर्यमयी देवी कभी तिरोहित नहीं होती । परमात्मा सदा इस भगवती प्रकृति के साथ विराजमान रहते हैं । अतएव इन्हें भी भगवान की उपाधि सुलभ है । ये सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र प्रभु साकार और निराकार भी हैं । इनका निराकार रूप परम् तेजोमय है । योगी पुरुष सदा उसका ध्यान करते हैं;

Page 198 of 331

Page 199 of 331

साथ ही कहते हैं कि परब्रह्म और ईश्वर एक हैं। जिनका विग्रह परम आनन्दमय है । इनको कोई नहीं देख पाता और ये सबको देखते हैं। ये सर्वज्ञ, सर्वकारण, सर्वदा, और सर्वरूप हैं। ये परम् तेजस्वी ब्रह्म परम तेजोमय मण्डल के मध्य भाग में विराजते हैं, ये स्वेच्छामय, सर्वरूप, और सम्पूर्ण कारणों के भी कारण हैं ।

जब इन्हें साकाररूप से प्रकट होने की इच्छा
हुई, तब इन्होंने अत्यंत सुंदर एवं मन को मुग्ध कर देने वाला दिव्य-रूप प्रकट कर दिया । ये परम मनोहर प्रभु सबके आश्रय, सबके स्वामी, सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त एवं सर्वव्यापी पूर्णपुरुष हैं । समस्त ऐश्वर्य प्रदान करना इनका स्वभाव ही है । ये परम स्वतन्त्र एवं सम्पूर्ण मङ्गल के भण्डार हैं। इन्हें 'सिद्धि', 'सिद्धेश', 'सिद्धिकारक' तथा 'परिपूर्णतम ब्रह्म' कहा जाता है । वे ही ये आत्मा परब्रह्म श्रीकृष्ण कहलाते हैं ।

'कृषि' तद्भक्तिपरक है और 'न' का अर्थ 'तददास्य'। अतः भक्ति और दास्यभाव देने की जिनमें योग्यता है, वे 'कृष्ण' कहलाते हैं।

'कृषि' सर्वार्थवाचक है। 'न' से बीज अर्थ की उपलब्धि होती है । अतः इनको आदिसृष्टा मानते हैं। ये अकेले ही सृष्टि करने के विचार में थे । इन्हीं के अंश काल ने इनको इस कार्य में उन्मुख कर रखा था

Page 199 of 331

Page 200 of 331

। तब इन स्वेच्छामय परम प्रभु ने अपनी रुचि अनुसार विग्रह को दो भागों में विभाजित कर दिया । इनके वामांश भाग को 'स्त्री' कहा गया और 'दक्षिणांश' भाग को 'पुरूष'।

उन दोनों दिव्य विभूतियों में रास आरम्भ हो
गया । जिससे परम पुरुष में तेज और परम शक्ति के प्रस्वेद (पसीने) से वह समस्त विश्वगोलक बन गया, जिसके आश्रय से सारा जगत वर्तमान है । संसार में जितने भी सजीव प्राणी हैं, उन सबके भीतर इस वायु का निवास है । फिर वायु मूर्तिमान हो गया । उसके वामांग से स्त्री प्रकट हो गयी । उनके प्राण, अपान, समान, उदान, और व्यान, पांच पुत्र हुए । ये वायु--पांच प्राण हुए और पसीने के रूप में जो जल बहा था, वही जल के अधिष्ठाता वरुण देव हो गये ।

उस समय से परम पुरुष श्रीकृष्ण की वह चिन्मयी शक्ति गर्भ स्थिति का अनुभव करने लगी । उसने सुवर्ण के समान प्रकाशमान बालक उत्पन्न किया । जिसमें विश्व को धारण करने की समुचित योग्यता थी, किन्तु उस देवी ने उस बालक को ब्रह्माण्ड-गोलक के अथाह जल में छोड़ दिया । इसने बच्चे को त्याग दिया-- यह देख कर देवेश्वर श्रीकृष्ण ने तुरंत उस देवी से कहा--'अरी कोपशीले! तूने यह जो बच्चे का त्याग कर दिया है, यह बड़ा घृणित कर्म है। इसके फलस्वरूप तू आज से सन्तानहीना हो जा। यही नहीं, किन्तु तेरे अंश से जो-जो दिव्य स्त्रियां होंगी, वे सभी तेरे

Page 200 of 331

Page 201 of 331

समान ही नूतन तारुण्य से सम्पन्न रहने पर भी सन्तान का मुख नहीं देख सकेंगी।'

इतने में उस देवी की जीभ के अग्रभाग से एक मनोहर कन्या प्रकट हुई। वह शुक्लवर्णा, श्वेतवस्त्रा वीणा और पुस्तक धारण किये हुए थी।

कुछ समय बीतने पर वह मूलप्रकृति देवी दो रूपों में प्रकट हुई। आधे वामांग से 'कमला' का प्रादुर्भाव हुआ और दाहिने से 'राधिका' का । उसी समय श्रीकृष्ण भी दो रूप हो गए। आधे दाहिने अंग से स्वयं 'द्विभुज' विराजमान रहे और बायें अंग से चार भुजा वाले विष्णु का आविर्भाव हो गया। तब श्रीकृष्ण ने सरस्वती से कहा---'देवी! तुम विष्णु की प्रिया बन जाओ । मानिनी राधा यहाँ रहेंगी । तुम्हारा परम कल्याण होगा ।' इसी

प्रकार लक्ष्मी को नारायण को दे दिया ।

फिर श्री विष्णु उन सरस्वती और लक्ष्मी दोनों देवियों के साथ वैकुण्ठ पधारे । मूल प्रकृतिरूपा राधा के अंश से प्रकट होने के कारण वे देवियां भी सन्तान प्रसव करने में असमर्थ रहीं ।

फिर नारायण के अंग से चार भुजा वाले अनेक पार्षद हुए। सभी पार्षद गुण, तेज, रूप और अवस्था में श्रीहरि के समान थे। लक्ष्मी के अंग से उन्हीं के जैसे लक्षणों से सम्पन्न करोडों दासियाँ उत्पन्न हो गयीं ।

Page 201 of 331

इसके बाद गोलोकेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के रोमकूप से असंख्य गोप प्रकट हो गये । अवस्था(आयु), तेज, रूप, गुण, बल, और पराक्रम में वे सभी श्रीकृष्ण के समान ही प्रतीत होते थे । उन गोपों को परम् प्रभु श्रीकृष्ण ने अपना पार्षद बना लिया । ऐसे ही श्रीराधा के रोमकूपों से बहुत सी गोपकन्याएँ निकल आयीं । वे सभी राधा के समान ही जान पड़ती थीं । उन कन्याओं को राधा ने अपनी दासी बना लिया । परम् पुरुष के शाप से अनपत्य-दोष तो उनका चिरस्थायी बन ही गया था ।

सहसा श्रीकृष्ण की उपासना करने वाली देवी दुर्गा का आविर्भाव हुआ । ये दुर्गा सनातनी एवं भगवान विष्णु की माया हैं। इन्हें नारायणी, ईशानी और सर्वशक्ति-स्वरूपिणी कहा जाता है । ये परमात्मा श्रीकृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं । सम्पूर्ण देवियां इन्हीं से प्रकट होती हैं । अतएव इन ईश्वरी को मूलप्रकृति कहते हैं । इनमें कोई भी अंश अधूरा नहीं है । इन तेजस्वरूपिणी देवी में तीनों गुण विद्यमान हैं । इनका वर्ण तपाये हुए स्वर्ण के समान है । करोडों सूर्य की चमक के समान इनकी प्रतिभा है, ये हजारों भुजाओं से सुशोभित हैं । अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को हाथ में लिये रहती हैं । इनके तीन नेत्र हैं । सम्पूर्ण स्त्रियां इनके अंश की कला से उत्पन्न हैं । इनकी माया जगत के समस्त प्राणियों को मोहित करने में समर्थ है । गृहस्थ-

Page 202 of 331

कामी पुरुषों को ये सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। मुमुक्षुजनों को मुक्ति प्रदान करना और सुख चाहने वालों को सुखी बनाना इनका स्वभाव है । ये स्वर्ग में 'स्वर्गलक्ष्मी' और गृहस्थों के घर 'गृहलक्ष्मी' के रूप में विराजती हैं । तपस्वियों के पास तपस्यारूप से, राजाओं के यहां श्रीरूप से, अग्नि में दाहिका रूप से, सूर्य में प्रभारूप से तथा चन्द्रमा एवं कमल में शोभा रूप से इन्हीं की शक्ति शोभा पा रही है । सर्वशक्तिस्वरूपा ये देवी परमात्मा श्रीकृष्ण के पास विराजमान रहती हैं। इनका सहयोग पाकर आत्मा में कुछ करने की योग्यता प्राप्त होती है । इन्हीं से जगत शक्तिमान माना जाता है । इनके बिना प्राणी जीते हुए भी मृतक के समान हैं। स्थिति, बुद्धि, फल, क्षुधा, पिपासा, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति और कान्ति आदि सभी इन सनातनी देवी संसाररूपी वृक्ष के लिये बीजस्वरूपा दुर्गा के ही रूप हैं ।

ये देवी सर्वेश श्रीकृष्ण की स्तुति करके उनके सामने विराजमान हुई। राधिकेश्वर श्रीकृष्ण ने इन्हें एक रत्नमय सिंहासन प्रदान किया । इतने में ब्रह्मा अपनी शक्ति के साथ वहां पधारे । विष्णु के नाभिकमल से उनका आविर्भाव हुआ था ।

वे भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे । उनकी शक्ति सर्वकारण श्रीकृष्ण की स्तुति करके पतिदेव
Page 203 of 331

के साथ श्रीकृष्ण के सामने रत्नमय सिंहासन पर प्रसन्नता पूर्वक बैठ गई । इसी समय भगवान श्रीकृष्ण के दो रूप हो गए । उनका आधा बायां अंग महादेव के रूप में परिणत हो गया । दक्षिण अंग से गोपिपति श्रीकृष्ण रह गये। वे बाघम्बर पहने हुए थे । उनकी भुजाएं पट्टिश और त्रिशूल से सुशोभित थीं । वे शरीर में भस्म लगाये हुए थे, सिर पर जटाओं का भार, मस्तक पर चन्द्रमा छवि बढ़ा रहा था। वे अपने पांच मुखों से ब्रह्म-ज्योति:स्वरूप सनातन श्रीकृष्ण के नाम का जप कर रहे थे ।

श्रीकृष्ण सत्य स्वरूप, परमात्मा एवं ईश्वर हैं । ये कारणों के कारण, सम्पूर्ण मंगलों के मङ्गल, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय को हरने वाले और मृत्यु के भी मृत्यु हैं । अतएव इन्हें मृत्युंजय भी कहा जाता है । महाभाग शंकर इनकी स्तुति करके सामने रखे हुए रत्नमय सिंहासन पर विराज गये । (अध्याय 2) [इससे एक बात तो स्पष्ट अनुभव होती है आत्म शक्ति (ब्रह्म) के साथ एक प्राण शक्ति और एक चेतना शक्ति (बुद्धि) का संयोग ही सृष्टि का करक है)

तदनन्तर वह बालक, जो केवल अण्डाकार था, ब्रह्मा की आयुपर्यन्त समय तक ब्रह्माण्ड गोलक के जल में रहा । फिर समय पूरा हो जाने पर वह सहसा दो रूपों में प्रकट हो गया । एक अण्डाकार ही रहा और एक शिशु के रूप में परिणत हो गया । उस शिशु की ऐसी कान्ति थी, मानो सौ करोड़ सूर्य एक साथ प्रकाशित हो रहे हों ।
Page 204 of 331

Page 205 of 331

माता का दूध न मिलने के कारण भूख से पीड़ित होकर वह कुछ समय तक रोता रहा । माता-पिता उसे त्याग चुके थे । वह निराश्रय होकर जल के अंदर समय व्यतीत कर रहा था। जो असंख्य ब्रह्माण्ड का स्वामी है, उसी ने अनाथ की भांति, आश्रय पाने की इच्छा से ऊपर की ओर दृष्टि दौड़ायी । उसकी आकृति स्थूल से भी स्थूल थी । अतएव उसका नाम महाविराट पड़ा। जैसे परमाणु सूक्ष्मतम होता है, वैसे ही वह अत्यंत स्थूलतम था । वह बालक तेजमें परमात्मा श्रीकृष्ण के अंश की बराबरी कर रहा था । परमात्मास्वरूपा प्रकृतिसंज्ञक राधा से उत्पन्न यह महान विराट बालक सम्पूर्ण विश्व का आधार है। वही 'महाविष्णु' कहलाता है । इसके प्रत्येक रोमकूप में जितने विश्व हैं, उन सबकी संख्या का पता लगाना श्रीकृष्ण के लिये भी असम्भव है । वे भी उन्हें स्पष्ट बता नहीं सकते । जैसे जगत के रजःकण को कभी नहीं गिना जा सकता, उसी प्रकार इस शिशु के शरीर में कितने ब्रह्मा और विष्णु आदि हैं---यह नहीं बताया जा सकता । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव विद्यमान हैं । पाताल से लेकर ब्रह्मलोक तक अनगिनत ब्रह्माण्ड बताये गये हैं । अतः उनकी संख्या कैसे निश्चित की जा सकती है? ऊपर वैकुण्ठलोक है । यह ब्रह्माण्ड से बाहर है । इसके ऊपर पचास करोड़ योजन के विस्तार में गोलोकधाम है । श्रीकृष्ण के समान ही यह लोक भी नित्य और और चिन्मय सत्यस्वरुप है । पृथ्वी सात

Page 205 of 331

Page 206 of 331

द्वीपों से सुशोभित है । सात समुद्र इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उनचास छोटे छोटे द्वीप हैं । पर्वतों और वनों की तो कोई संख्या ही नहीं है । सबसे ऊपर सात स्वर्गलोक हैं। ब्रह्मलोक भी इन्हींमें सम्मिलित है । नीचे सात पाताल हैं । यही ब्रह्माण्ड का परिचय है I
पृथ्वी से ऊपर भूर्लोक, उससे
परे भुवर्लोक, भुवर्लोक से परे स्वर्लोक, उससे परे जनलोक, जनलोक से परे तपोलोक, तपोलोक से परे सत्यलोक और सत्यलोक से परे ब्रह्मलोक है । ब्रह्मलोक ऐसा प्रकाशमान है, मानो तपाया हुआ सोना चमक रहा हो । वे भी कृत्रिम हैं। कुछ तो ब्रह्माण्ड के भीतर हैं और कुछ बाहर । ब्रह्माण्ड के नष्ट होने पर ये सभी नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि पानी के बुलबुले की भांति यह सारा जगत अनित्य है । गोलोक और वैकुण्ठलोक को नित्य, अविनाशी एवं अकृत्रिम कहा गया है। उस विराटमय बालक के प्रत्येक रोमकूप में असंख्य ब्रह्माण्ड निश्चितरूप से विराजमान हैं । एक-एक ब्रह्माण्ड में अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं । देवताओं की संख्या तीन करोड़ है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं । दिशाओं के स्वामी, दिशाओं की रक्षा करनेवाले तथा ग्रह एवं नक्षत्र--इन सभी में सम्मिलित हैं । भूमण्डल पर चार प्रकार नीचे नाग लोक है। चर और अचर सभी प्रकार के प्राणी उस भूमण्डल पर निवास करते हैं ।

Page 206 of 331

Page 207 of 331

तदनन्तर वह विरातस्वरूप बालक बार-बार ऊपर दृष्टि दौड़ाने लगा । वह गोलाकार पिण्ड बिल्कुल खाली था । दूसरी कोई भी वस्तु वहां नहीं थी । उसके मन में चिन्ता उत्पन्न हो गयी। भूख से आतुर हो कर वह बालक बार-बार रुदन करने लगा। फिर जब उसे ज्ञान हुआ, तब उसने परम् पुरुष श्रीकृष्ण का ध्यान किया। तब वहीं उसे सनातन ब्रह्मज्योति के दर्शन प्राप्त हुए । वे ज्योतिर्मय श्रीकृष्ण नवीन मेघ के समान श्याम थे। उनके दो भुजायें थीं । उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था। उनके हाथों में मुरली शोभा पा रही थी । मुखमंडल मुस्कान से भरा था । भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये वे कुछ व्यस्त-से जान पड़ते थे । पिता परमेश्वर को देखकर वह बालक सन्तुष्ट होकर हंस पड़ा फिर तो वर के अधिदेवता श्रीकृष्ण ने समयानुसार उसे वर दिया, कहा-'बेटा! तुम मेरे समान ज्ञानी बन जाओ। भूख और प्यास तुम्हारे पास न आ सके। प्रलयपर्यन्त यह असंख्य ब्रह्माण्ड तुम पर अवलम्बित रहे। तुम निष्कामी, निर्भय और सबके लिये वरदाता बन जाओ। जरा, मृत्यु, रोग और शोक आदि तुम्हें कष्ट न पहुंचा सकें।' यों कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने बालक के कान में तीन बार षडाक्षर महामन्त्र का उच्चारण किया। यह उत्तम मन्त्र वेद का प्रधान अंग है । आदि में 'ॐ' का स्थान है । बीच में चतुर्थी विभक्ति के साथ 'कृष्ण' ये दो अक्षर हैं। अन्त में अग्नि पत्नी

Page 207 of 331

Page 208 of 331

'स्वाहा' यह मन्त्र का स्वरूप है। इस मन्त्र का जप करने से सम्पूर्ण

विघ्न टल जाते हैं।

मंत्रोपदेश के पश्चात परम् प्रभु श्रीकृष्ण ने उस बालक के भोजन की जो व्यवस्था इसप्रकार की कि विश्व में मनुष्य जो कुछ भी नैवेद्य भगवान को अर्पण करते हैं, उसमें से सोलहवाँ भाग विष्णु को मिलता है और पन्द्रह भाग इस बालक के लिए निश्चित है; क्योंकि यह बालक स्वयं परिपूर्णतम श्रीकृष्ण का विराटरूप है ।

सर्वव्यापी श्रीकृष्ण ने उस उत्तम मन्त्र का ज्ञान प्राप्त कराने के पश्चात पुनः उस विराटमय बालक से कहा--'पुत्र! तुम्हें इसके सिवा दूसरा कौनसा वर अभीष्ट है, वह भी मुझे बताओ । मैं देने के लिये सहर्ष तैयार हूं ।' उस समय विराट व्यापक प्रभु बालकरूप से विराजमान था । भगवान श्रीकृष्ण की बात सुनकर उसने उनसे समयोचित बात कही ।

बालक ने कहा---प्रभो! आपके चरणकमलों में मेरी अविचल भक्ति हो--मैं यही वर चाहता हूं । मेरी आयु चाहे एक क्षण हो अथवा दीर्घकाल की; परन्तु मैं जबतक जिऊँ, तबतक आपमें मेरी अटल श्रद्धा बनी रहे । इस लोक में जो पुरूष आपका भक्त है, उसे सदा जीवन्मुक्त समझना चाहिये । आपकी भक्ति से विमुख मूर्ख व्यक्ति जीते हुए भी मुर्दा माना जाता है । जिस अज्ञानीजन के हृदय में आपकी भक्ति नहीं है,

Page 208 of 331

Page 209 of 331

उसे जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास, पुण्य अथवा तीर्थ से वन से क्या लाभ? उसका जीवन ही निष्फल है । प्रभो! जबतक शरीर में आत्मा रहता है, तबतक शक्तियाँ साथ रहती हैं । आत्मा के चले जाने के पश्चात सम्पूर्ण स्वतन्त्र शक्तियों की भी सत्ता वहाँ नहीं रह जाती। महाभाग! प्रकृति से परे वे सर्वात्मा आप ही हैं । आप स्वेच्छा मय सनातन

ब्रह्मज्योति-स्वरूप परमात्मा सबके आदि पुरूष हैं ।

इस प्रकार अपने हृदय का उद्गार प्रकट करके वह बालक चुप हो गया । तब भगवान श्रीकृष्ण कानों को सुहावनी लगने वाली मधुर वाणी में उसका उत्तर देने लगे ।

वत्स! मेरी ही भांति तुम भी बहुत समय तक अत्यंत स्थिर होकर विराजमान रहो। असंख्य ब्रह्माओं के जीवन समाप्त हो जाने पर भी तुम्हरा नाश नहीं होगा । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अपने स्वल्प अंश से तुम विराजमान रहोगे । तुम्हारे नाभिकमल से विश्वस्रष्टा ब्रह्मा प्रकट होंगे । ब्रह्मा के ललाट से ग्यारह रुद्रों का आविर्भाव होगा । शिव के अंश वे रुद्र सृष्टि के संहार की व्यवस्था करेंगे । उन ग्यारहों रुद्रों में 'कालाग्नि' नाम से जो प्रसिद्ध हैं, वे ही रुद्र विश्व के संहारक होंगे । विष्णु विश्व की रक्षा करने के लिए रुद्र के अंश से प्रकट होंगे । मेरे वर के प्रभाव से

Page 209 of 331

Page 210 of 331

तुम्हारे हृदय में सदा मेरी भक्ति बनी रहेगी । तुम मेरे परमसुन्दर स्वरूप को ध्यान के द्वारा निरन्तर देख सकोगे, यह निश्चित है । तुम्हारी कमनीया माता मेरे वक्षःस्थल पर विराजमान रहेगी । उसकी झाँकी तुम प्राप्त कर सकोगे। वत्स! अब मैं अपने गोलक में जाता हूं । तुम यहीं ठहरो ।

इस प्रकार उस बालक से कहकर भगवान श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये । उन्हें गोलोक जाते क्या देर? वहां पहुंचकर उन्होंने टूर सृष्टि की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्मा तथा संहारकार्य में कुशल रुद्र को आज्ञा दी ।

श्रीकृष्ण ने कहा--वत्स ! सृष्टि रचने के लिये जाओ । विधे! मेरी बात सुनो । महाविराट के रोमकूपों में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। उनमें से जो एक छोटा- ब्रह्माण्ड है, उसमें विराजनेवाले विराटपुरुष की नाभि से जो कमल निकला है, उसपर तुम प्रकट हो जाओ । फिर रुद्र को संकेत करके कहा--'महाभाग महादेव! तुम मेरे परम् प्रिय हो । अपने अंश से जगत का संहार करने के लिए ब्रह्मा के ललाट से प्रकट हो जाओ । स्वयं दीर्घकाल तक तपस्या करना ।'

जगतपति भगवान श्रीकृष्ण यों कहकर चुप हो गये । तब ब्रह्मा और कल्याणकारी शिव--दोनों महानुभाव उन्हें प्रणाम करके विदा हो गये । महाविराट पुरूष के रोमकूप में अब भी ब्रह्माण्डगोलक का जल विराजमान है । उसमें एक साधारण विराटपुरुष रहते

Page 210 of 331

Page 211 of 331

हैं । ये उन महाविराट के अंश हैं। इनकी सदा युवा अवस्था रहती है । इनका श्याम रंग का विग्रह है। वे पीताम्बर पहनते हैं। जलरूपी शय्या पर सोये रहते हैं। इनका मुखमंडल मुस्कान से भरा है। इन प्रसन्नमुख विश्वव्यापी प्रभु को 'जनार्दन' कहा जाता है । इन्हीं के नाभिकमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। तदनन्तर पता लगाने के विचार से उस कमलदण्ड पर एक लाख युगों तक चक्कर लगाया। नारद को उपदेश करते हुए भगवान नारायण--इतना प्रयास करने पर भी नाभि से उत्पन्न हुए कमलदण्ड के अंत तक जाने में तुम्हारे पिता सफल न हो सके। तब उनके मन पर चिंता घिर आयी। वे पुनः अपने स्थान पर आकर भगवान श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करने लगे । उस स्थिति में उन्हें दिव्य दृष्टि के द्वारा विराटपुरूष के कुछ दर्शन प्राप्त हुए। ब्रह्माण्डगोलक के भीतर जलमय शैया पर वे पुरुष शयन कर रहे थे । फिर जिनके रोमकूप से वह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ था, उन परम् प्रभु भगवान श्रीकृष्ण के भी दर्शन हुए । गोपों और गोपियों से सुशोभित गोलोकधाम को भी देखने में वे सफलता पा गये । फिर तो श्रीकृष्ण की स्तुति करके उन्होंने उनसे वरदान पाकर सृष्टि का कार्य आरम्भ कर दिया। सर्वप्रथम ब्रह्मा से सनकादि चार मानस पुत्र हुए। फिर शिव की सुप्रसिद्ध ग्यारह कलाएं रुद्ररूप से प्रकट हुईं । फिर जगत की रक्षा के व्यवस्थापक श्रीविष्णु प्रकट हुए। उस समय वे

Page 211 of 331

विराट पुरूष के वामभाग से प्रकट होकर श्वेतद्वीप में विराजमान थे। चार भुजाओं से उनकी अनुपम शोभा हो रही थी। यों विराटपुरुष के नाभिकमल पर प्रकट होकर ब्रह्मा ने विश्व की रचना की । स्वर्ग, मर्त्य, और पाताल--त्रिलोकी के सम्पूर्ण चराचर प्राणियों का उन्होंने सृजन किया ।
इसप्रकार महाविराटपुरूष के
सम्पूर्ण रोमकूपों में एक-एक करके अनेक ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक विराट पुरुष और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रभृति सहयोगी देवता रहकर कार्य की व्यवस्था करते हैं। (अध्याय 3)

विशेष:--(श्रीमद्भागवत --- महापुराण तृतीय स्कन्ध विराट शरीर की उत्पत्ति नामक छठे अध्याय में इस भाव का कुछ इस प्रकार वर्णन मिलता है)

उसी सर्व शक्तिमान भगवान ने जब देखा की आपस में संगठित न होने के कारण ये मेरी महत्तत्व आदि शक्तियाँ विश्व-रचना के कार्य में असमर्थ हो रही हैं तब स्वयं अपनी कालशक्ति अर्थात समयावधि (सृष्टि रचना काल) को स्वीकार करके एक साथ ही महत्तत्व, अहंकार, पंचभूत, पंचतन्मात्रा और मन सहित अर्थात पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, और मन इन तेईस तत्त्वों के समुदाय में प्रविष्ट हो गये तथा उनमें प्रविष्ट हो कर जीवों के सोये अदृष्ट जिसे हम भाग्य भी कहते हैं उसे जाग्रत करके परस्पर विलग हुए उस
Page 212 of 331

तत्त्वसमूह को अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा आपस में मिला दिया। इसी क्रिया शक्ति को जीवनी शक्तिं, शक्ति, सामर्थ्य, क्षमता, आत्मशक्ति, कालशक्ति, रचनाशक्ति, प्रेरणाशक्ति आदि नामों से जाना जाता है। इन अदृष्ट के कार्योन्मुख करके उन तेईस तत्त्वों के समूह से भगवान् की प्रेरणा से इस समूह के अंश से अधिपुरुष (ब्रह्म अंश)---विराट पुरुष उत्पन्न हुआ। अर्थात जब भगवान ने अंश-रूप से अपने उस शरीर में प्रवेश किया, तब वह विश्व रचना करने वाला महत्तत्वादि समुदाय एक-दूसरे से मिलकर परिणाम को प्राप्त हुआ। यह तत्त्वों का परिणाम ही विराट पुरुष है, जिसमें चराचर जगत विद्यमान है। (श्रीमद्भागवत महापुराण तृतीय स्कन्ध विराट शरीर की उत्पत्ति नामक छठे अध्याय से श्लोक 1-5 से उद्धृत भाव)

यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव, होने के कारण समस्त जीवों का आत्मा, जीवरूप होने के कारण परमात्मा का अंश और प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण भगवान का आदि-- अवतार है। यह सम्पूर्ण भूत-समुदाय इसी में प्रकाशित होता है। (श्लोक -8 का भाव)

फिर विश्व की रचना करने वाले मह्त्तत्वादि के अधिपति श्रीभगवान ने उस विराट पुरुष की वृत्तियों (कार्य-प्रणाली, स्वभाव आदि) को जगाने के लिये अपने चेतनरूप तेज से उस विराट पुरुष को प्रकाशित किया, उसे जगाया । जिससे उस विराट पुरुष के मुख प्रकट हुआ; उसमें वाक्-इंद्री के
Page 213 of 331

Page 214 of 331

अधिष्ठाता लोकपाल अग्नि अपने अंश वागिन्द्रिय सहित प्रविष्ट हो गया, जिससे यह जीव बोलता है । फिर उसके तालू उत्पन्न हुआ, उसमें वरुण रसनेन्द्रिय सहित स्थित हुआ, जिससे जीव रस ग्रहण करता है। इसके पश्चात नथुने प्रकट हुए; उनमें दोनों अश्विनीकुमार अपने घ्राणेन्द्रिय सहित प्रविष्ट हुए, जिससे जीव गन्ध ग्रहण करता है । इसी आँखें प्रकट हुई, उनमें अपने अंश नेत्रेन्द्रिय सहित सूर्य ने प्रवेश किया, जिससे पुरुष को विविध रूपों का ज्ञान होता है। फिर उस विराट् विग्रह में त्वचा उत्पन्न हुई, उसमें त्वगिन्द्रिय के साथ वायु स्थित हुआ, इस त्वगिन्द्रिय से जीव स्पर्श का अनुभव करता है। फिर कर्ण छिद्र प्रकट होने पर श्रवणेन्द्रिय सहित दिशाओं ने प्रवेश किया, जिससे जीव को शब्द का का ज्ञान होता है । फिर चर्म और उस चर्म में अपने रोमों के सहित ओषधियाँ स्थित हुई, जिन रोमों से जीव खुजली आदि अनुभव करता है। ये सब होने पर अब उसके लिंग उत्पन्न हुआ और इस आश्रय में प्रजापति ने अपने अंश वीर्य के सहित प्रवेश किया, फिर गुदा प्रकट हुई, उसमें मित्र ने अपने अंश पायु-इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया, इससे जीव मल त्याग करता है । इसके पश्चात हाथ प्रकट हुए; उनमें देवराज इन्द्र ने अपनी ग्रहण-त्याग-रूपा शक्ति सहित प्रवेश किया, जिससे जीव जीविका प्राप्त करता है । जब इसके चरण उत्पन्न हुए, तब उनमें अपनी शक्ति गति के सहित लोकेश्वर विष्णु ने

Page 214 of 331

Page 215 of 331

प्रवेश किया—इस गति शक्ति द्वारा जीव अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंचता है । फिर इसके बुद्धि उत्पन्न हुई; अपने इस स्थान में अपने अंश बुद्धि शक्ति के साथ वाक्पति ब्रह्मा ने प्रवेश किया, इस बुद्धिशक्ति से जीव ज्ञातव्य विषयों को जान सकता है। फिर इसमें हृदय प्रकट हुआ; उसमें अपने अंश सहित चन्द्रमा स्थित हुआ। इस मन:शक्ति के द्वारा जीव संकल्प-विकल्पादि रूप विकारों को प्राप्त होता है। तत्पश्चात विराट्-पुरुष में अहंकार उत्पन्न हुआ; इस अपने आश्रय में क्रियाशक्ति सहित अभिमान अधिपति रूद्र ने प्रवेश किया। जिससे जीव अपने कर्तव्य को स्वीकार करता है। अब इसमें चित्त प्रकट हुआ और उसमें चित्तशक्ति सहित महत्तत्व (ब्रह्मा) स्थित हुआ; इस शक्ति से जीव विज्ञान (चेतना) को उपलब्ध करता है। इस विराट पुरुष के सिर से स्वर्गलोक, पैरों से पृथ्वी और नाभि से अन्तरिक्ष (आकाश) उत्पन्न हुआ। इनमें क्रमश: सत्व, रज, तम—इन तीन गुणों के परिणाम रूप देवता,मनुष्य, और प्रेतादि देखे जाते हैं। (श्लोक 12 से 27 तक का भाव)।

बृहदारण्यक-उपनिषद में सृष्टि का वर्णन----

प्रथम अध्याय—पहला ब्राह्मण :--(सृष्टि का हय, बाजी, अर्वा, तथा अश्व-रूप में एवं ब्रह्म का मृत्यु रूप में वर्णन)------

Page 215 of 331

ॐ उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः I सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानर: संवत्सर आत्माश्वस्य मेध्यस्य I द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथिवी पाजस्यं दिश: पार्श्वे अवान्तरदिश: पर्शव ऋतवोs ङ्गानि मासाश्चार्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीनि नभो मांसानि I ऊवध्यं सिकताः सिन्धवो गुदा यकृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतयश्च लोमा-न्युद्यन्पूर्वार्धो निम्लोचञ्जघानार्धो यद्विजृम्भते तद्विद्योतते यद्विधूनुते तत्स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वाक् I (श्लोक 1)

उपनिषदों के ऋषि 'ज्ञात' से 'अज्ञात' का वर्णन करते हुए 'पिंड' से 'ब्रह्मांड' का वर्णन किया करते थे—उनकी वर्णनशैली का यह मूलमन्त्र था I उपनिषत्काल में जो यज्ञ होते थे, उन्हें भी वे परमार्थ में ही घटाने का यत्न करते थे I इन्हीं यज्ञों में 'अश्वमेध'-यज्ञ था । जिस प्रकार यज्ञ-मण्डप में ‘अश्वमेध’-यज्ञ हो रहा है, इसीप्रकार मानो इस विशाल ब्रह्माण्ड में भी 'अश्वमेध'-यज्ञ ही रचा जा रहा है, यह सृष्टि-रूप-यज्ञ एक 'विराट्- अश्वमेध'-यज्ञ है। कैसे? ऋषि कहते हैं--

अर्थ-यह सृष्टि ही मानो मेध्य-अश्व है, विराट् अश्व है। इस ‘विराट्-अश्व’ का सिर 'उषा' है, इसकी आंख 'सूर्य' है, इसका प्राण 'वायु' है, इसका खुला
Page 216 of 331

Page 217 of 331

हुआ मुंह 'वैश्वानर-अग्नि' है, इस मेध्य-अश्व का आत्मा 'संवत्सर' है--'समय' है। इसकी पीठ 'द्यु-लोक' है, इसका उदर 'अंतरिक्ष-लोक' है, इसके खुर 'पृथ्वी- लोक' हैं, पासे 'दिशायें' हैं, पसलियां 'अवान्तर-दिशाएं' हैं, अंग 'ऋतुएं' हैं, जोड़ 'मास और अर्धमास' है, स्थिति-स्थान 'अहोरात्र' हैं, अस्थियां 'नक्षत्र' हैं, मांस 'बादल' हैं, पेट में पड़ा आधा- पचा भोजन सिकता-'रेत'--है, अंतड़ियां 'नदियां' हैं, जिगर-फेफड़े 'पहाड़' हैं, लोम 'ओषधि तथा वनस्पतियां' हैं, पूर्वार्ध 'उदीयमान-सूर्य' है, उत्तरार्द्ध 'अस्त होता हुआ सूर्य' है अश्व जैसे जंभाई लेता है, सृष्टि में वह 'चमकना' है, अश्व जैसे शरीर को झाड़ता है, सृष्टि में वह 'कड़कना'है, अश्व जैसे मूत्रोत्सर्ग करता है, सृष्टि में वह 'बरसना' है, अश्व जैसे हिनहिनाता है, सृष्टि में वह 'गरजना', है ।

शङ्कराचार्य इसके विषय में इसप्रकार बताते हैं---

“अश्व के अवयवों में कालादि-दृष्टि”

अर्थ- ॐ उषा (ब्राह्ममुहूर्त) यज्ञसम्बन्धी अश्व का सिर है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, वैश्वानर अग्नि का खुला हुआ मुख है और संवत्सर यज्ञीय अश्व का आत्मा है I द्युलोक उसका पीठ है, अन्तरिक्ष उदर है, पृथिवी पैर रखने का स्थान है, दिशाएं पार्श्वभाग हैं, अवान्तर दिशाएं पसलियां हैं, ऋतुएं अङ्ग हैं, मास और अर्द्धमास पर्व

Page 217 of 331

(सन्धिस्थान) हैं, दिन और रात्रि प्रतिष्ठा (पाद) हैं, नक्षत्र अस्थियां हैं, आकाश (आकाशस्थित मेघ) मांस हैं, बालू ऊवध्य (उदरस्थित अर्धपक्व अन्न) है, नदियां नाडी हैं, पर्वत यकृत् (जिगर) और हृदय मांसखण्ड हैं, औषधि और वनस्पतियां लोम हैं, ऊपर की ओर जाता हुआ सूर्य नाभि से ऊपर का भाग और नीचे की ओर जाता हुआ सूर्य कटि से नीचे का भाग है I उसका जमुहाई लेना बिजली का चमकना है और शरीर हिलाना मेघ का गर्जन है I वह जो मूत्र त्याग करता है वही वर्षा है और वाणी ही उसकी वाणी है I

भाष्य-उषा इति, ब्राह्मो मुहूर्त उषा: I वैशब्द: स्मरणार्थ: प्रसिद्ध कालं स्मारयति I शिर: प्राधान्यात् I शिरश्च प्रधानं शरीरा-वयवानाम् I अश्वस्य मेध्यस्य मेधार्हस्य यज्ञियस्योषाः शिर इति सम्बन्ध: I कर्माङ्गस्य पाशो: संस्कर्तव्यत्वात् कालादिदृष्टयः शिर आदिषु क्षिप्यन्ते I प्राजापत्यत्वं च प्रजापतिदृष्ट्यध्यारोपणात् I काललोकदेवतात्वाध्यारोपणं च प्रजापतित्वकरणं पशोः I एवंरूपो हि प्रजापति:, विष्णुत्वादिकरणमिव प्रतिमादौ I

सूर्यश्चक्षु: शिरसोs नन्तरत्वात् सूर्याधिदैवतत्वाच्च I वात: प्राणो वायुस्वाभाव्यात् I व्यात्तं विवृतं मुखमग्निर्वैश्वानर: । वैश्वानर इत्यग्नेर्विशेषणम् । वैश्वानरो
Page 218 of 331

नामाग्निर्विवृतं मुखमित्यर्थो मुखस्याग्निदैवतत्वात् । संवत्सर आत्मा , संवत्सररो द्वादश -मासत्रयोदशमासो वा , आत्मा शरीरम् । कालावयवानां च संवत्सरः शरीरम् , शरीरं चात्मा “मध्यं ह्येषामङ्गानामात्मा ”

इति श्रुतेः । अश्वस्य मेध्यस्येति सर्वत्रानुषङ्गार्थं पुनर्वचनम् ।

द्यौः पृष्ठमूर्ध्वत्वसामान्यात् । अंतरिक्षमुदरं सुषिरत्व —सामान्यात् । पृथिवी पाजस्यं पादस्यं पाजस्यमिति वर्णव्यत्यायेन , पादासनस्थानमित्यर्थ : । दिशश्चतस्रो ऽपि पार्श्वे पार्श्वेन दिशां सम्बन्धात् । पार्श्वयोर्दिशां च सङ्ख्यावैषम्यादयुक्तमिति चेन्न , सर्वमुखत्वोपपत्तेरश्वस्य पार्श्वाभ्यामेव सर्वदिशां सम्बन्धाददोषः । अवान्तरदिश आग्नेय्याद्याः पर्शव : पार्श्वास्थीनि । ऋतवोऽ ङ्गानि संवत्सरावयवत्वादङ्गसाधर्म्यात् । मासाश्चार्धमासाश्च पर्वाणि सन्धयः सन्धिसामान्यात् । अहोरात्राणि प्रतिष्ठा : । बहुवचनात् प्राजापत्यदैवपित्र्यमानुषाणि , प्रतिष्ठा : पादा : प्रतितिष्ठत्येतैरिति । अहोरात्रैर्हि कालात्मा प्रतितिष्ठत्यश्वश्च पादैः । नक्षत्राण्यस्थीनि शुक्लत्वसामान्यात् । नभो नभ:स्था मेघा अंतरिक्षस्योदरत्वोक्ते :, मांसान्युदकरुधिरसेचनसामान्यात् । उवध्यं

उदरस्थमर्धजीर्णमशनं सिकता विश्लिष्टावयवत्व -
सामान्यात् । सिन्धव : स्यन्दनसामान्या -न्नद्यो
गुदा नाडयो बहुवचनाच्च । यकृच्च क्लोमानश्च
हृदयस्याधस्ता -द्दक्षिणोत्तरौ मांसखण्डौ ।
क्लोमान इति नित्यं बहुवचनमेकस्मि --

न्नेव । पर्वता : काठिन्यादुच्छ्रितत्वाच्च ।
ओषधयश्च क्षुद्रा : स्थावरा वनस्पतयो महान्तो
लोमानि केशाश्च यथासम्भवम् ।

उद्यन्नुद्गच्छन्भवति सविता
आमध्याह्नादश्वस्य पूर्वार्धो
नाभेरूर्ध्वमित्यर्थ : । निम्लोचन्नस्तं
यन्नामध्याह्नाज्जघनार्धो S-परार्ध :
पूर्वापरत्वसाधर्म्यात् । यद्विजृम्भते
गात्राणि विनामयति विक्षिपति तद्विद्योतते
विद्योतनं मुखघनविदारणसामान्यात् । यद्विधूनुते
गात्राणि कम्पयति तत्स्तनयति
गर्जनशब्दसामान्यात् । यन्मेहति मूत्रं
करोत्यश्वस्तद्वर्षति वर्षणं तत्
सेचनसामान्यात् । वागेव शब्द एवास्याश्वस्य
वागिति , नात्र कल्पनेत्यर्थ : ।

अर्थ --‘उषा वा ’ इत्यादि ब्राह्ममुहूर्तका नाम उषा
है । ‘वै ’ शब्द स्मरण कराने के लिये है । यह
प्रसिद्ध काल का स्मरण कराता है । वह प्रसिद्ध काल
उषाकाल प्रधान होने के कारण सिर है । सिर भी शरीर
के अवयवों में प्रधान है । अत: मेध्य —मेधार्ह

Page 221 of 331

(यज्ञार्ह) यानी यज्ञसम्बन्धी अश्व का सिर है— ऐसा इसका अन्वय है I कर्म के अङ्गभूत पशु का संस्कार किया जाना चाहिये, इसलिये उसके सिर आदि में कालादिदृष्टियाँ की जाती हैं I उसमें प्रजापति-दृष्टि का अध्यारोप किया जाता है, इसीसे यह प्राजापत्य (प्रजापति-देवता सम्बन्धी) है I काल, लोक और देवत्व का आरोप करना ही पशु का प्रजापतित्व सम्पादन करना हैI जिसप्रकार प्रतिमादि में विष्णुत्वादि की प्रतिष्ठा की जाती है उसी प्रकार यह उक्तरूप से प्रजापति है I

[जिसप्रकार उषाके अनन्तर सूर्य दिखाई देता है उसीप्रकार] सिर के अनन्तर नेत्र हैं और सूर्य ही नेत्रोंका अभिमानी देव है, इसलिये सूर्य उसका नेत्र है I वायु प्राण है, क्योंकि वह वायुके-से स्वभाव वाला है I वैश्वानर अग्नि व्यात्त यानी खुला हुआ मुख है आई ‘वैश्वानर’ यह अग्नि का विशेषण है I अर्थात् वैश्वानर अग्नि उसका खुला हुआ मुख है, क्योंकि मुख का अधिष्ठातृदेव अग्नि ही

है I संवत्सर आत्मा है, संवत्सर बारह या तेरह महीने का होता है, वह उसका आत्मा यानी शरीर है I काल के अवयवों का संवत्सर ही शरीर है, और “इन सब अङ्गों का मध्यभाग आत्मा है” इस श्रुति के अनुसार शरीर ही आत्मा है I ‘अश्वस्य मेधस्य’ इसकी पुनरुक्ति इसका सबके साथ सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिये है I

Page 221 of 331

Page 222 of 331

ऊर्ध्वत्वमें समानता होने के कारण द्युलोक उसका पृष्ठभाग

है, अवकाश या छिद्ररुपता में समानता होने के कारण अन्तरिक्ष उदर है, पृथिवी पाजस्य—पादस्य यानी पैर रखने का स्थान है I ‘पादस्य’ के वर्ण (द) का [‘व्यत्ययो बहुलम्’ (पा0 सू0 3/1/85) इस सूत्रके अनुसार जकार के रूपमें] व्यत्यय होने से ‘पाजस्य’ हुआ है I चारों दिशाएँ पार्श्वभाग हैं, क्योंकि पार्श्व से दिशाओंका सम्बन्ध है I [यदि कहो कि]]-- पार्श्व और दिशाओं की1 (क्योंकि दिशाएँ चार हैं और पार्श्व केवल दो होते हैं) I संख्या में समानता न होने के कारण ऐसा कहना उचित नहीं है, तो यह ठीक नहीं, क्योंकि अश्वका मुख सभी दिशाओं की ओर हो सकता है, अत: उसके पार्श्वों का सभी दिशाओं से सम्बन्ध होने के कारण इसमें कोई दोष नहीं है I आग्नेयी आदि अवान्तर दिशाएँ पसलियाँ अर्थात् पार्श्वभाग की अस्थियाँ हैं I ऋतुएँ अङ्ग हैं, क्योंकि संवत्सर के अवयव होने के कारण अंगों से उनकी समानता है I मास और अर्धमास पर्व—सन्धियाँ हैं; दिन और रात्रि प्रतिष्ठा है I ‘अहोरात्राणि’ इस पद में बहुवचन होने के कारण प्रजापति, देवता, पितृगण और मनुष्य सभी के दिन-रात 1 [प्रजापति का एक अहोरात्र दो सहस्र युग का होता है, देवताओं का अहोरात्र उत्तरायण और दक्षिणायनरूप है, पितृगण का अहोरात्र शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष है तथा मनुष्य का अहोरात्र एक दिन और एक रात्रि है] I

Page 222 of 331

Page 223 of 331

प्रतिष्ठा अर्थात् पाद हैं, क्योंकि इनसे वह प्रतिष्ठित होता है I और अश्व पैरों के द्वारा I

शुक्लत्व में समानता होने के कारण नक्षत्र अस्थियाँ हैं I आकाश अर्थात् आकाशस्थ मेघ, क्योंकि अन्तरिक्ष (आकाश) की उदररुपता कही जा चुकी है, मांस हैं, क्योंकि जलरूप रुधिर बरसानेमें उनकी मांस से समानता है I अवयवों से बिलग-बिलग रहने में समानता होने के कारण बालू उवध्य उदरस्थित अर्धजीर्ण अर्थात् आधा पचा हुआ या आधा पका हुआ अन्न है I सिन्धु अर्थात् स्यन्दन (बहने) में समानता होने के कारण नदियां गुदा— नाड़ियाँ हैं, क्योंकि यहाँ ‘सिन्धव:’ और ‘गुदा:’ दोनों ही पद बहुवचनान्त हैं1(अतएव यहाँ ‘गुदा’ शब्द लोकप्रसिद्ध नितम्ब-अर्थ का बोधक नहीं हो सकता) कठिन और ऊंचे उठे हुए होने के कारण पर्वत यकृत और क्लोमा हैं I ‘यकृत’ और ‘क्लोमा’--हृदय के अधोभाग में सीधे (दायें) और बाएँ दो मांसखण्ड हैं I ‘क्लोमाना:’ यह एक के ही अर्थ में नित्य बहुवचनान्त होता है I

ओषधि-क्षुद्र स्थावर ये यथासम्भव लोम और केश हैं I

सूर्य जो मध्याह्नकालपर्यन्त उदित होता है— ऊपर की ओर जाता है वह अश्व का पूर्वार्ध यानी नाभि से ऊपर का भाग है और निम्लोचन अर्थात् मध्याह्नकाल से अस्त की ओर जाता हुआ वह सूर्य जघनार्ध—अपरार्ध(नीचे का भाग) है, क्योंकि

Page 223 of 331

पूर्वत्व और अपरत्व में उन (उदित और अस्त होते हुए सूर्य) की समानता है । तथा वह जो जमुहाई लेता है अर्थात् अङ्गों को फैलाता यानी उन्हें विशेष रूप से झाड़ता है वह बिजली का चमकना है , क्योंकि विद्योतन और मुख एवं मेघ के विदारण में समानता है । तथा वह जो हिलाता अर्थात् शरीर को कम्पित करता है वह मेघ का गर्जन है ; क्योंकि इन दोनों में ही गर्जन -शब्द रहने में समानता है । और वह अश्व जो मूत्रत्याग करता है व्ही वर्षा होना है , क्योंकि भिगोने में इन दोनों की समानता है । वाक् अर्थात् शब्द ही इस अश्व की वाणी है ; तात्पर्य यह है कि यहाँ कोई कल्पना नहीं है ।

अहर्वा अश्वं पुरस्तान्महिमान्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चान्महिमान्वजायत तस्यापरे समुद्रे योनिरेतौ वा अश्वं महिमानावभितः संबभूवतुः । हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानर्वासुरानश्वो मनुष्यान् समुद्र एवास्य बन्धु समुद्रो योनिः । (श्लोक 2)

अर्थ -अश्व के आगे -पीछे जैसे उसकी महिमा को गाने वाले घुंघरू लगाये जाते हैं , सृष्टि में 'दिन '-रूपी घुंघरू उसकी अगली और 'रात्रि '-रूपी घुंघरू उसकी पिछली महिमा का बखान कर रहे हैं । दिन का उदय 'पूर्व -समुद्र ' से होता है , रात्रि का प्रारंभ 'अपर-समुद्र ' से होता है । (कोई समय था जबकि भारत के पूर्व -भाग में भी समुद्र था , यह भूगर्भ -वेत्ताओं

Page 225 of 331

ने पता लगाया है । सम्भवतः उसी काल में ये उपनिषद् लिखी गई होंगी ।) ये दोनों---दिन और रात---सृष्टि- रूपी अश्व को आगे और पीछे दोनों तरफ़ महिमा बना कर घेरे हुए हैं । अश्व के चार पर्यायवाची नाम हैं-'हय'- 'बाजी'- 'अर्वा'- 'अश्व' । यह सृष्टि 'हय' है, अर्थात् 'हेय' है, 'त्याज्य' है। 'देव-गण' इस सृष्टि रूपी घोड़े पर इसे 'हय' समझ कर बैठते हैं, इसे त्यागना है यह समझ कर, इसका भोग करते हैं । यह सृष्टि 'वाजी' है, अर्थात् वाज-वाली, अन्नवाली है, ‘भोग्य'है । 'गन्धर्वगण', अर्थात् विलासी लोग इस सृष्टि रूपी घोड़े पर इसे 'वाजी' समझ कर बैठते हैं, संसार भोग के ही लिये है, यह समझ कर इसका भोग करते हैं । यह सृष्टि 'अर्वा' है, 'अर्व', अर्थात् 'वध' का स्थान है, हिंसा से ही यहां काम चलता है। 'असुर-गण' इस सृष्टि-रूपी घोड़े पर इसे 'अर्वा' समझ कर बैठते हैं, संसार में संहार द्वारा ही अपनी जीवन-यात्रा करते हैं । यह सृष्टि 'अश्व' है, 'अश', अर्थात् 'भोजन' मिल जाने का स्थान है । 'मनुष्य-गण', साधारण-लोग इस सृष्टि--रूपी घोड़े पर 'अश्व' समझ कर बैठते हैं, पेट भर जाये, जीवन-यात्रा का निर्वाह हो जाये, इतने मात्र से सन्तुष्ट रहते हैं । इसप्रकार देव, गन्धर्व, असुर तथा मनुष्य इस सृष्टि-रूपी विराट् अश्व की हय, वाजी, अर्वा, अश्व रूप में सवारी कर रहे हैं । इन सबका बन्धु, इन सबका कारण 'समुद्र' है---'समुद्र' अर्थात् जिसमें सब दौड़ते हुए जाकर मानो बन्धु में लीन हो जाते हों वैसे उसमें लीन हो

Page 225 of 331

Page 226 of 331

जाते हैं । वही कारण-रूप 'प्रकृति' अथवा 'पर-ब्रह्म' ही मानो समुद्र है जिसमें सब ऐसे लीन हो जाते हैं जैसे बन्धु में सब प्रेम से समा जाते हैं

शङ्कराचार्य इसके विषय में इसप्रकार बताते हैं—

“अश्वमेध सम्बन्धी महिमा संज्ञक ग्रहादि में अहरादिदृष्टि” अहर्वा एति I सौवर्णराजतौ महिमाख्यौ ग्रहावश्वस्याग्रत: पृष्ठतश्च स्थाप्येते तद्विषयमिदं दर्शनम्—
‘अहर्वा’ इत्यादि I अश्व के आगे और पीछे
महिमा नामके सोने और चांदी दो ग्रह (यज्ञीय पात्रविशेष) रखे जाते हैं; उन्हीं से सम्बन्ध रखनेवाली यह दृष्टि है---

अर्थ---अश्व के सामने महिमारूप से दिन प्रकट हुआ; अश्वके सामने महिमारूपसे दिन प्रकटहुआ; उसकी पूर्व समुद्र योनि है I रात्रि इसके पीछे महिमारूप से प्रकट हुई; उसकी अपर (पश्चिम) समुद्र योनि है I ये ही दोनों इस अश्व के आगे-पीछे के महिमासंज्ञक ग्रह हुए I इसने हय होकर देवताओं को, वाजी होकर गन्धर्वों को, अर्वा होकर असुरों को और अश्व होकर मनुष्यों को वहन किया हैI समुद्र ही इसका बन्धु है और समुद्र ही उद्गमस्थान है I

भाष्य-अहः सौवर्णो ग्रहो दीप्तिसामान्याद्वै । अहरश्वं पुरस्ता-न्महिमान्वाजायतेति कथम्? अश्वस्य प्रजापतित्वात् । प्रजापतिर्ह्यादित्यादिलक्षणोऽह्ना लक्ष्यते I

Page 226 of 331

Page 227 of 331

अश्वं लक्षयित्वाजायत सौवर्णो महिमा ग्रहो वृक्षमनु विद्योतते विद्युदिति यद्वत् I तस्य ग्रहस्य पूर्वे पूर्व: समुद्रे समुद्रो योनिर्विभक्तिव्यत्ययेन I योनिरित्यासादनस्थानम् I

तथा रात्री राजतो ग्रहो वर्णसामान्याज्जघन्यत्वसामान्याद्वा I एनमश्वं पश्चात्पृष्ठतो महिमान्वजायत, तस्यापरे समुद्रे योनि: I महिमा महत्त्वात् I अश्वस्य हि विभूतिरेषा यत्सौवर्णो राजतश्च ग्रहावुभयत: स्थाप्येते I तावेतौ वै महिमानौ महिमाख्यौ ग्रहावश्वमभित: सम्बभूवतुरुक्तलक्षणा-वेव सम्भूतौ I इत्थमसावश्वो महत्त्वयुक्त इति पुनर्वचनं स्तुत्यर्थम् I तथा च हयो भूत्वेत्यादि स्तुत्यर्थमेव I हयो हिनोते- र्गतिकर्मणो विशिष्टगतिरित्यर्थ: I जातिविशेषो वा I देवान-वहद् देवत्वमगमयत्प्रजापतित्वात् I देवानां वा वोढाभवत् I

ननु निन्दैव वाहनत्वम् I

नैव दोष:, वाहनत्वं स्वाभाविकमश्वस्य I स्वाभाविकत्वादुच्छ्रायप्राप्तिर्देवादिसम्बन्धोऽश्वस्येति स्तुतिरेवैषाI तथा वाज्यादयो जातिविशेषा: I वाजी भूत्वा गन्धर्वानवहदि- त्यनुषङ्गः I तथार्वा भूत्वासुरान् I अश्वो भूत्वा मनुष्यान् I समुद्र एवेति परमात्मा

Page 227 of 331

Page 228 of 331

बन्धुर्बन्धनं बध्यतेऽस्मिन्निति I समुद्रो योनि: कारणमुत्पत्तिं प्रति I एवमसौ शुद्धयोनि: शुद्धस्थितिरिति स्तुयतेI “अप्सु योनिर्वा अश्व:” इति श्रुते: प्रसिद्ध एव वा समुद्रो योनि: I

अर्थ-दीप्ति में समानता होने के कारण दिन ही सुवर्णमय ग्रह है I दिन ही इस अश्वके सामने महिमारुपसे प्रकट हुआ, सो किस

प्रकार? क्योंकि यह अश्व प्रजापतिरूप है; आदित्यादिरूप प्रजापति ही दिनसे लक्षित होता है I जिसप्रकार वृक्षको लक्ष्य बनाकर बिजलीचमकती है उसी प्रकार इस अश्वको लक्षित कराकर दिनरूप सुवर्णमय महिमासंज्ञक ग्रह प्रकट हुआ है I उस ग्रह का ‘पूर्वे समुद्रे’अर्थात् पूर्वसमुद्र योनि है I योनि अर्थात् प्राप्तिस्थान है I यहां [वैदिक प्रक्रिया के अनुसार] प्रथमा विभक्ति का सप्तमी के रूपमें व्यत्यय हुआ है, अत: ‘पूर्वे समुद्रे’ का ‘पूर्व समुद्र:’ अर्थ किया गया है I

इसी प्रकार वर्णमें और निकृष्टतामें समानता होनेके कारण रात्रिराजत (चांदीका) ग्रह है I यह इस अश्वके पीछे की ओर यानी पृष्ठभागमें महिमारूपसे प्रकट हुई I उसका पश्चिमसमुद्र उद्गमस्थान है I महत्ताके कारण ये ‘महिमा’ कहलाते हैं I यह अश्वकी विभूति ही है कि इसके आगे-पीछे सुवर्ण और चांदी के ग्रह (पात्रविशेष) रखे जाते हैं I वे ये महिमा अर्थात् ऊपर बतलाए हुए लक्षणोंवाले महिमा संज्ञक

Page 228 of 331

Page 229 of 331

ग्रह ही अश्वके आगे-पीछे प्रकट हुए हैं I इसप्रकार यह अश्व महत्वयुक्त है-यह पुनरुक्ति अश्वकी स्तुति के लिए है I

तथा ‘हयो भूत्वा’ इत्यादि वाक्य भी अश्वकी स्तुतिके ही लिए है I गतिकर्मक ‘हि’ धातुका रूप ‘हय’ है, अत: ‘हय’ का अर्थ विशिष्टगतिमान् है I अथवा ‘हय’ अश्वकी जातिविशेष है I हय होकर उसने देवताओंको वहन किया अर्थात् प्रजापति होनेके कारण उन्हें देवत्वको प्राप्त कराया; अथवा वह देवताओं का वाहन हुआ I

शङ्का-किन्तु वाहन होना तो निन्दा ही है[[स्तुतिके लिए कैसे कहा?] I

समाधान-यह कोई दोषकी बात नहीं है, अश्वका वाहन होना तो स्वाभाविक ही है I स्वाभाविक होनेके कारण देवादिसे सम्बन्ध होना तो उच्च पदकी प्राप्ति ही है, अत: यह उसकी स्तुति ही है I इसीप्रकार वाजी आदि भी जाति विशेष हैं I अत: इसका सम्बन्ध इसप्रकार है--वाजी होकर उसने गन्धर्वोंका वहन किया तथा अर्वा होकर असुरोंका और अश्व होकर मनुष्योंका वहन किया I समुद्र अर्थात् परमात्मा ही इसका बन्धु-बन्धन है, क्योंकि इसीमें यह बांधा जाता है तथा समुद्र ही योनि यानी इसकी उत्पत्तिमें कारण है I इसप्रकार यह शुद्ध योनि और शुद्ध स्थितिवाला है-ऐसा कहकर इसकी स्तुति की जाती है I अथवा “अश्व

Page 229 of 331

Page 230 of 331

जलमें योनिवाला है” इस श्रुतिके अनुसार प्रसिद्ध समुद्र ही इसकी योनि है I

दूसरा ब्राह्मण :-- (मृत्यु तथा सृष्टि)

इस प्रकरण में ऋषि ने ब्रह्म की कल्पना 'मृत्यु' के रूप में की है। ब्रह्म को मृत्यु-रूप मानकर कैसे पहले जड़-जगत् उत्पन्न हुआ, जड़ के उत्पन्न होने के बाद कैसे चेतन-जगत् उत्पन्न हुआ-- इस सब आध्यात्मिक प्रक्रिया का साहित्यिक वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं:-

नैवेह किञ्चनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत् I अशनाय-याशनाया हि मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वी स्यामिति I सोऽर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपोऽजायन्तार्चते वै मे कमभूदिति तदेवार्कस्यार्कत्वं कं ह वा अस्मै भवति य एवमेतदर्कत्वं वेद I (श्लोक 1) I

अर्थ-सृष्टि के प्रारंभ में यहां, यह जो कुछ दीख रहा है, कुछ नहीं था। भूखी मृत्यु से यह सब ढक चुका था। मृत्यु का क्या काम है? यह खा जाती है। भूखा ही तो खाता है । और जो इस विशाल को खा जाये, कितनी उसकी भूख होगी I परन्तु मृत्यु खाती भी क्या है, पेट में ही तो रख लेती है । खानेवाला वस्तु को पेट में ही तो रख लेता है । मृत्यु ने भी यह सब जगत् पेट में ढांप रखा था । मृत्यु का रूप ही 'अशनाया' है, 'भूख' है । इस प्रकरण में मृत्यु ब्रह्म के उस रूप का नाम है, जिसने संसार को भोजनकर अपने में

Page 230 of 331

Page 231 of 331

ढांप रखा है । मृत्यु-रूप-ब्रह्म का प्रकृति ही तो शरीर था। प्रलयावस्था में जब प्रकृति रूपी इस शरीर को वह खा गया, तो उसका अपना शरीर भी न रहा, खाये किससे और खाये क्या? सृष्टि की अवस्था में अपने शरीर से ही तो वह अपने शरीर को खा रहा था--- यही तो मत्स्य-न्याय है! बड़ी मछली छोटी मछली को निगल रही है, कोई भोक्ता है, कोई भोग्य है । ब्रह्म के मृत्यु-रूपशरीर में ही तो यह चर्बण चल रहा है। जब इस चर्बण के होते-होते चर्बण को ही कुछ न रहा, प्रलय होगई, तब मृत्यु रह गई, और उसकी भूख रह गई, बाकी कुछ न रहा । अब मृत्यु अपनी क्षुधा-पूर्ति का क्या उपाय करे? ऐसी अवस्था में उसका मन किया कि फिर 'आत्मन्वी' हो जाऊं, फिर शरीर धारण करूँ, अब फिर सृष्टि की रचना करूँ, वताकि फिर खा-खा कर अपनी भूख मिटाऊं I उसने अर्चना शुरू की, परमाणुओं की खुशामद शुरू की कि तो भाई, करो मदद, सृष्टि को बना डालें I इसप्रकार अर्चना करते हुए उसने परमाणुओं में गति दी । मृत्यु-रूप ब्रह्म की अर्चना से 'आप्' उत्पन्न हुए, अर्थात् द्रवावस्था में प्रकृति प्रकट हुई। 'आप्' का अर्थ यहां जल नहीं, द्रवावस्था के रूप में प्रकृति है। यह देख कर कि अब उसका शरीर बनने लगा उसे 'कम्' हुआ, 'कम्' अर्थात सुख हुआ । 'अर्च' का 'अर्' और कम्' का 'क' मिलकर 'अर+क'='अर्क' बनता है --क्योंकि 'अर्चना' करते हुए उसे 'कम्' अर्थात सुख हुआ था इसलिए द्रवावस्था-रूप प्रकृति को 'अर्क' कहते हैं, यही 'अर्क' का 'अर्कत्व'

Page 231 of 331

है । जो इसप्रकार अर्क के अर्कत्व को जानता है उसे
सुख प्राप्त होता है ।

शङ्कराचार्य इसके भाष्य में इसप्रकार बताते
हैं ---

‘अश्वमेध सम्बन्धी अग्निकी उत्पत्ति ’---

अथाग्नेरश्वमेधोपयोगिकस्योत्पत्तिरुच्यते ।
तद्विषयदर्शनविवक्षयै -वोत्पत्ति : स्तुत्यर्था
।----अब आगे अश्वमेधमें उपयोगी अग्निकी उत्पत्ति
का वर्णन किया जाता है । तद्विषयक दृष्टि कहनेकी
इच्छासे ही जो उसकी उत्पत्ति कही जाती है वह
स्तुतिके लिए है ।

अर्थ - पहले यहां कुछ भी नहीं था । यह सब मृत्युसे
ही आवृत था । यह अशनाया (क्षुधा , भूख) से आवृत था ।
अशनाया ही मृत्यु है । उसने ‘मैं आत्मा (मन) से
युक्त होऊँ ’ ऐसा मन किया । उसने अर्चन (पूजन) करते
हुए आचमन किया । उसके अर्चन करने से आप हुआ । अर्चन
करते हुए क (जल) प्राप्त हुआ है , अत: यही अर्कका 1
[‘अर्चते कम् अर्कम् ’ अर्थात् जिसके अर्चन करने
वाले को क (जल या सुख) हो उसका नाम अर्क है । इस
व्युत्पत्ति से ‘अर्क अग्नि को कहते हैं] अर्कत्व
है । जो इसप्रकार अर्कके इस अर्कत्व को जानता है
उसे निश्चय क (सुख) होता है ।

भाष्य - नैवेह किञ्चनाग्र आसीत् । इह संसारमण्डले
किञ्चन किञ्चिदपि नामरूपप्रविभक्तविशेषं
नैवासीद् न बभूव अग्रे प्रागुत्पत्तेर्मनआदेः ।

Page 233 of 331

सत्कारणवादसाधनम् - किं शून्यमेव स्यात् “नैवेह किञ्चन” इति श्रुते:I न कार्यं कारणं वासीत् I उत्पात्तेश्च, उत्पद्यते हि घट:, अत: प्रागुत्पत्तेर्घटस्य नास्तित्वम् I

ननु कारणस्य न नास्तित्वं मृत्पिण्डादिदर्शनात् I यन्नोपलभ्यते तस्यैव नास्तिता I अस्तु कार्यस्य न तु कारणस्य, उपलभ्य-मानत्वात् I

न; प्रागुत्पत्ते: सर्वानुपलम्भात् I अनुपलब्धिश्चेदभावहेतु: सर्वस्य जगत: प्रागुत्पत्तेर्न कारणं कार्यं वोपलभ्यते I तस्मात्सर्व-स्यैवाभावोऽस्तु I

न; “मृत्युनैवेदमावृतमासीत्” इति श्रुते: I यदि हि किञ्चिदपि नासीद् येनाव्रियते यच्चाव्रियते तदा नावक्ष्यत् ‘मृत्युनैवेदमावृतम्’ इति I न हि भवति गगनकुसुमच्छन्नो वन्ध्यापुत्र इति I ब्रवीति च “मृत्युनैवेदमावृतमासीत्” इति, तस्माद्येनावृतं कारणेन, यच्चावृतं कार्यं प्रागुत्पत्तेस्तदुभयमासीत्, श्रुतेः प्रामाण्यादनुमेयत्वाच्च I

अनुमीयते च प्रागुत्पत्ते: कार्यकारणयोरस्तित्वम्; कार्यस्य हि सतो जायमानस्य कारणे सत्युत्पत्तिदर्शनात्, असति

Page 233 of 331

चादर्शनात् I जगतोS पि प्रागुत्पत्तेः कारणास्तित्वमनुमीयते घटादिकारणास्ति-त्ववत् I

घटादिकारणस्याप्यसत्त्वमेव, अनुपमृद्य मृत्पिण्डादिकं घटाद्यनुत्पत्तेरिति चेत्?

न; मृदादे: कारणत्वात् I मृत्सुवर्णादि हि तत्र कारणं

घटरुचकादेः, न पिण्डाकारविशेषः, तदाभावे भावात् । असत्यपि पिण्डाकारविशेषे मृत्सुवर्णादिकारणद्रव्यमात्रादेव घटरुचकादि- कार्योत्पत्तिर्दृश्यते । तस्मान्न पिण्डाकारविशेषो घटरुचकादि-कारणम् । असति तु मृत्सुवर्णादिद्रव्ये घटरुचकादिर्न जायत इति मृत्सुवर्णादिद्रव्यमेव कारणम्, न तु पिण्डाकारविशेषः ।

सर्वं हि कारणं कार्यमुत्पादयत्पूर्वोत्पन्नस्यात्मकार्यस्य तिरोधानं कुर्वत्कार्यान्तरमुत्पादयाति, एकस्मिन्कारणे युगपदनेककार्यविरो-धात् । न च पूर्वकार्योपमर्दे कारणस्य स्वात्मोपमर्दो भवति । तस्मात्पिण्डाद्युपमर्दे कार्योत्पत्तिदर्शनमहेतु: प्रागुत्पत्ते: कारणा-सत्त्वे I

पिण्डादिव्यतिरेकेण
मृदादेरसत्त्वादयुक्तमिति चेत्-पिण्डादि- पूर्वकार्योपमर्दे मृदादिकारणं नोपमृद्यते,
Page 234 of 331

Page 235 of 331

घटादिकार्यान्तरेऽप्यनुवर्तते इत्येतदयुक्तम्; पिण्डघटादिव्यतिरेकेण मृदादिकारणस्यानुपलम्भा- दिति चेत्?

न, मृदादिकारणानां घटाद्युत्पत्तौ पिण्डादिनिवृत्तावनुवृत्ति-दर्शनात् I सादृश्यादन्वयदर्शनं न कारणानुवृत्तेरिति चेन्न, पिण्डादिगतानां मृदाद्यवयवानामेव घटादौ प्रत्यक्षत्वेऽनुमाना- भासात्सादृश्यादिकल्पनानूपपत्ते; I

न, च प्रत्यक्षानुमानयोर्विरुद्धाव्यभिचारिता, प्रत्यक्षपूर्वकत्वादनु-मानस्य सर्वत्रैवानाश्वासप्रसङ्गात् I यदि च क्षणिकं सर्वं तदेवेद-मिति गम्यमानं तद्बुद्धेरप्यन्यतद्बुद्धयपेक्षत्वे तस्या अप्यन्यत--द्बुद्धयपेक्षत्वमित्यनवस्थायां तत्सदृशमिदमित्यस्था अपि बुद्धेमृषा- त्वात्सर्वत्रानाश्वासतैव I तदिदम्बुद्धयोरपि कर्त्रभावे सम्बन्धानु-पपत्ति: I

सादृश्यात्तत्सम्बन्ध आईटीआई चेन्न, तदिदम्बुद्धयोरितरेतर-विषयत्वानूपपत्ते: I असति चेतरेतरविषयत्वे सादृश्यग्रहणानु-पपत्ति: I असत्येव सादृश्ये तद्बुद्धिरिति चेन्न, तदिदम्बुद्धयोरपि सादृश्यबुद्धिवदसद्विषयत्वप्रसङ्गात् I असद्विषयत्वमेव सर्वबुद्धी-नामस्त्विति चेन्न,

Page 235 of 331

बुद्धिबुद्धेरप्यसद्विषयत्वप्रसङ्गात् ।
तदप्यस्त्विति चेन्न , सर्वबुद्धीनां
मृषात्वेऽसत्यबुद्धयनुपपत्ते : ।
तस्मादसदेतत्सा -दृश्यात्तद्बुद्धिरिति । अत:
सिद्ध : प्राक्कार्योत्पत्ते : कारणसद्भाव : ।

कार्यसद्भावसाधनम् -- कार्यस्य
चाभिव्यक्तिलिङ्गत्वात् । कार्यस्य च सद्भाव :
प्रागुत्पत्ते : सिद्ध : ।
कथमभिव्यक्तिलिङ्गत्त्वादभिव्यक्ति -
र्लिङ्गमस्येति । अभिव्यक्ति :
साक्षाद्विज्ञानालम्बनत्वप्राप्ति : । यद्धि
लोके प्रावृतं तम आदिना घटादि वस्तु तदालोकादिना
प्रावरणतिरस्कारेण विज्ञानविषयत्वं
प्राप्नुवत्प्राक्सद्भावं न व्यभिचरति ।
तथेदमपि जगत्प्रागुत्पत्तेरित्यवगच्छाम : । न
ह्यविद्यमानो घट उदीते ऽ प्यादित्ये उपलभ्यते ।

न, ते ऽ विद्यमानत्वाभावादुपलभ्येतैवेति चेत्
। न हि तव घटादिकार्यं
कदाचिदप्यविद्यामानमित्युदिते आदित्ये
उपलभ्येतैव मृत्पिण्डे ऽ सन्निहिते तमआद्यावरणे
चासति विद्यमानत्वादिति चेत् ?

न, द्विविधात्वादावरणस्य । घटादिकार्यस्य
द्विविधं ह्यावरणं मृदादेरभिव्यक्तस्य
तम:कुड्यादि
प्राङ्मृदोऽभिव्यक्तेरमृदाद्यवयवानां

पिण्डादिकार्यान्तररूपेण संस्थानम् I तस्मात्प्रागुत्पत्तेर्विद्यमानस्यैव घटादिकार्यस्य आवृतत्वादनुपलब्धि: I नष्टोत्पन्नभावाभावशब्द-प्रत्ययभेदस्तु अभिव्यक्तितिरोभावयोर्द्विविधत्वापेक्ष: I

पिण्डकपालादेरावरण-

वैलक्षण्यादयुक्तमिति चेत्? तम:कुडयादि हि घटाद्यावरणं घटादिभिन्नदेशे दृष्टे पिण्डकपाले I तस्मात् पिण्डकपा-लसंस्थानयोर्विद्यमानस्यैव घट्स्याववृतत्वाद् अनुपलब्धिरित्युक्तम् आवरणधर्मवैलक्षण्यादिति चेत्?

न, क्षीरोदकादे: क्षीराद्यावरणेनैकदेशत्वदर्शनात् I घटादिकार्ये कपालचूर्णाद्यवयवानामन्तर्भावादनावरणत्वमिति चेन्न, विभक्तानां कार्यान्तरत्वादावरणत्वोपपत्ते: I

आवरणाभाव एव यत्न: कर्तव्य इति चेत्? पिण्ड-- कपालावस्थयोर्विद्यमानमेव घटादिकार्यमावृतत्वान्नोपलभ्यत इति चेद् घटिकार्यार्थिना तदावरणविनाश एव यत्न: कर्तव्यो न घटाद्युत्पत्तौ; न चैतदस्ति, तस्मादयुक्तं विद्यमानस्यैवावृत-त्वादनुपलब्धिरिति चेत्?

न अनियमात् I न हि विनाशमात्रप्रयत्नादेव घटाद्यभिव्यक्ति-र्नियता I तमाअद्यावृते घटादौ प्रदीपाद्युत्पत्तौ प्रयत्नदर्शनात् I
Page 237 of 331

सो ऽ पि तमोनाशायैवेति चेत् ? दीपाद्युत्पत्तावपि य: प्रयत्न : सो ऽ पि तमस्तिरस्करणाय तस्मिन्नष्टे घट: स्वयमेवोपलभ्यते । न हि घटे किञ्चिदाधीयते इति चेत् ?

न, प्रकाशवतो घटस्योपालभ्यमानत्वात् । यथा प्रकाशविशिष्टो घट उपलभ्यते प्रदीपकरणे न तथा प्राक्प्रदीपकरणात् । तस्मान्न तमस्तिरस्कारायैव प्रदीपकरणं किं तर्हि ? प्रकाशवत्त्वाय । प्रकाशवत्त्वेनैवोपलभ्यमानत्वात् । क्वचिदावरणविनाशे ऽ पि यन्न : स्थात् , यथा कुडयाडिविनाशे । तस्मान्न नियमो ऽ स्त्यभिव्यक्त्यर्थिनावरणविनाश एव यन्न : कार्य इति ।

नियमार्थवत्त्वाच्च । कारणे वर्तमानं कार्यं कार्यान्तरा -णामावरणमित्यवोचाम । तत्र यदि पूर्वाभिव्यक्तस्य कार्यस्य पिण्डस्य व्यवहितस्य वा कपालस्य विनाश एव यत्न : क्रियेत , तदा विदलचूर्णाद्यपि कार्यं जायेत । तेनाप्यावृतो घटो नोपलभ्यत इति पुन : प्रयत्नांतरापेक्षैव । तस्माद् घटाद्यभि -व्यक्त्यर्थिनो नियत एव कारकव्यापारो ऽ र्थवान् । तस्मात्प्रागुत्पत्तेरपि सदेव कार्यम् ।

अतीतानागतप्रत्ययभेदाच्च अतीतो घटो ऽ नागतो घट इत्येतयोश्च

प्रत्यययोर्वर्तमानघटप्रत्ययवन्न निर्विषयत्वं युक्तम् ; अनागतार्थिप्रवृत्तेश्च । न ह्यसत्यर्थितया प्रवृत्तिर्लोके दृष्टा । योगिनां चातीतानागतज्ञानस्य सत्यत्वात् । असंश्चेद्भविष्यद्धट ऐश्वरम्भ -विष्यद्धटविषयं प्रत्यक्षज्ञानं मिथ्या स्यात् न च प्रत्यक्षमुपचर्यते ।

घटसद्भावे ह्यनुमानमवोचाम । विप्रतिषेधाच्च । यदि घटो भविष्यतीति कुलालादिषु व्याप्रियमाणेषु घटार्थं प्रमाणेन निश्चितं येन च कालेन घटस्य सम्बन्धो भविष्यतीत्युच्यते , तस्मिन्नेव काले घटो ऽसन्निति विप्रतिषिद्धमभिधीयते । भविष्यन्घटो ऽसन्निति , न भविष्य -तीत्यर्थ : आय^ घटो न वर्तत इति यद्वत् ।

अथ प्रागुत्पत्तेर्घटो ऽसन्नित्युच्चेत , घटार्थ प्रवृत्तेषु कुलालादिषु तत्र यथा व्यापाररूपेण वर्तमानास्तावत्कुला - लादय :, तथा घटो न वर्तत इत्यसच्छब्दस्यार्थश्चेन्न विरुध्यते कस्मात् ? स्वेन हि भविष्यद्रूपेण घटो वर्तते । न हि पिण्डस्य वर्तमानता कपालस्य वा घटस्य भवति । न च तयोर्भविष्यत्ता घटस्य । तस्मात्कुला -लादिव्यापारवर्तमानतायां प्रागुत्पत्तेर्घटो ऽसन्निति न विरुध्यते । यदि घटस्य यत्स्वं भविष्यत्ताकार्यरूपं तत्प्रतिषिध्येत , तत्प्रतिषेधे विरोध : स्यात् । न तु तद्भवान्प्रतिषेधति न च सर्वेषां

क्रियावतां कारकाणामेकैव वर्तमानता भविष्यत्त्वं वा I

अपि च चतुर्विधानामभावानां घटस्येतरेतराभावो घटादन्यो दृष्टो यथा घटाभाव: घटादिरेव न घटस्वरूपमेव I न च घटाभाव: सन्पटोS भावात्मक:, किं तर्हि भावरूप एव I एवं घटस्य प्राक्प्रध्वंसात्यन्ताभावानामपि घटादन्यत्वं स्यात् I घटेन व्यपदिश्यमानत्वाद् घटस्येतरेतराभाववत् I तथैव भावात्मक-ताभावानाम् I एवं च सति घट्स्य प्रागभाव इति न घटस्वरूपमेव प्रागुत्पत्तेर्नास्ति I

अथ: घटस्य प्रागभाव इति घटस्य यत्स्वरूपं तदेवोच्येत घटस्येतिव्यपदेशानुपपत्ति: I अथ कल्पयित्वा व्यपदिश्येत शिलापुत्रकस्य शरीरमिति यद्वत्, तथापि घटस्य प्रागभाव इति कल्पितस्यैवा भावस्य घटेन व्यपदेशो न घटस्वरूपस्यैव I अथार्थान्तारं घटाद् घटस्याभाव इति उक्तोत्तरमेतत् I

किञ्चान्यत्प्रागुत्पत्ते: शशविषाणवदभावभूतस्य घटस्य स्व-

कारणसत्तासम्बन्धानुपपत्ति:, द्विनिष्ठत्वात्सम्बन्धस्य I अयुत-सिद्धानामदोष इति चेन्न, भावाभावयोरयुतसिद्धत्वानुपपत्ते: I भावभूतयोर्हि युतसिद्धतायुतसिद्धता वा स्यान्न तु भावाभावयोर-

Page 240 of 331

भावयोर्वा । तस्मात्सदेव कार्यं प्रागुत्पत्तेरिति सिद्धम् ।

किंल्लक्षणेन मृत्युनावृतमित्यत आह— अशनायया अशितुमिच्छा अशनाया सैव मृत्योर्लक्षणं तथा लक्षितेन मृत्युनाशनायया । कथमशनाया मृत्यु : ? इत्युच्यते —अशनाया हि मृत्यु : । हि शब्देन प्रसिद्धं हेतुमवद्योतयति । यो ह्यशितुमिच्छति सो S शनायानन्तरमेव हन्ति जन्तून् , तेनासावशनायया लक्ष्यते मृत्युरित्यशनाया हीत्याह ।

बुद्धयात्मनो S शनाया धर्म इति स एष बुद्धयवस्थो हिरण्यगर्भो मृत्युरित्युच्यते । तेन मृत्युनेदं कार्यमावृतमासीत् । यथा पिण्डा - वस्थया मृदा घटादय आवृता : स्युरिति तद्वत् । तन्मनो S कुरुत । तदिति मनसो निर्देश : । स प्रकृतो मृत्युर्वक्ष्यमाणकार्यसिसृक्षया तत्कार्यालोचनक्षमं मन:शब्दवाच्यं संकल्पादिलक्षणमन्त : करणम-कुरुत कृतवान् ।

केनाभिप्रायेण मनो S करोत् ? इत्युच्यते -- आत्मन्वी आत्मवान् स्यां भवेयम् । अहमनेनात्मना मनसा मनस्वी स्यामित्यभिप्राय : । स प्रजापतिरभिव्यक्तेन मनसा समनस्क : सन्नर्चन्नर्चयन्पूजयन् आत्मानेव कृतार्थो S स्मीत्यचरच्चरणमकरोत् । तस्य

Page 242 of 331

प्रजापतेरर्चत: पूजयत आपो रसात्मिका: पूजाङ्गभूता अजायन्तोत्पन्ना: I

अत्राकाशप्रभृतीनां त्रयाणामुत्पत्त्यनन्तरमिति वक्तव्यम्, श्रुत्यन्तरसामर्थ्याद्विकल्पासम्भवाच्च सृष्टिक्रमस्य I अर्चते पूजां कुर्वते वै मे मह्यं कमुदकमभूदित्येवममन्यत यस्मान्मृत्यु:, तदेव तस्मादेव हेतोर्कस्य अग्नेरश्वमेधक्रत्वौपयोगिकस्यार्कत्वम् अर्कत्वे हेतुरित्यर्थ:I अग्नेरर्कनामनिर्वचनमेतत् I अर्चनात्सुखहेतुपूजाकरणाद् अप्सम्ब-न्धाच्च अग्नेरेतद्गौणं नामार्क इति I

य एवं यथोक्तमर्कस्यार्कत्वं वेद जानाति I कमुदकं सुखं वा

नामसामान्यात् I ह वा इत्यवधारणार्थौ I भवत्येवेति I अस्मै

एवंविदे एवंविदर्थं भवति I

अर्थ-पहले यहां कुछ भी नहीं था I अर्थात् मन आदिकी उत्पत्तिसे पूर्व यहां—इस संसारमण्डल में किंचनमात्र-कुछ-भी-नाम-रूपमें विभक्त हुआ कोई भी पदार्थविशेष नहीं थाI

शून्यवादी-तो क्या उस समय शून्य ही था, क्योंकि “यहां कुछ भी नहीं था” ऐसी श्रुति है I अत: कार्य

Page 242 of 331

Page 243 of 331

या कारण कुछ भू नहीं था I इसके सिवा उत्पत्ति होनेसे भी यही सिद्ध होता है I घट उत्पन्न होता है, इसलिए उत्पत्ति से पूर्व घट की सत्ता नहीं होती I

सिद्धान्ती—किन्तु कारणका तो अभाव नहीं होता, क्योंकि [घटोत्पत्तिसे पूर्व भी] मृत्पिण्डादि देखे जाते हैं I जो वस्तु उपलब्ध नहीं होती उसीका अभाव होता है I अत: कार्य का अभाव भले ही रहे कारण का तो अभाव नहीं होता, क्योंकि वह तो उपलब्ध होता ही है I

शून्यवादी— नहीं, क्योंकि उत्पत्तिसे पूर्व तो सभीको उपलब्धि नहीं होती I यदि अनुपलब्धि ही अभाव का कारण है तो उत्पत्तिसे पूर्व तो सारे जगत् का कारण या कार्य उपलब्ध नहीं

होता I अत: सभीका अभाव होना चाहिए I

सिद्धान्ती— ऐसी बात नहीं है, क्योंकि यहां “यह मृत्यु से हि आवृत था” ऐसी श्रुति है I यदि उस समय कुछ भी न होता तो जिससे आवृत होता है और जो आवृत होता है उसके विषय में श्रुति यह न कहती कि ‘यह मृत्यु से ही आवृत था I’ वन्ध्यापुत्र आकाश-कुसुमसे आच्छादित होता हो—ऐसा कभी नहीं होता I किन्तु श्रुति ऐसा कह रही है कि ‘यह मृत्युसे ही आवृत था’

, अत: जिस कारणसे आवृत था और जो कार्य आवृत
था, उत्पत्ति से पूर्व वे दोनों ही थे, क्योंकि इसमें श्रुति प्रमाण है और ऐसा अनुमान भी किया जा सकता है I

Page 243 of 331

उत्पत्तिसे पूर्व कार्य और कारणके अस्तित्वका अनुमान भी किया जा सकता है ; क्योंकि उत्पन्न होनेवाले सत्य कार्यकीही सत्य कारणमें उत्पत्ति देखी जाती है ; असत्यमें नहीं देखी जाती । घटादिके कारणकी सत्ता का भी अनुमान किया जा सकता है ।1 [इससे कारणकी सत्ताका अनुमान किया जाता है । अनुमानका प्रयोग इसप्रकार समझना चाहिए —'विमतं सत्पूर्वं कार्यत्वाद् घटवत् ' विवादका विषयभूत जगत् सत् (कारण)-पूर्वक है , क्योंकि वह कार्य है , जैसे घट ।] ।

शून्यवादी —किन्तु घटादिके कारणकी भी तो सत्ता नहीं है , क्योंकि मृत्पिण्डादिको नष्ट किये बिना घटादिकी उत्पत्ति ही नहीं होती —यदि ऐसा कहें तो ?2[अत: यह (घटरूप) दृष्टांत साध्यविकल होने के कारण उक्त अनुमान प्रामाणिक नहीं है ।]

सिद्धान्ती —ऐसी बात नहीं है । क्योंकि कारण तो मृत्तिकादि हैं । घट और रुचक (कण्ठभूषण) आदिके कारण तो मृत्तिका और सुवर्णादि हैं , उनका पिण्डाकारविशेष कारण नहीं है , क्योंकि उसका अभाव होनेपर भी उन (मृत्तिकादि) की सत्ता तो रहती ही है । पिण्डाकार -विशेषके न रहनेपर भी मृत्तिका और सुवर्णादि कारण -द्रव्यमात्रसे हि घट और रुचकादि कार्यकी उत्पत्ति होती देखी जाती है । अत: घट और रुचकादिका कारण पिण्डाकार विशेष नहीं है । मृत्तिकाऔर सुवर्णादि द्रव्य ही उनका कारण है , उनका पिण्डाकारविशेष कारण नहीं है ।1(इसीलिए ऊपर

Page 245 of 331

दिये हुए दृष्टांतमें साध्यवैकल्य दोष नहीं माना जा सकता) I

सारे ही कारण कार्यकी उत्पत्ति करते समय अपने पूर्वोत्पन्न

कार्यका लय करके ही दूसरे कार्यको उत्पन्न करते हैं, क्योंकि एक कारणमें एक साथ अनेक कार्यों की उत्पत्ति होना विरुद्ध है I किंतु उस पूर्व कार्यका लय होने से ही कारणके स्वरूपका लय नहीं होताI अत: पिण्डादि का लय होनेपर कार्य की उत्पत्ति दिखाई देना उत्पत्तिसे पूर्व कारणकीअसत्ताका हेतु नहीं है I

शून्यवादी—किंतु पिण्डादिसे भिन्न मृत्तिकादिकी कोई सत्ता नहीं है, इसलिये ऐसा कहना अनुचित है I पिण्डादि पूर्व कार्यका लय होनेपर मृदादि कारणका लय नहीं होता, वह घटादि कार्यान्तरमें भी अनुवृत्त रहता है—ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि पिण्ड और घटादि से पृथक मृत्तिकादि कारणकी उपलब्धि नहीं होती I

सिद्धान्ती—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि घटादिकी उत्पत्तिहोनेपर पिण्डादिकी निवृत्ति हो जानेपर भी मृत्तिकादि कारणद्रव्योंकी अनुवृत्ति देखी जाती है I यदि कहो कि समानताके कारण उनमें मृत्तिकाका अन्वय देखा जाता है, कारणकी अनुवृत्ति होनेसे नहीं—तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि पिण्डादिगत मृत्तिकादि अवयवों को ही

Page 245 of 331

Page 246 of 331

घटादिमें प्रत्यक्ष देखा जाता है, इसलिये केवल अनुमानाभाससे सादृश्यादिकी कल्पना करना उचित नहीं है I

इसके सिवा प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों की अव्यभिचारिता (सामञ्जस्यता) में विरोध भी नहीं होता, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक होता है, इसलिये (उनमें विरोध होनेपर) सभी जगह अविश्वासका प्रसंग हो जाएगाI यदि ‘तदेवेदम्’ (यह वही है) इसप्रकार ज्ञात होने वाला सबकुछ क्षणिक है तो उस क्षणिकत्वबुद्धिको प्रमाणित करने के लिए भी तद्विषयक अन्य बुद्धिकी अपेक्षा होगी और उसके लिए दूसरी तद्बुद्धिकी; इसप्रकार अनवस्था प्राप्त होनेपर [क्षणिकत्त्वबुद्धिको स्वत:प्रमाण मानना होगा I ऐसी दशामें] ‘यह उसके समान है’ यह बुद्धि भी [‘तदिदम्’ बुद्धिके ही अन्तर्गत होनेसे] मिथ्या होनेके कारण सर्वत्र अविश्वास ही रहेगा I1 [‘तत्’ (वह) और ‘इदम्’ (यह) शब्दसे होनेवाले यावन्मात्र वस्तुज्ञानको प्रत्यभिज्ञा कहते हैं, कोई भी बुद्धि अपने विषयमें स्वत:प्रमाण नहीं होती, उसकी प्रमाणताके लिये अन्य बुद्धि की अपेक्षा होती है—ऐसा बौद्ध मानते हैं I बौद्धोंके मतमें प्रत्यभिज्ञामात्र क्षणिक है I अत: उनकी मान्यताके अनुसार क्षणिकत्व बुद्धिकों भी प्रमाणित करनेके लिये बुद्धयन्तरकी अपेक्षा होगी और फिर उस बुद्धिके लिये दूसरी बुद्धिकी, इसप्रकार अनवस्था दोष होगा;

Page 246 of 331

Page 247 of 331

अत: उन्हें क्षणिकत्वादि बुद्धिको स्वत:प्रमाण मानना पड़ेगा I ऐसी दशामें सादृश्य बुद्धि भी प्रत्यभिज्ञा होनेसे क्षणिक ही हुई, इसप्रकार कहीं भी विश्वास न होगा I] I तथा ‘तदिदम्’ ‘यह’ और ‘वही’—इन बुद्धियोंका भी, कोई कर्ता न होनेके कारण परस्पर सम्बन्ध होना सम्भव नहीं होगा I2 [‘तत्’ और ‘इदम्’ ये दोनों बुद्धियाँ दो क्षणोंमें होती हैं, एक बुद्धि दूसरे क्षणमें रह नहीं सकती, अत: उसके स्वरूपका तिरोधान न हो जाय इसके लिये उन दोनोंका एक कर्ता (द्रष्टा) में सामानाधिकारण्येन सम्बन्ध मानना चाहिए I परन्तु क्षणिक विज्ञानवादीके मतमें दो क्षणोंमें रहनेवाला कोई एक द्रष्टा है नहीं; अत: उन बुद्धियोंका सम्बन्ध असम्भव ही है I] I

यदि कहो कि सादृश्यताके कारण इनका सम्बन्ध हो सकता है—तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि ‘तत्’ ‘इदम्’— इन बुद्धियोंका इतरेतर-विषयत्व (भिन्न-भिन्न विषयोंको ग्रहण करना) सिद्ध नहीं होता I जबतक इन बुद्धियोंके विषय भिन्न-भिन्न न हों तबतक इनकी सदृशताका भी ग्रहण नहीं हो सकता I यदि ऐसा मानें कि विषयकी सदृशता न होनेपर भी ‘यह वही है’ ऐसी बुद्धि होती है तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसी अवस्थामें सादृश्य बुद्धिके समान तद् और इदं- बुद्धियाँ भी असद्विषयक [अर्थात् क्षणिक या भ्रान्त] सिद्ध होंगी I यदि कहो कि सभी बुद्धियोंकी असद्विषयता(मिथ्यात्व) ही होने दो

Page 247 of 331

Page 248 of 331

तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि तब तो बुद्धि-बुद्धि के भी मिथ्या होने का प्रसंग उपस्थित होगा I यदि कहो, अच्छा ऐसा ही हो, तो यह भी उचित नहीं; क्योंकि इसप्रकार जब सभी बुद्धियाँ मिथ्या होंगी तो असत्यबुद्धिका होना सम्भव नहीं होगा I1 (क्योंकि यह सब असत् यानी शून्यरूप है—ऐसा ज्ञान तो सत्य बुद्धिसे ही हो सकता है I सत्ताशून्य बुद्धि असत् का भी ग्रहण कैसे करेगी?)I

अत: सादृश्यसे ‘यह वही है’ ऐसी प्रत्यभिज्ञा होती है—यह कहना ठीक नहीं हैI

इसलिये कार्यकी उत्पत्तिसे पूर्व कारणकी सत्ता सिद्ध ही है I

कार्यकी भी सत्ता है, क्योंकि वह अभिव्यक्तिरूप लिङ्ग-वाला है I उत्पत्तिसे पूर्व कार्यकी भी सत्ता सिद्ध होती है I किस प्रकार?- अभिव्यक्तिरूप लिङ्गवाला होनेसे, क्योंकि अभिव्यक्ति ही कार्य का लिङ्ग है I साक्षात् विज्ञानालम्बनत्वको प्राप्त होने का नाम ‘अभिव्यक्ति’ है I लोकमेंजो घट आदि पदार्थ अन्धकारादिसे आच्छादित होता है वही उस आवरणका प्रकाशादिसे तिरस्कार होनेपर विज्ञानकी विषयताको प्राप्त होकर अपनी पूर्वकालिक सत्ता का त्याग नहीं करता I इससे हमें मालूम होता है कि इसी प्रकार उत्पत्तिसे पूर्व यह जगत् भी था; क्योंकि

Page 248 of 331

जो घट विद्यमान नहीं होता, उसकी उपलब्धि सूर्यके उदित होनेपर भी नहीं होती I

पूर्व 0---ऐसी बात नहीं है I यदि तुम्हारे मत में कार्य अविद्यमान नहीं है तो उसकी उसकू उपलब्धि होनी ही चाहिए I तुम्हारे मतानुसार घटादि कार्य कभी अविद्यमान तो है नहीं, इसलिये मृत्पिण्डकी सन्निधि न हो और अन्धकारादिका आवरण भी न हो उस समय सूर्योदय होनेपर उसकी उपलब्धि होनी ही चाहिए, क्योंकि वह विद्यमान ही है I

सिद्धान्ती—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि आवरण दो प्रकार का है I मृत्तिकादिसे अभिव्यक्त होनेवाले घटादि कार्यका आवरण दो प्रकार का है—

(1) अन्धकार और भित्ति आदि, तथा(2) मृत्तिका से

घटकी अभिव्यक्ति होनेसे पूर्व उस मृत्तिकादिके अवयवोंका पिण्डादि कार्यान्तरके रूपमें स्थित रहना I अत: उत्पत्तिसे पूर्व घटादि विद्यमान कार्यकी ही आवृत होने के कारण उपलब्धि नहीं होती I नष्ट होना, उत्पन्न होना, रहना, न रहना इत्यादि शब्द और प्रत्ययों का भेद तो अभिव्यक्ति और तिरोभाव इनकी द्विविधताकी अपेक्षासे है I

पूर्व 0—किंतु पिण्ड और कपालादि तो आवरणसे भिन्न प्रकारके होते हैं, इसलिये उन्हें आवरण कहना उचित नहीं है I अन्धकार और भित्ति आदि जो घटादिके आवरण हैं वे तो घटादिसे भिन्न देशमें
Page 249 of 331

Page 250 of 331

देखे जाते हैं, किंतु इसप्रकार पिण्ड और कपाल घटादिसे भिन्न देशमें नहीं देखे जातेI

अत: यह कहना ठीक नहीं है कि पिण्ड और कपालके संस्थान (स्वरूप)—में विद्यमान ही घटादिकी आवृत होने के कारण उपलब्धि नहीं होती, क्योंकि आवरणके धर्मोंसे उनमें विलक्षणता है—यदि ऐसा कहें तो?

सिद्धान्ती—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि दूधमें मिले हुए जलादिकी अपने आवरण दुग्धादिके साथ एकदेशता देखी जाती है I यदि कहो कि घटादि कार्यमें उसके कपाल एवं चूर्णादि अवयवोंका अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये उनका आवरण है ही नहीं—तो यह ठीक नहीं, क्योंकि विभक्त होनेपर कार्यान्तर होने के कारण उन्हें आवरण मानना ठीक ही है I

पूर्व 0—तब तो आवरणकी निवृत्ति करनेका ही प्रयत्न करना चाहिये I यदि तुम्हारे कथनानुसार पिण्ड और कपालकी अवस्थाओंमें वर्तमान घटादि कार्य ही आवृत होने के कारण उपलब्ध नहीं होता तब तो जिसे घटादि की आवश्यकता हो उसे उसके आवरणका नाश करनेका ही यत्नकरना चाहिये, घटादिकी उत्पत्तिका नहीं; किंतु ऐसा नहीं किया जाता, इसलिये यह कहना उचित नहीं है कि आवृत होने के कारण विद्यमान घटादि की ही उपलब्धि नहीं होती— ऐसा कहें तो?

Page 250 of 331

Page 251 of 331

सिद्धान्ती—ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि यह नियम नहीं है I आवरण के विनाशमात्र का प्रयत्न करने से ही घटादि की उत्पत्ति हो जायेगी—ऐसा कोई नियम नहीं है; क्योंकि अन्धकारादिसे आवृत घटादिके प्रकाशके लिये प्रदीप आदि कि उत्पत्ति में प्रयत्न देखा जाता है I

पूर्व 0—किंतु वह प्रयत्न भी तो अन्धकारनाश के लिये ही होता

हैI दीपकादि की उत्पत्ति के लिये जो प्रयत्न किया जाता है, वह भी अन्धकार की निवृत्ति के लिये ही होता है; उसकी निवृत्ति होनेपर घट स्वयं ही दिखाई देने लगता है I इससे घटमें कोई बात बढ़ाई नहीं जाती—ऐसा मानें तो?

सिद्धान्ती—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि प्रकाशयुक्त घट की ही उपलब्धि होती है I जिसप्रकार दीपक तैयार करनेपर प्रकाशयुक्त घट की उपलब्धि होती है उस प्रकार दीपक तैयार होने से पूर्व उसकी उपलब्धि नहीं होती I अत: अन्धकार की निवृत्ति के लिये ही दीपक नहीं जलाया जाता, तो और किसलिये जलाया जाता है? प्रकाश के लिये, क्योंकि प्रकाशयुक्त होनेपर ही वस्तु की उपलब्धि होती है I कहीं-कहीं आवरण का नाश करने के लिये भी यत्न किया जाता है; जैसे भीत आदि का नाश करने के लिये I अत: पदार्थ की अभिव्यक्ति के

Page 251 of 331

इच्छुक को आवरण के नाश का ही प्रयत्न करना चाहिये —ऐसा कोई नियम नहीं है ।

इसके सिवा नियत व्यापारकी सफलताके लिये भी प्रयत्न करना आवश्यक है । पहले बता चुके हैं कि कारण में विद्यमान कार्य अन्य कार्य का आवरण होता है । ऐसी अवस्था में यदि पहले अभिव्यक्त हुए कार्य पिण्ड के अथवा व्यवधानयुक्त कपाल के नाश का ही प्रयत्न किया जायेगा तो उनसे कपालिका (ठीकरी) या चूर्णादि कार्य की ही उत्पत्ति होगी । उससे आवृत होनेपर भी घट की उपलब्धि नहीं होगी, इसलिये पुन : प्रयत्नान्तर की अपेक्षा रहेगी ही । अत: घटादि की अभिव्यक्ति के इच्छुक का नियतकारकव्यापार (कर्ता -करण इत्यादि रूपसे किया हुआ प्रयत्न) ही सफल होता है । इसलिये उत्पत्ति से पूर्व भी कार्य विद्यमान ही है ।

भूत और भविष्यत् प्रतीतियों के भेद से भी सत्ता सिद्ध होती है । भूत घट , भविष्यद् घट इन प्रत्ययों का भी वर्तमान घटप्रत्यय के समान विषयशून्य होना उचित नहीं है , क्योंकि भविष्यद् घट की इच्छावाले पुरुष की प्रवृत्ति देखी जाती है । असत्पदार्थ की इच्छा से लोक में किसीकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती । इसके सिवा योगियोंका भूत और भविष्यत्सम्बन्धी ज्ञान तो सत्य ही होता है । यदि भावी घट -सम्बन्धी प्रत्यक्ष ज्ञान मिथ्या नहीं हो सकता ।

इसके सिवा घटकी सत्तामें हमने अनुमानप्रमाण भी दिया

है I तथा उसकी सत्ता न माननेसे विरोध भी आता है I यदि घट के लिये प्रवृत्त हुए कुम्हार आदि को प्रमाण से यह निश्चय हो गया है कि घट होगा तो जिस कालसे ‘घटका सम्बन्ध होगा’ ऐसा कहा जाता है उसी कालमें ‘घट नहीं है’ ऐसा कथन तो विपरीत ही है I ‘भविष्यद् घट असत् है’ इसका अर्थ तो यही है कि ‘घट उत्पन्न नहीं होगा’ जैसे कहा जाय कि ‘यह घट विद्यमान नहीं है I’

और यदि यह कहा जाय कि उत्पत्तिसे पूर्व घट असत् है, और इस ‘असत्’ शब्दका यह अर्थ हो कि कुम्हार आदि के घट के लिये प्रवृत्त होनेपर जिसप्रकार उस अवस्था में व्यापाररूपसे कुम्हार आदि विद्यमान हैं उस प्रकार घट नहीं है—तो इसमें कोई विरोध नहीं आता I क्यों नहीं आता? क्योंकि अपने भावीरूपसे तो घट विद्यमान है ही I पिण्ड या कपालकी वर्तमानता घट की भविष्यता उन (पिण्ड और कपाल) की नहीं हो सकती I अत: कुम्हार आदिके व्यापारकी वर्तमानतामें ‘उत्पत्तिसे पूर्व घट असत् है’ ऐसा कहना भी विरुद्ध नहीं है I किन्तु घटका जो भविष्यत्ता1 (भविष्यमें प्रकट होने का भाव ही भविष्यत्ता है) कार्यरूप स्वरूप है उसका यदि प्रतिषेध किया जाय तो उसके निषेध करनेपर ही विरोध होगा I सो उसका तो आप निषेध करते नहीं हैं I तथा सम्पूर्ण क्रियावान् कारकोंकी
Page 253 of 331

एक ही वर्तमानता या भविष्यत्ता होती हो—ऐसी बात नहीं है I

इसके सिवा चार प्रकारके अभावोंमें2(प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव,अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव— ये अभावके चार भेद हैं I उत्पत्तिसे पूर्व जो वस्तुका अभाव होता है उसे प्रागभाव कह्ते हैं; जैसे घट की उत्पत्ति से पूर्व उसका अभाव I वस्तु नाश के पश्चात उसका प्रध्वंसाभाव होता है; जैसे घट फूट जानेपर उसका अभाव I दो वस्तुओं में से प्रत्येक में एक-दूसरी का अभाव अन्योन्याभाव है; जैसे घटमें पटका और पटमें घटका I त्रिकालाबाधित अभाव अत्यन्ताभाव है; जैसे शशश्रृङ्गादिका I) घट का जो अन्योन्याभाव है वह घट से भिन्न ही देख़ा जता है, जैसे घटाभाव पटादि ही है घटका स्वरूप नहीं है I तथा घटाभाव होने से ही पट अभावरूप नहीं हों जाता; तो फिर क्या होता है? वह भावरूप ही रहता है I इसी प्रकार घट के प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव भी घट से भिन्न ही हैं, क्योंकि घटके द्वारा इनका उल्लेख किया जाता है I और उस (घटके अन्योन्याभाव पटको भावरूपता) के ही समान इन अभावों की भी भावरूपता है I ऐसा होने से ‘घटका प्रागभाव है’ इस कथनसे यह सिद्ध नहीं होता कि उत्पत्तिसे पूर्व घट का स्वरूप ही नहीं हैI

और यदि ‘घटका प्रागभाव’ इस कथनमें घटका जो स्वरूप है वही कहा जाय तो ‘घटका’ यह कथन ही नहीं
Page 254 of 331

Page 255 of 331

बन सकता1 (क्योंकि षष्ठीविभक्तिबोध्य सम्बन्ध भिन्न पदार्थों में ही होता है और तुम प्रागभावको घटका स्वरूप ही बतलाते हो) यदि ‘शिला के पुतलेका शरीर’ इस कथनके अनुसार कल्पना करके ऐसा कहा जाय तो भी ‘घटका प्रागभाव’ इस कथनसे ‘घट’ शब्द द्वारा कल्पित घटका ही अभाव कहा जायगा, I घट के स्वरूप का नहीं I(1) (अर्थात् यदि कहो कि जैसे शिला का पुतला और उसका शरीर ये एक ही हैं तो भी ‘राहू के सिर’ के समान उनमें षष्ठीसम्बन्ध कहा जाता है, उसीप्रकार घट या प्रागभाव का भी कल्पित अभेद हो सकता है—तो ऐसा कथन भी ठीक नहीं; क्योंकि भावपदार्थों में तो ऐसे कल्पित सम्बन्धका व्यपदेश(व्यवहार) हो सकता है, किंतु अभाव सापेक्ष होता है, उसे अपने प्रतियोगी की अपेक्षा होती है, इसलिये उसका उसके साथ अभेद नहीं हो सकता I अत: घटप्रागभाव घट का स्वरूप नहीँ हो सकता I) और यदि घटसे घटाभावको भिन्न पदार्थ माना जाय तो इसका उत्तर ऊपर ही दिया जा चुका है I(2) (‘इसीप्रकार घटके प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यंताभाव भी घटसे भिन्न ही हैं’ इस वाक्यसे इसका उत्तर दिया गया है I)

एक बात और भी है, उत्पत्तिसे पूर्व शशश्रृङ्ग (कपोल कल्पित) के समान अभावरूप घट का अपने कारण की सत्ता से सम्बन्ध होना भी संभव नहीं है, क्योंकि सम्बंध तो दो में हि रहा करता है I यदि कहो कि अयुतसिद्ध पदार्थोंमें ऐसा दोष

Page 255 of 331

Page 256 of 331

नहीं आता(3)(परस्पर संबन्ध रखनेवाले जिन दो पदार्थों की अलग-अलग प्रतीति होती है वे युतसिद्ध कहलाते हैं, जैसे घड़ा और रस्सि; तथा जिनकी अलग-अलग प्रतीति नहीं होती अर्थात् जिनमेंसे किसी भी एकको छोड़कर दूसरेकी प्रतीति नहीं होती वे अयुतसिद्ध कहलाते हैं I कार्य और कारण अयुतसिद्ध होते हैं; घट और मृत्तिका I) तो यह ठीक नहीं, क्योंकि भाव और अभावका अयुतसिद्ध होना सम्भव नहीं है I जो पदार्थ भावरूप होते हैं उन्हींकी युतसिद्धता या अयुतसिद्धता हो सकती है, भाव और अभाव अथवा दो अभावोंकी नहीं I अत: यह सिद्ध हुआ कि उत्पत्तिसे पूर्व कार्य सत् ही है I

यह सब किस लक्षणवाले मृत्युसे आवृत था? ऐसा प्रश्न होनेपर श्रुति कहती है—अशनायासे अर्थात् भूख I अशन(भोजन) की इच्छाका नाम ‘अशनाया’ है, वही उस मृत्यु का लक्षण है; उससे लक्षित जो मृत्यु है उस अशनायासे (यह सब आवृत) थाI अशनाया मृत्यु किस प्रकार है? सो बतलाया जाता है— अशनाया ही मृत्यु है I यहाँ ‘हि’ शब्दसे श्रुति प्रसिद्ध हेतु प्रकट करती है, क्योंकि जो कोई भोजन करना चाहता है वह भोजन की इच्छाहोनेके पीछे ही जीवोंको मारता है I अत: ‘अशनाया’ शब्दसे यह मृत्यु लक्षित होती है, इसीसे ‘अशनाया हि’ ऐसा कहा गया है I

Page 256 of 331

अशनाया विज्ञानात्माका धर्म है, अत: बुद्धिमें स्थित हिरण्यगर्भ ही मृत्यु कहा गया हई I उस मृत्युसे यह कार्यवर्ग आवृत था I जिसप्रकार पिण्डावस्थामें वर्तमान मृत्तिकासे घटादि आवृत रहते हैं उसीप्रकार (हिरण्यगर्भरूप मृत्युसे यह व्याकृत अर्थात् सृजन किया हुआ, सृजित, रचना किया हुआ जगत् व्याप्त था) I ‘तन्मनोS कुरुत’ इसमें ‘तत्’ यह शब्द मनका निर्देश कर्नेवाला है I अर्थात् उस प्रकृत मृत्युने आगे कहे जानेवाले कार्यको रचनेकी इच्छासे उस कार्यकी आलोचना करनेमें समर्थ मन:शब्दवाच्य संकल्पादि लक्षणोंवाला अन्त:करण किया I

किस अभिप्रायसे मन किया? सो बतलाया जाता है—मैं आत्मन्वी अर्थात् आत्मवान् होऊं I तात्पर्य यह है कि मैं इस आत्मा यानी मनसे मनस्वी होऊं I उस प्रजापतिने अभिव्यक्त हुए मनसे मनोयुक्त हो अर्चन-पूजन करते हुए अपने प्रति ही ‘मैं कृतार्थ हूँ’ इसप्रकार आचरण किया I उस प्रजापतिके अर्चन-पूजन करते समय पूजाके अङ्गभूत रसात्मक आप (जल) उत्पन्न हुए I

यहाँ जलकी उत्पत्ति आकाशादि (आकाश, वायु और अग्नि) तीन भूतोंकी उत्पत्तिके पीछे हुई ऐसा कहना चाहिये था, क्योंकि अन्य श्रुतिके सामर्थ्यसे यही सिद्ध होता है और सृष्टिक्रमका विकल्प होना भी सम्भव नहीं है; क्योंकि मृत्यु
Page 257 of 331

Page 258 of 331

ने ऐसा माना था कि अर्चन यानी पूजा करते हुए मेरे लिये क—जल हुआ है, इसीसे अर्थात् इस कारण से अर्क यानी अश्व्मेधयज्ञमें उपयोगी अग्निका अर्कत्व है, अर्थात् यही अर्कत्व में हेतु है I यह अग्निके अर्क नाम की व्युत्पत्ति है I तात्पर्य यह है कि अर्चनसे यानी सुखकी हेतुभूता पूजा करनेसे तथा जलका सम्बंध होनेसे अग्निका (अर्क) यह गौण (गुणकृत) नाम है I

जो कोई इसप्रकार उपर्युक्त अर्क का अर्कत्व जानता है उसे क—जल या सुख होता है, क्योंकि ‘क’ यह जल और सुख का समान नाम है I ‘ह’ और ‘वै’ ये निश्चयार्थक निपात हैं (ये शब्द व्याकरण में दिये नियमों के अनुसार नहीं बने हैं) I अर्थात् उसके लिये जल या सुख होता ही है I इसे— इसप्रकार जानने वाले को अर्थात् इस प्र्कार जानने वाले के लिये (जल या सुख) होता है I

आपो वा अर्कस्तद्यदपॉं शर आसीत्तत्समहन्यत I सा पृथिव्यभवत्तस्यामश्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य तेजोरसो निरवर्तताग्नि: I (श्लोक 2)

अर्थ-यह 'आप्' और 'अर्क' एक ही बात है--प्रकृति की द्रवावस्था का नाम 'आप्' है, और इसी का नाम 'अर्क' है । 'आप्', अर्थात् द्रवावस्था प्रकृति का जो शर था, अर्थात् ऊपर-ऊपर का हिस्सा था, वह महान् हो गया, कड़ा हो गया। आधे बिलोये दही में ऊपर-ऊपर जो

Page 258 of 331

Page 259 of 331

झाग आ जाती है उसे 'शर' कहते हैं, वह मक्खन बन कर कड़ी हो जाती है, ऐसे ही 'आप्' का हिस्सा जमकर कड़ा पड़ गया, वही 'पृथ्वी' बन गया, नीचे का हिस्सा तरल हो कर 'जल' बन गया । उसमें फिर मृत्यु-रूप ब्रह्म ने श्रम किया । उसके श्रम करने पर, और तप उठने पर, उसके तेज का रस निकल पड़ा, जिसे 'अग्नि' कहा जाता है । इसप्रकार 'आप्' अर्थात् द्रवावस्था प्रकृति से जल, पृथिवी और अग्नि--ये तीन पदार्थ उत्पन्न हो गये ।

शङ्कराचार्य इसके विषय में इसप्रकार बताते हैं---

‘जलसे विराट् रूप अग्निकी उत्पत्ति’---

क: पुनरसावर्क: ? इत्युच्यते---

यह अर्क कोंन हैं? सो बतलया जाता है---

अर्थ-आप (जल) ही अर्क है I उस जलका जो शर (स्थूल-भाग) था वह एकत्रित हो गया I वह पृथिवी हो गयी I [मेरी व्यक्तिगत जानकारी के अनुसार हमें बचपन में पढ़ाया और बताया गया था कि पृथिवी सूर्य का भाग है, इस प्रस्तुत श्लोकार्थ से तो विज्ञान अथवा भूगोलविदों द्वारा दी गई जानकारी असत्य हो गई I] उसके उत्पन्न होनेपर वह (मृत्यु) थक गया I उस थके और तपे हुए प्रजापतिके शरीरसे उसका सारभूत तेज अग्नि प्रकट हुआ I

भाष्य-आपो वै या अर्चनाङ्गभूता एवार्कोS ग्नेरर्कस्य हेतुत्वात् I अप्सु चाग्नि:

Page 259 of 331

प्रतिष्ठित इति । न पुन : साक्षादेवार्कस्ता :, तासामप्रकरणात् , अग्नेश्च प्रकरणम् । वक्ष्यति च 'अयमग्निरर्क :' (बृह्हदारण्यकोपनिषद् ब्राह्मण 1 अध्याय 2 श्लोक 7) इति ।

तत्त्र यदपां शर इव शरो दध्न इव मण्ड्भूतमासीत्त -त्समहन्यत सङ्घातमापद्यत तेजसा बाह्यान्त :पच्यमान्म् । लिङ्गव्यत्ययेन वा यो S पां शर : स समहन्यतेति । सा पृथिव्यभवत्स संघातो येयं पृथिवी साभवत् । ताभ्यो S द्भ्यो S ण्डभिनिर्वृत्तमित्यर्थ : ।

तस्यां पृथिव्यामुत्पादितायां स मृत्यु : प्रजापतिरश्राम्य -च्छ्रमयुक्तो बभूव । सर्वो ही लोकः कार्य कृत्वा श्राम्यति । प्रजापतेश्च तन्महत्कार्यं यत्पृथिवीसर्ग : ।

किं तस्य श्रान्तस्य ? इत्युच्यते तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य खिन्नस्य तेजोरसस्तेज एव रसस्तेजोरसो रस: सारो निरवर्तत प्रजापतिशरीरान्निष्क्रान्त इत्यर्थ : । को S सौ निष्क्रान्त : ? अग्नि : । सो S ण्डस्यान्तर्विराट्प्रजापति : प्रथमज : कार्यकरणसंघातवान् जात : । "स वै शरीरी प्रथम :" इति स्मरणात ।

अर्थ - निश्चय ही जल जो अर्चनका अङ्गभूत है वही अर्क है , क्योंकि वह अर्कसंज्ञक अग्निका हेतु है । कारण , जलमें ही अग्नि प्रतिष्ठित है । किंतु वह

Page 261 of 331

साक्षात् अर्क नहीं है, यह तो अग्निका ही प्रकरण है I ‘यह अग्नि अर्क है’ ऐसा श्रुति कहेगी भी I

वहाँ उस जलका जो शरके समान शर अर्थात् दहीके मण्ड अर्थात् घृतपिण्ड के समान स्थूल भाग था वह संहत हो गया I अर्थात् बाहर और भीतरसे तेजके द्वारा परिपक्व होता हुआ वह इकट्ठा हो गया I अथवा ‘यत्’ का लिंड्ग़व्यत्यय कर ‘य: अपां शर:’ जो जल का शर (स्थूलभाग) था वह एकत्रित हो गया—ऐसा अर्थ करना चाहिये I वह पृथिवी हो गयी, I तात्पर्य यह कि उस जलसे यह ब्रह्माण्ड निष्पन्न हो गया I

उस पृथिवीके उत्पन्न होनेपर वह मृत्यु यानी प्रजापति श्रान्त—श्रमयुक्त हो गया, क्योंकि कार्य करके सभी लोग श्रांत हो जाते हैं और पृथिवीकी रचना करना—यह प्रजापतिका बड़ा कार्य था I

उस थके हुए प्रजापतिका क्या हुआ? सो बतलाया जता है—उस श्रान्त—तपे हुए अर्थात् खेदको प्राप्त हुए प्रजापतिका जो तेजोरस थ, तेज ही जो रस है उसका नाम ‘तेजोरस’ है, रस सार को कहते हैं, वह निर्वर्तित हुआ अर्थात् प्रजापतिके शरीरसे बाहर निकल आया I यह कौन निकला? अग्नि I वह इस अण्डे के भीतर प्रथम उत्पन्न हुआ कार्यकरणसंघातवान् विराट् प्रजापति हुआ, क्योंकि इस विषयमें “वही प्रथम शरीरी है” यह स्मृति प्रमाण है I

Page 261 of 331

सत्रेधात्मानं व्यकुरुतादित्यं तृतीयं वायु
तृतीयँ सा एष प्राणस्त्रेधा विहित : । तस्य
प्राची दिक्शिरो **S** सौ चासौ चेर्मौ । अथास्य
प्रतीची दिक्पुच्छमसौ चासौ च सक्थ्यौ दक्षिणा
चोदीची च पार्श्वे द्यौ :
पृष्ठमन्तरिक्षमुदरमियमुर : स एषो **S** प्सु
प्रतिष्ठितो यत्र क्व चैति तदेव
प्रतितिष्ठत्येवं विद्वान् । (श्लोक 3)

अर्थ -अब मृत्यु -रूप -ब्रह्म ने अपने तेजोमय -रूप शरीर को तीन स्थानों में बांट लिया । उसका अग्नि -रूप पृथिवी पर रहा , 'आदित्य '-रूप द्यु में और 'वायु '-रूप अंतरिक्ष में चला गया। इस प्रकार तेजोमय ब्रह्म का प्राण तीन स्थानों में बंट गया ,और द्यु -लोक से लेकर पृथिवी तक विशाल शरीर को धारण कर तेजोमय -रूप वह ब्रह्म जड़ -जगत् के रूप में शरीर -धारी हो गया। उसके विशाल जड़ -जगत् -रूपी शरीर का वर्णन कौन करे ? पूर्व -दिशा उसका सिर है , और देखो 'वह' और 'वह'--उत्तर -पूर्व और दक्षिण -पूर्व --दूर -दूर तक जा रही ये दिशाएं उसकी दोनों भुजाएं हैं । पहले सृष्टि को अश्व मानकर वर्णन किया गया है , इसलिये इस सृष्टि -रूपी अश्व की कोई पूंछ भी तो चाहिए ! वह देखो , पश्चिम -दिशा उसकी पूंछ है , और देखो 'वह' और 'वह'--उत्तर -पश्चिम और दक्षिण -पश्चिम --दूर तक जा रही ये दिशाएं उसकी दोनों रानें हैं । दक्षिण और उत्तर दिशा उसके दोनों पासे हैं। द्यौ : पीठ है , अंतरिक्ष उदर है , पृथिवी छाती है , और यह

Page 263 of 331

विशाल-काय सृष्टि-रूपी-अश्व जो मृत्यु-रूप-ब्रह्म का शरीर है, 'आप्' में से, द्रवावस्था-रूप प्रकृति में से उठकर खड़ा हुआ है, इसलिये उसी में प्रतिष्ठित है । जो इस रहस्य को जानता है वह जहां- कहीं जाता है वहीं प्रतिष्ठा पाता है । (उपनिषदों तथा गीता में इस विशाल विश्व को ही ब्रह्म का प्रत्यक्ष-शरीर कहा है । जैसे आत्मा का शरीर यह पिंड प्रत्यक्ष दीखता है वैसे ब्रह्म का शरीर यह ब्रह्माण्ड प्रत्यक्ष दीख रहा है। ब्रह्म को देखने कहीं दूर जाना नहीं पड़ता, यह विशाल पृथिवी, यह असीम एक आकाश, यह अथाह समुद्र, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारे-यही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, यही ब्रह्म का शरीर है ।)

शङ्कराचार्य इसके विषय में इसप्रकार बताते हैं---

‘विराट् रूप अग्निके अवयवोंमें प्राचीदिगादि- दृष्टि’

अर्थ-उसने अपनेको तीन प्रकारसे विभक्त किय I उसने आदित्यको तीसरा भाग किया और वायुको तीसरा I इसप्रकार यह प्राण तीन भागों में हो गय उसका पूर्व दिशा सिर है तथा इधर-उधरकी (ईशानी-आग्नेयी) दिशाएं बाहु हैं I इसीप्रकार पश्चिम दिशा इसका पुच्छ है तथा इधर-उधरकी (वायव्य-और नैर्ऋत्य) विदिशाएँ जङ्घाएं हैं I दक्षिण और उत्तर दिशायें उसके पार्श्व हैं, द्युलोक पृष्ठभाग है, अन्तरिक्ष उदर है, यह पृथिवी हृदय है I यह

Page 263 of 331

Page 264 of 331

अग्निरूप विराट् प्रजापति जलमें स्थित है I इसे इसप्रकार जाननेवाला पुरुष जहाँ-कहीन जाता है वहाँ प्रतिष्ठित होता है I

भाष्य-स च जात: प्रजापतिस्त्रेधा त्रिप्रकारमात्मानं स्वयमेव कार्यकरणसंघातं व्यकुरुत व्यभजदित्येतत् I कथं त्रेधा? इत्याह— आदित्यं तृतीयमग्निवाय्वपेक्षया त्रयाणां पूरणम् अकुरुतेत्यनुवर्तते I तथाग्न्यादित्यापेक्षया वायु तृतीयम् I तथा वाय्वादित्यापेक्षयाग्निं तृतीयमिति द्रष्टव्यम् I सामर्थ्यस्य तुल्यत्वात्त्रयाणां संख्यापूरणत्वे I

स एष प्राण: सर्वभूतानामात्मापि अग्निवाय्वादित्यरूपेण विशेषत: स्वेनैव मृत्य्वात्मना त्रेधा विहितो विभक्तो न विरा- ट्स्वरूपोपमर्दनेन I तस्यास्य प्रथमजस्याग्नेरश्वमेधोपयोगि-कस्यार्कस्य विराजश्चित्यात्मकस्य अश्वस्येव दर्शनमुच्यते I सर्वा हि पूर्वोक्तोत्पत्तिरस्य स्तुत्यर्थेत्यवोचामइत्थमसौ शुद्धजन्मेति I

तस्य प्राची दिक्शिरो विशिष्टत्वसामान्यात्
I असौ चासौ चैशान्याग्नेय्यौ ईर्मौ बाहू I ईरयतेर्गतिकर्मण: I अथास्याग्ने: प्रतीची दिक्पुच्छं जघन्यो भाग:, प्राङ्-मुखस्य प्रत्यग्दिक्सम्बन्धात् I असौ चासौ च

Page 264 of 331

वायव्यनैर्ऋत्यौ सक्थ्यौ सक्थिनी पृष्ठकोणत्वसामान्यात् । दक्षिणा चोदीची च पार्श्वे उभयदिक्सम्बन्धसामान्यात् । द्यौ : पृष्ठमन्तरिक्षमुदरमिति पूर्ववत् । इयमुर : अधोभागसान्यात् ।

स एषो S ग्नि : प्रजापतिरूपो लोकाद्यात्मको S ग्निरप्सु प्रतिष्ठित : "एवमिमे लोका अप्स्वन्त :" इति श्रुते : । यत्र क्व च यस्मि -न्कस्मिंश्चिदेति गच्छति तदेव -तत्रैव प्रतितिष्ठति स्थितिं लभते । कोS सौ ? एवं यथोक्तमप्सु प्रतिष्ठितत्वमग्नेर्विद्वान्विजानन् गुण -फलमेतत् ।

अर्थ -उत्पन्न हुए उस प्रजापतिने भूत और इन्द्रियसंघातरूप अपनेको त्रिधा —तीनप्रकारसे विकृत यानी विभक्त किया । किस प्रकार त्रिधा विभक्त किया ? सो बतलाते हैं —उसने अग्नि और वायुकी अपेक्षा आदित्यको तीसरा बनाया ; अर्थात् तीन संख्याओं का पूरक बनाया । इस वाक्यकी अनुवृत्ति होती है । इसीप्रकार अग्नि और आदित्यकी अपेक्षा अपेक्षा वायुको तृतीय बनाया तथा वायु और आदित्यकी अपेक्षा अग्निको तृतीय बनाया —ऐसा समझना चाहिये , क्योंकि तीनकी संख्याको पूर्ण करनेमें इन तीनों ही की शक्ति समान है ।

Page 266 of 331

सम्पूर्ण भूतों का आत्मा होनेपर भी यह प्राण विशेषत: अपने मृत्युरूपसे ही, न कि अपने विराट् स्वरूप का लय करके, अग्नि, वायु, और आदित्यरूपमें तीन प्रकारका हो गया; अर्थात् तीन रूपों में विभक्त हो गया I उस प्रथम उत्पन्न हुए इस अग्निकी — अश्वमेध कर्ममें उपयोगी अर्ककी अर्थात् चितिस्वरूप विराट् की यह अश्वके समान दृष्टि कही जाती है I हमने पूर्वमें इसकी जो उत्पत्ति बतलायी है, वह सब स्तुतिके ही लिये है यह बात कह चुके हैं I अर्थात् इसप्रकार यह शुद्धजन्मा है—ऐसा बतलाने के लिये है I

विशिष्टतामें समान होने के कारण पूर्व दिशा उसका सिर है I यह और यह अर्थात् ईशानी और आग्नेयी विदिशाएं ईर्म—भुजाएं हैं I गत्यर्थक ‘ईर्’ धातुसे ‘ईर्म’ शब्द सिद्ध होता है I तथा इस अग्निकी पश्चिम दिशा पुच्छ यानी निम्नभाग है, क्योंकि पूर्व की ओर मुखवाला होने से पश्चिम दिशा से पुच्छका सम्बन्ध है I यह और यह अर्थात् वायव्य और नैर्ऋत्य कोण सक्थियां (जङ्घाऍ) हैं, क्योंकि पृष्ठभागके कोण होनेमें उनके साथ उनकी समानता हैI दक्षिण और उत्तर दिशाएं उनके पार्श्वभाग हैं, क्योंकि इन दोनों दिशाओं से सम्बन्ध होनेमें पार्श्वों की समानता है I तथा द्युलोक पीठ और अन्तरिक्ष उदर है—ऐसा पूर्ववत् समझना चाहिये और अधोभागमें समानता होने के कारण यह पृथिवी हृदय है I
Page 266 of 331

“इस प्रकार ये लोक जल के भीतर हैं ” इस श्रुति के अनुसार वह यह लोकादि स्वरूप प्रजापतिरूप अग्नि जल में स्थित है । [इस उपासनाका फल -] वह जहाँ कहीं —जिस किसी देश में जाता है तदेव —वहाँ ही (अर्थात् उसी स्थान पर) प्रतिष्ठित होता —स्थिति प्राप्त करता है । ऐसा कौन है ? इस प्रकार उपर्युक्त रीति से अग्निका जलमें स्थित होना जाननेवाला । यह इस उपासनाका गौण फल है ।

सो **S** कामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनँ् समभवदशनाया मृत्युस्तद्यद्रेत आसीत्स संवत्सरो **S** भवत् **।** न ह पुरा तत **:** संवत्सर आस तमेतावन्तं कालमबिभ **: ।** यावान्संवत्सरस्तमेतावत **:** कालस्य परस्तादसृजत तं जातमभिव्याददात्स भाणकरोत्सैव वागभवत् **।** (श्लोक 4)

अर्थ -जड़-जगत् उत्पन्न होने के बाद उसका एक शरीर पूरा हो गया , अब उसके अन्दर अपने दूसरे शरीर को , चेतन -जगत् को , जिस जगत् में 'मन' तथा 'वाणी ' का व्यवहार होता है --उसे उत्पन्न करने की कामना उठी। उसने चाहा मेरा दूसरा शरीर भी हो जाय। पहले मृत्यु -रूप -ब्रह्म को संसार को खा जाने की भूख लगी थी , तो उसने प्रलय पर जाकर दम लिया था , जहां कुछ न रहा था ; अब उसे सृष्टि उत्पन्न करने की भूख लगी है , अब वह प्रत्येक वस्तु को उत्पन्न करने की अपनी भूख को मिटा कर ही दम लेगा , भूख से मर जो रहा है , ब्रह्म ठहरा तो क्या ! अपने इस दूसरे शरीर , अर्थात चेतन -जगत् को उत्पन्न करने के लिए उसने 'मन' को

Page 268 of 331

'वाणी' से जोड़ दिया--ऐसी सृष्टि होने लगी जो 'मन' तथा 'वाणी' से काम लेने लगी । ब्रह्म की प्रथम-शरीर की रचना के लिए जो भावना थी, उसने 'आप्' का रूप धारण किया था जिससे जड़-जगत् की सृष्टि हुई, अर्थात् 'आप' से जल, पृथिवी और अग्नि पैदा हुए, अब इस द्वितीय-शरीर, अर्थात् चेतन-जगत् की रचना के लिए ब्रह्म की जो भावना हुई उसने 'संवत्सर' का, काल का, समय का रूप धारण किया। चेतन-जगत् की उत्पत्ति से पहले संवत्सर का, समय का ज्ञान नहीं था। अग्नि-आदित्य-वायु, अर्थात् जड़-जगत् के लिए दिन-रात की मर्यादा क्या अर्थ रखती है, जीव-धारी के लिए ही समय का ज्ञान कुछ अर्थ रखता था, अतः चेतन-जगत् की उत्पत्ति के अनन्तर समय का विभाग काम में आने लगा । तो, अब तक क्या संवत्सर, अर्थात समय था ही नहीं ? था, परन्तु छिपा हुआ था, और इतनी देर तक छिपा रहा जितनी देर से अब यह प्रकट हो रहा है । महान काल तक जड़-जगत् ही रहा, इतनी देर तक संवत्सर का नामोनिशान न था, इसके अनन्तर जब चेतन-जगत् हुआ तब सम्वत्सर की, काल की रचना की गई । जब संवत्सर उत्पन्न हुआ, तो मृत्यु-रूप-ब्रह्म ने उसकी तरफ़ अपना भूखा मुंह खोला, सोचा अब सृष्टि उत्पन्न हो गई, फिर खाना शुरू करूं! इतने में संवत्सर चिल्ला पड़ा, भाण्- भाण् करने लगा, बस तभी से 'वाणी' की उत्पत्ति हो गई, 'भाण्' शब्द 'वाणी' से जो मिलता है । सृष्टि के इस द्वितीय-क्रम के, अर्थात् जड़-जगत् से चेतन-जगत् के आने में जबकि 'वाणी' का व्यवहार प्रारम्भ हुआ,

Page 268 of 331

बहुत भारी समय लगा , इतना समय कि मृत्यु -रूप -ब्रह्म भूख से व्याकुल होकर समय की प्रतीक्षा न कर सका , समय को ही खाने को दौड़ पड़ा । तब जाकर 'वाक् -शक्ति ' का जन्म हुआ , उस शक्ति का जो जड़ तथा चेतन का भेद करती है , जो अदृश्य -रूप में 'मन' तथा दृश्य -रूप में 'वाणी ' कहलाती है ।

शङ्कराचार्य इसके भाष्य में इसप्रकार बताते हैं ---

‘संवत्सर और वाक् की उत्पत्ति ’---

यो S सौ मृत्यु : सो S बादिक्रमेणात्मनात्मानम् अण्ड्स्यान्त : कार्यकरणसंघातवन्तं विराजमग्निमसृजत , त्रेधा चामात्मान -मकुरुतेत्युक्तम् । स किंव्यापार : सन्नसृजत ? इत्युच्यते —

यह जो मृत्यु था उसने स्वयं ही अपनेको ब्रह्माण्डके अंदर जलादिके क्रमसे कार्यकरणसंघातवान् विराट् अग्निके रूपमें रचा और अपनेको तीन भागोंमें विभक्त क्या —यह पहले कहा जा चुका है । उसने क्या व्यापार करते हुये तह रचना की ? सो बतलाया जाता है ---

अर्थ -उसने कामना की कि मेरा दूसरा शरीर उत्पन्न हो ; उस अशनायारूप मृत्युने मनसे वेदरूप मिथुनकी भावना की । उससे जो रेत (बीज) हुआ , वह संवत्सर हुआ । इससे पूर्व सम्वत्सर नहीं था । उस संवत्सरको , जितना संवत्सर का काल होता है , उतने समय तक वह

(मृत्युरूप प्रजापति) गर्भमें धारण किये रहा । इतने समयके पीछे उसने उसको उत्पन्न किया । उस उत्पन्न हुए कुमारके प्रति मुख फाड़ा । इससे उसने 'भाण् ' ऐसा शब्द किया । वही वाक् हुआ ।

भाष्य -स मृत्युरकामयत कामितवान् । किम् ? द्वितीयो में ममात्मा शरीरं येनाहं शरीरी स्यां स जायेतोत्पद्येत इत्येव -मेतदकामयत । स एवं कामयित्वा मनसा पूर्वोत्पन्नें वाचं त्रयीलक्षणां मिथुनं द्वंद्वभावं समभवत्सम्भवनं कृतवान्मनसा त्रयीमालोचितवान् । त्रयीविहितं सृष्टिक्रमं मनसान्वालोचय -दित्यर्थ : कोऽसौ ? अशनायया लक्षितो मृत्यु : । अशनाया मृत्युरित्युक्तम् । तमेव परामृशत्यन्यत्र प्रसङ्गो मा भूदिति ।

तद्यद्रेत आसीत् —तत्तत्र मिथुने यद्रेत आसीत् , प्रथम -शरीरिण ; प्रजापतेरुत्पत्तों करनाना रेतो बीजं ज्ञानकार्यरूपम् , त्रय्यालोचनायां यद् दृष्ट्वानासीजन्मान्तरकृतम् ; तद्भाव -भावितो ऽप: सृष्ट्वा तेन रेतसा बीजेनाप्स्वनुप्रविश्य अण्डरूपेण गर्भीभूत : स संवत्सरो ऽभवत् , संवत्सरकालनिर्माता संवत्सर : प्रजापतिरभवत् । न ह, पुरा पूर्वम् , ततस्तस्मात्संवत्सर कालनिर्मातु : प्रजापते :, संवत्सर : कालो नाम नास न बभूव ह ।

तं संवत्सरकालनिर्मातारमन्तर्गर्भं प्रजापतिम् , यावानिह प्रसिद्ध : काल एतावन्तमेतावत्संवत्सरपरिमाणं कालमबिभ : भृतवान्मृत्यु : । यावन्संवत्सर इह प्रसिद्ध :, तत: परस्तात्किं कृतवान् ? तमेतावात : कालस्य संवत्सरमात्रस्य परस्ताद्

ऊर्ध्वमसृजत सृष्टवान् , अण्डमभिनदित्यर्थ :, तमेव कुमारं जातमग्निं प्रथमशरीरिणम् , अशनायावत्त्वान्मृत्युरभिव्याददान्मुखविदारणं कृतवानत्तुम् ; स च कुमारो भीत : स्वाभाविक्याविद्यया युक्तो भाणित्येवं शब्दमकरोत् । सैव वागभवत् , वाक् —शब्दो S भवत् ।

अर्थ - उस मृत्यु ने कामना की । क्या कामना की ? मेरा दूसरा आत्मा यानी शरीर , जिससे मैं शरीरधारी होऊं , उत्पन्न हो —इसप्रकार उसने कामना की । इसप्रकार कामना कर उसने पहले उत्पन्न हुए मन से वेदत्रयीरूपा वाणीकी मिथुनद्वन्द्वभावसे भावना की । अर्थात् मनके द्वारा वेदत्रयी की आलोचना की । वेदत्रयीविहित सृष्टिक्रमका मन से विचार किया —ऐसा इसका तात्पर्य है । यह कौन था ? अशनाया (क्षुधा , भूख) से लक्षित मृत्यु । ‘अशनाया मृत्यु है ’ ऐसा कहा जा चुका है । श्रुति उसीका यहाँ परामर्श अथवा उल्लेख करती है , जिससे किसी अन्य का प्रसंग न हो जाय ।

उससे जो रेत हुआ—उस मिथुनसे जो रेत हुआ, प्रथमशरीरी प्रजापतिसे उत्पत्तिमें हेतुभूत जो रेत यानी बीज हुआ, अर्थात् वेदकी आलोचना करने पर उसने जो जन्मान्तरकृत ज्ञानकर्मरूप बीज देखा उस बीजभावसे भावित होकर जलकी रचना कर उस रेतरूप बीजके द्वारा जलमें प्रवेश कर अण्डरूपसे गर्भस्थ रह वह संवत्सर हुआ I अर्थात् वह संवत्सररूप काल का निर्माता संवत्सर प्रजापति हुआ I उस संवत्सरकालनिर्माता प्रजापतिसे पूर्व संवत्सर नामक काल नहीं था I

उस संवत्सरकालनिर्माता गर्भस्थ प्रजापति को, जितना कि यह प्रसिद्ध काल है उतने समय तक अर्थात् एक संवत्सर्व्यापी काल तक मृत्यु ने धारण किया; जितना इस लोक में संवत्सर प्रसिद्ध है (उतने समय तक गर्भ में रखा) I इसके पीछे उसने क्या किया? इतने यानी संवत्सरमात्र काल के पश्चात् उसने उसकी रचना की अर्थात् उस अण्डेको फोड़ दिया I क्षुधायुक्त होने क़े कारण मृत्यु ने इसप्रकार उत्पन्न हुए उस प्रथमशरीरी कुमार अग्निके प्रति उसे खाने के लिये मुँहफाड़ा I उस कुमार ने स्वाभाविकी अविद्यासे युक्त होने के कारण डरकर ‘भाण्’ ऐसा शब्द किया I वही वाक् हुआ, वाक्—यानी शब्द हुआ I

स ऐक्षत यदि वा इममभिम्ँस्ये कनीयोS न्नं करिष्य इति स तया वाचा तेनात्मनेद्ँ्सर्वमसृजत यदिदं किञ्चर्चो यजूँ्षि सामानि छन्दाँ्सि
Page 272 of 331

Page 273 of 331

यज्ञान्प्रज्ञा: पशून् I स यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमध्रित सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वम् I सर्वस्यैतस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतददितेरदितित्वं वेद I (श्लोक 5)

अर्थ-अब उस मृत्यु-रूप-ब्रह्म ने सोचा, मैं तो अपनी भूख मिटाने के लिए एक विशाल शरीर की रचना कर फिर उसे खाने में लग जाना चाहता था, यह क्या, यह तो नन्हीं-सी-बच्ची--- 'वाणी'--उत्पन्न हो गई, इसे खा जाऊंगा, तो क्या अन्न बनेगा! ऐसा सोचकर उसने इस। छोटी-सी वाणी से ही यह सब रच डाला, ऋचाएं, यजु, साम, छन्द, यज्ञ, मनुष्य और पशु । इसप्रकार उसका चेतन-जगत् के रूप में दूसरा शरीर भी तैयार हो गया । अब जो-जो कुछ उसने रचा था, उसे फिर खाने लगा ।वह सब खा जाता है, तभी मृत्यु को 'अदिति' कहते हैं, अदिति का अदितिपन यही है कि वह सब 'अद्-भक्षणे' के अनुसार भक्षण कर जाता है, सफ़ा-चट कर जाता है । जो इसप्रकार अदिति के अदिति-रूप को जानता है, वह सबका 'अत्ता' अर्थात भोक्ता हो जाता है, संसार का सब-कुछ उसके सामने 'अन्न' की तरह ढेर हो जाता है ।

शङ्कराचार्य इसके विषय में इसप्रकार बताते हैं---

अर्थ-उसने विचार किया,

‘यदि मैं इसे मार डालूँगा
तो यह थोड़ा सा ही अन्न [भोजन] करूंगा’ अत: उसने उस वाणी और उस मनके द्वारा इन सबको रचा, जो कुछ भी ये ऋक्, यजु:, साम, छन्द, यज्ञ, प्रज्ञा और पशु हैं I

Page 273 of 331

Page 274 of 331

उसने जिस-जिसकी रचना की उसी-उसी को खाने का विचार किया I वह सबको खाता है, यही उस अदिति का अदितित्व है I जो इस प्रकार इस अदिति के अदितित्व को जानता है वह इस सबका अत्ता (भोक्ता) होता है और यह सब उसका अन्न होता है I

भाष्य—स ऐक्षत—स एवं भीतं कृतरवं कुमारं दृष्टवा मृत्युरैक्षतेक्षित्वान् अशनायावापि— यदि कदाचिद्वा इमं कुमारमभिमंस्ये— अभिपूर्वोमन्यतिर्हिंसार्थ:--हिंसिष्य इत्यर्थ:; कनीयोs न्नं करिष्ये कनीयोऽल्पमन्नं करिष्य इति I

एवमिक्षित्वा तद्भक्षणादुपरराम I बहु ह्यन्नं कर्तव्यं दीर्घकाल-भक्षणाय न कनीय: । तद्भक्षणे हि कनीयोऽन्नं स्याद्बीजभक्षण इव सस्याद्भाव: । स एवम्प्रयोजनमन्नबाहुल्यमालोच्य तयैव त्रय्या वाचा पूर्वोक्तया तेनैव चात्मना मनसा मिथुनीभावमालोचनमुप-गम्योपगम्येदं सर्वं स्थावरं जड्ग़मं चासृजत यदिदं किञ्च यत्कि- ञ्चेदम् I किं तत्? ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांसि च सप्त गायत्र्यादीनि स्तोत्रशस्त्रादिकर्माङ्गभूतांस्त्रिविधान् मन्त्रान्गायत्र्या-दिच्छन्दोविशिष्टान् यज्ञांश्च ग्राम्यानारण्यान्कर्म-साधनभूतान् I

ननु त्रय्या मिथुनीभूतया सृजतेत्युक्तम्, ऋगादीनीह कथमसृजतेति?

Page 274 of 331

नैष दोष :, मनस्त्वव्यक्तोऽयं मिथुनीभावस्त्रय्या , बाह्यस्तु ऋगादीनां विद्यमानानामेव कर्मसु विनियोगभावेन व्यक्तिभाव : सर्ग इति ।

स प्रजापतिरेवमन्नवृद्धिं बुद्ध्वा यद्यदेव क्रियां क्रियासाधनं फलं वा किञ्चिदसृजत तत्तदत्तुं भक्षयितुमध्रियत धृतवान्मन : । सर्वं कृत्स्नं वै यस्मादत्तीति तत्तस्माददितेरदितिनाम्नो मृत्योरदितित्वं प्रसिद्धम् । तथा च मन्त्र :-“अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्मात ा स पिता ” (यजु॰सं॰ 25/23) इत्यादि : ।

सर्वस्यैतस्य जगतो ऽन्नभूतस्यात्ता सर्वात्मनैव भवत्यन्यथा विरोधात् । न हि कश्चित्सर्वस्यैको ऽत्ता दृश्यते तस्मात्सर्वात्मा भवतीत्यर्थ : । सर्वमस्यान्नं भवति ; अत एव सर्वात्मनो ह्यत्तु सर्वमन्नं भवतीत्युपपद्यते । य एवमेतद्याथोक्तमदितेर्मृत्यो : प्रजापते : सर्वस्य अदनादितित्वं वेद तस्यै तत् फलम् ।

अर्थ - उसने विचार किया –इसप्रकार डरकर शब्द करनेवाले उस कुमार को देखकर मृत्यु ने क्षुधायुक्त होने पर भी विचार किया —यदि कदाचित् मैं इस कुमार को मार डालूंगा —‘अभि’पूर्वक ‘मन् ’ धातु का अर्थ धातुका अर्थ हिंसा होता है —अत:

Page 276 of 331

‘अभिमंस्ये’ का अर्थ ‘मार डालूंगा’ ऐसा होगा, तो मैं कनीय अन्न करूंगा; कनीय यानी बहुत ही थोडा अन्न भोजन करूंगा ।

ऐसा सोचकर वह उसे भक्षण करने से रुक गया, [और सोचने लगा कि] बहुत समय तक खाने के लिये मुझे बहुत-सा अन्न [संग्रह] करना चाहिये, थोड़ा- सा नहीं । जिसप्रकार बीजको खा लेनेपर तो मेरे लिए थोड़ा सा ही अन्न होगा । ऐसे उद्देश्य से अन्नाकी बहुलता के लिए विचारकर उसने उस पूर्वोक्त त्रयीरूपा वाणीसे उसी आत्मा यानी मनसे मिथुनीभाव अर्थात् आलोचनाको प्राप्त हो-होकर यह जो कुछ है उस सारे स्थावर और जङ्गम जगत् की रचना की I वह क्या है? ऋक्, यजु:, साम, गायत्री आदि छन्दोंसे युक्त स्तोत्र-शास्त्रादि कर्मोंके अङ्गभूत तीन प्रकारके मन्त्र, उनसे सम्पन्न होने वाले यज्ञ, उन्हें करनेवालीप्रजा तथा कर्मके साधनभूत ग्राम्य और वन्य पशु [इन सब को रचा]

शंका—किन्तु पहले तो कहा गया था कि मिथुनीभूत त्रयीरूपा वाणीसे उसने रचना की, फिर उसके द्वारा उसने ऋगादिको कैसे रचा?

समाधान- यह कोई दोष नहीं है । मनका जो त्रयीके साथ मिथुनीभाव है वह तो अव्यक्त है । उन [अव्यक्तरूपसे] विद्यमान ऋगादिका ही कर्ममें विनियोगरूपसे जो बाह्य व्यक्तीभाव है वही उनकी रचना है ।

Page 276 of 331

उस प्रजापतिने इस प्रकार अन्नकी वृद्धि होती जानकर जिस -जिस भी क्रिया या क्रियाके साधनभूत फलकी रचना की उसी -उसी को भक्षण करनेके लिए मनमें विचार किया। इसप्रकार क्योंकि वह सभीको भक्षण करता है , इसलिए उस अदिति अर्थात् अदिति -नामक मृत्युका अदितित्व प्रसिद्ध है । इस विषयमें यह मन्त्र प्रमाण है —“अदिति द्युलोक है , अदिति अन्तरिक्ष है , अदिति माता है और वही पिता है ” इत्यादि।

इस अन्नभूत सम्पूर्ण जगत् का वह सर्वात्मभावसे ही अत्ता (भक्षण करनेवाला) है ; क्योंकि बिना सर्वात्मभावके सबका अत्ता हो , ऐसा देखा नहीं जाता ; इसलिये तात्पर्य यह है कि [इसप्रकार उपासना करनेवाला] वह सर्वात्मा हो जाता है । सबकुछ उसका अन्न हो जाता है , अत: जो सर्वात्मभावसे अत्ता है उसीका सबकुछ अन्न होना सम्भव है । यह फल उसे मिलता है जो इसप्रकार इस उपर्युक्त अदितिसंज्ञक मृत्यु प्रजापतिका सबका अदन (भक्षण) करनेसे अदितित्व जानता है ।

सोऽकामयत भूयसा यज्ञेन भूयो यजेयेति । सो **S** श्राम्यत्स

तपो **S** तप्यत तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य यशो वीर्यमुदक्रामत् । प्राणा

Page 278 of 331

वै यशो वीर्यं तत्प्राणेषूत्क्रान्तेषु शरीरँ् श्वयितुमध्रियत तस्य शरीर एव मन आसीत् I (श्लोक 6)

अर्थ-अब तक सृष्टि-रूप दो यज्ञ हुए-- 'जड़-जगत्' और 'चेतन-जगत्'। उस मृत्यु-रूप-ब्रह्म ने फिर कामना की, एक भारी यज्ञ से फिर यज्ञ करूं । इस उद्देश्य से उसने श्रम किया । उसके श्रम तथा तप कर चुकने पर उसके 'यशोवीर्य' का उदय हुआ । 'प्राण' ही 'यशोवीर्य' है । 'यशोवीर्य का उदय हुआ'--का अभिप्राय है, यशस्वी और वीर्यवान् प्राणों का सब जगह संचार हुआ । यद्यपि सृष्टि उत्पन्न हो जाने पर उसने उसका भक्षण प्रारम्भ कर दिया था, तथापि इस भक्षण के साथ-साथ सृष्टि में प्राण-शक्ति का विस्तार बढ़ता गया, बढ़ती होती ही चली गईं, और बढ़ती होती ही जा रही है । भक्षण होते हुए भी बढ़ती होते जाना मृत्यु- रूप-ब्रह्म का भारी तीसरा यज्ञ है । प्राणों के सब जगह फैल जाने पर ब्रह्म का शरीर--जड़-चेतन---बढ़ने लगा । जैसे कृषक का मन खेत में लगा रहता है, वैसे मृत्यु-ब्रह्म का मन अपने शरीर की वृद्धि में लगा रहा ।

शंकराचार्य इसके विषय में इस प्रकार बताते हैं---

“प्रजापतिकी यज्ञकामना और उसके प्राण एवं वीर्यका निष्क्रमण”

अर्थ- उसने यह कामना की कि मैं पुन: बड़े भारी यज्ञसे यजन करूँ I इससे वह श्रमित हो गया I उसने तप

Page 278 of 331

किया । उस श्रमित और तपे हुए मृत्युका यश और वीर्य निकल गया । प्राण ही यश और वीर्य हैं । तब प्राणोंके निकल जाने पर शरीर ने फूलना आरम्भ किया । किन्तु उसका मन शरीर में ही रहा ।

भाष्य :---

सो S कामयतेत्यश्वाश्वमेधयोर्निर्वचनार्थमिदमाह —भूयसा महता यज्ञेन भूय : पुनरपि यजेयेति जन्मान्तरकरणापेक्षया भूय :शब्द : । स प्रजापति : जन्मान्तरेऽश्वमेधेनायजत । स तद्भावभावित एव कल्पादौ व्यावर्तत । सो S श्वमेधक्रियाकारक - फलात्मत्वेन निर्वृत्त : सन्नकामयत भूयसा यज्ञेन भूयो यजेयेति । एवं महत्कार्यं कामयित्वा लोकवदश्राम्यत् ।

स तपो S तप्यत । तस्य श्रान्तस्य तप्तस्येति पूर्ववत् , यशो वीर्य -मुदक्रामदिति । स्वयमेव पदार्थमाह -प्राणाश्चक्षुरादयो वै यशो यशो - हेतुत्वात् तेषु हि सत्सु ख्यातिर्भवति , तथा वीर्यं बलमस्मिञ्शरीरे । न ह्युत्क्रान्तप्राणो यशस्वी बलवान्वा भवति । तस्मात्प्राणा एव यशो वीर्यं चास्मिञ्शरीरे । तदेवं प्राणलक्षणं यशो वीर्यमुदक्रामदुत् -क्रान्तवत् ।

तदेवं यशोवीर्यभूतेषु प्राणेषूत्क्रान्तेषु शरीरान्निष्क्रान्तेषु

तच्छरीरं प्रजापते : श्वयितुमुच्छूनभावं गन्तुमध्रियतामेध्यं चाभवत् ।

Page 280 of 331

तस्य प्रजापते: शरीरान्निर्गतस्यापितस्मिन्नेव शरीरे मन आसीद्यथा कस्यचित्प्रिये विषये दूरं गतस्यापि मनो भवति तद्वत्।

अर्थ-

‘सोS कामयत’ इत्यादि वाक्यसे श्रुति अश्व और अश्वमेधका निर्वचन करने के लिये यह कह्ती है—मैं पुन: महान् यज्ञसे यजन करूं । यहां जन्मान्तरमें यज्ञानुष्ठान करनेकी अपेक्षासे ‘भूयस्’ (महान्) शब्द दिया है । उस प्रजापतिने जन्मान्तरमें अश्वमेध यज्ञद्वारा यजन किया था । इसलिये उसकी भावनासे युक्त हुआ ही वह कल्पके आरम्भमें प्रजापति हुआ । अश्वमेधके क्रिया, कारक और फलरूपसे सम्पन्न होकर उसने कामना की कि मैं पुन: महान् यज्ञ द्वारा यजन करूं । इसप्रकार महान् यज्ञ द्वारा यजन करूं । इस प्रकार महान् कार्यके लिये कामना करके वह अन्य लोगों के समान श्रमित हो गया ।

उसने तप किया । उस श्रान्त तपे हुए का—ऐसा पूर्ववत् समझना चाहिये—यश और वीर्य निकल गया । अब श्रुति स्वयं ही (यश और वीर्य) पदों का अर्थ बतलाती है चक्षु आदि जो प्राण हैं; वे ही यशके हेतु होनेके कारण यश हैं क्योंकि उनके रहनेपर ही ख्याति होती है । तथा वे ही इस शरीर में वीर्य यानी बल हैं । वे इसप्रकार के प्राणरूप यश और वीर्य निकल गये ।

Page 280 of 331

तब इसप्रकार यश और वीर्यभूत प्राणोंके उत्क्रमण करनेपर अर्थात् शरीरसे निकल जाने पर प्रजापतिके उस शरीरने श्वयन —उच्छूनता (फुलनारूप विकार अर्थात् फूलना आरम्भ किया) को प्राप्त होना आरम्भ किया ; अर्थात् वह अमेध्य (अपवित्र) हो गया।

किंतु जिस प्रकार किसी प्रिय वस्तुके दूर हो जाने पर भी उसीमें मन रहता है वैसे ही शरीरसे निकल जानेपर भी उस प्रजापति का मन उस शरीर में ही रहा

सो **S** कामयत, मेध्यं म इदँ् स्यादात्मन्व्यनेन स्यामिति । ततो **S** श्व : समभवद्यदश्वत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वम् । एष ह वा अश्वमेधं वेद य एनमेवं वेद। तमनवरुध्यैवामन्यत । तँ् सम्वत्सरस्य परस्तादात्मन आलभत । पशून्देवताभ्य : प्रत्यौहत् । तस्मात् सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभन्ते । एष ह वा अश्वमेधो य एष तपति तस्य संवत्सर आत्मा S यमग्निरर्कस्तस्येमे लोका आत्मानस्तावेतावर्काश्वमेधौ । सो पुनरेकैव देवता भवति मृत्युरेवाप पुनर्मृत्युं जयति नैनं मृत्युराप्नोति मृत्युरस्यात्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति । (श्लोक 7)

अर्थ -मृत्यु -ब्रह्म के कामना की कि मेरे शरीर की 'वृद्धि ' तो होती जा रही है , यह शरीर यों ही न फूलता जाय , इसमें 'पवित्रता ' अवश्य हो । उसने यह

Page 282 of 331

चाहा कि मैं 'आत्मन्वी'--आत्मा, अर्थात् शरीर वाला--तो होऊं, परन्तु 'मेध्य', अर्थात् पवित्र शरीर वाला [मेधा-बुद्धि का पात्र, (ज्ञेय), यज्ञीय (अर्थात् यज्ञ का अधिकारी);] होऊं । क्योंकि मृत्यु-ब्रह्म का शरीर बढ़ता जा रहा था, इसलिये इसे 'अश्व' कहते हैं, 'अश्व' का अर्थ है, बढ़ना, फूलना, और क्यों कि वह उसे 'मेध्य'--पवित्र--चाहता था, इसलिये इस विकसित सृष्टि का नाम 'अश्वमेध' हुआ। यही अश्वमेध का अश्वमेधपना है, और जो इस रहस्य को समझता है वही अश्वमेध के वास्तविक-रूप को जानता है। जैसे 'अश्वमेध' का घोड़ा एक वर्ष तक बिना रोके खुला विचरता है, वैसे सृष्टि-रूप-अश्व को मृत्यु- ब्रह्म ने बिना रोके बढ़ने दिया, परन्तु फिर जैसे अश्वमेध के घोड़े को वापस बुला लिया जाता है, वैसे संवत्सर के बाद फिर उस अश्व-रूप-सृष्टि का ब्रह्म ने अपने में ग्रहण कर लिया, तभी तो एक वर्ष बाद शीत-उष्ण-शरद्-वसन्त का चक्र फिर दोबारा चल पड़ता है । सृष्टि का जो मुख्य--'अश्व'-रूप--था उसका तो मृत्यु-ब्रह्म ने स्वयं भोग लगाया, और जो गौण-- पशु-रूप--था उसे अन्य देवताओं के सुपुर्द कर दिया। मृत्यु-ब्रह्म तो सूर्य-चन्द्र-पृथिवी आदि को भोगता है, और सूर्य-चन्द्र-पृथिवी आदि अन्य-अवान्तर-जगत् को भोगते हैं । इस प्रकार यह विशाल-संसार सब देवताओं का सिंचा-सिंचाया प्राजापत्य-भोग है--यह मानो निरन्तर अश्व-मेध-यज्ञ हो रहा है ।

Page 282 of 331

Page 283 of 331

(उपनिषदों में याज्ञिक-क्रियाओं को हेय माना है । जहां-तहां उनका कर्मकाण्ड-परक अर्थ न करके ज्ञानकाण्ड-परक अर्थ किया है । इस स्थल में भी अश्वमेध--यज्ञ का कर्मकाण्ड-परक अर्थ न करके ज्ञानकाण्ड-परक अर्थ किया गया है ।)

अथवा, यह जो 'सूर्य' तप रहा है, यह भी 'अश्वमेध' यज्ञ हो रहा है। 'सम्वत्सर' इसका शरीर है । 'संवत्सर' के अन्दर-ही-अन्दर यह अपना यज्ञ पूरा कर लेता है । तपना ही इसका यज्ञ है । अथवा यह 'अग्नि', जिसे 'अर्क' भी कह सकते हैं, 'अश्वमेध' ही कर रही है । 'लोक' इसके शरीर हैं, सब लोकों में यह व्याप्त है । 'अश्व' बढ़ने का नाम है, सब लोकों में निहित अग्नि सभी को बढ़ा रही है, यह 'अश्वमेध' ही है । इसप्रकार ये दोनों 'अर्क'--सूर्य तथा अग्नि-- 'अश्वमेध' ही हैं! अन्त में जाकर सूर्य, अग्नि आदि सब देवता मृत्यु-ब्रह्म में एक ही हो जाते हैं--वही इन सब पर छा रहा है। वह मृत्यु को जीत लेता है, उसे मृत्यु प्राप्त नहीं होती, मृत्यु उसका आत्मा हो जाता है, वह इन देवताओं में एक हो जाता है, जो इस रहस्य को जान लेता है ।

शङ्कराचार्य इसके विषय में इसप्रकार बताते हैं---

‘अश्वमेधोपासना और उसका फल’—

स तस्मिन्नेव शरीरे गतमना: सन्किमकरोत्? इत्युच्यते—उस शरीरमें ही जिसका मन लगा हुआ है

Page 283 of 331

ऐसे उस प्रजापतिने क्या किया? सो बतलाया जाता है--

अर्थ--उसने कामना की, मेरा यह शरीर मेध्य (यज्ञिय) हो, मैं इसके द्वारा शरीरवान् होऊं; क्योंकि वह शरीर अश्वत् अर्थात् फूल गया था, इसलिये वह अश्व हो गया और वह मेध्य हुआ । अतः यही अश्वमेधका अश्वमेधत्व है । जो इसे इस प्रकार जानता है वही अश्वमेघको जानता है । उसने उसे अवरोधरहित (बन्धनशून्य) ही चिन्तन किया । उसने संवत्सरके पश्चात् उसका अपने ही लिये [अर्थात् इसका देवता प्रजापति है—ऐसे भावसे] आलभन किया, तथा अन्य पशुओंको भी देवताओंके प्रति पहुंचाया । अत: याज्ञिकलोग मंत्र द्वारा संस्कार किये हुए सर्वदेव सम्बंधी प्राजापत्य पशुका आलभन करते हैं । यह जो [सूर्य] तपता है वही अश्वमेध है । उसका संवत्सर शरीर है, यह अग्नि अर्क है, तथा उसके ये लोक आत्मा हैं । ये ही दोनों (अग्नि और आदित्य) अर्क और अश्वमेध हैं । किंतु वे मृत्युरूप एक ही देवता है । जो इस प्रकार जानता है वह पुनर्मृत्युको जीत लेता है, उसे मृत्यु नहीं पा सकता, मृत्यु उसका उसका आत्मा हो जाता है, तथा वह इन देवताओंमेंसे ही एक हो जाता है ।

भाष्य—सोऽकामयत, कथं? मेध्यं मेधार्हं यज्ञियं मे ममेदं शरीरं स्यात् I किञ्च आत्मन्व्यात्मवांश्चानेन शरीरेण शरीरवान्स्यामिति प्रविवेश I यस्मात्तच्छरीरं
Page 284 of 331

Page 285 of 331

तद्वियोगातयशोवीर्यं सद् अश्वद् अश्वयत् ततस्तस्मादश्व: समभवत् I ततोS श्वनामा प्रजापतिरेव साक्षादिति स्तूयते I यस्माच्च पुनस्तत्प्रवेशाद्गतयशोवीर्यत्वादमेध्यं सन्मेध्यमभू-त्तदेव तस्मादेवाश्वमेधस्याश्वमेधनाम्ना: क्रतोरश्वमेधत्वम् अश्वमेध-नामलाभ: I क्रियाकारक-फलात्मको हि क्रतु: स च प्रजपतिरेवेति स्तुयते I

क्रतुनिर्वर्तकस्याश्वस्य
प्रजापतित्वमुक्तम् ‘उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य’ इत्यादिना I तस्यैवाश्वस्य मेध्यस्य प्रजापतिस्वरूपस्याग्नेश्च यथोक्तस्य क्रतुफलमात्मरूपतया समस्योपासनं विधातव्यमित्यार-भ्यते I पूर्वत्र क्रियापदस्य विधायकस्याश्रुतत्वात् क्रियापदापेक्ष-त्वाच्च प्रकरणस्य अयमर्थोऽवगम्यते I

एष ह वा अश्वमेधंक्रतु वेद य एनमेवं वेद, य: कश्चिदेनमश्वमग्निरूपमर्कं च यथोक्तमेवं वक्ष्यमाणेन समासेन प्रदर्श्यमानेन विशेषणेन विशिष्टं वेद, स एषोऽश्वमेधं वेद नान्य: तस्मादेवं वेदितव्य इत्यर्थ: I

कथम्? तत्र पशुविषयमेव तावद्दर्शनमाह । तत्र प्रजापतिर्भूयसा यज्ञेन भूयो यजेयेति कामयित्वा आत्मानमेव पशुं मेध्यं कल्पयित्वा तं

Page 285 of 331

Page 286 of 331

पशुमनवरुध्यैवोत्सृष्टं पशुमवरोधकृत्वैव मुक्त- प्रग्रहममन्यताचिन्तयत् । तं संवत्सरस्य पूर्णस्य परस्तादूर्ध्वमात्मने आत्मार्थमालभत-- प्रजापतिदेवताकत्वेनेत्येतत्—आलभतालम्भं कृतवान् । पशूनन्यान्ग्राम्यानारण्यांश्च देवताभ्यो यथादैवतं प्रत्यौह-त्प्रतिगमितवान् ।

यस्माच्चैवं प्रजापतिरमन्यत तस्मादेवमन्योऽप्युक्तेन विधिना-त्मानं पशुमश्वं मेध्यं कल्पयित्वा-सर्वदेवत्योऽहं प्रोक्ष्यमाण आलभ्यमानस्त्वहं मद्देवत्य एव स्याम, अन्य इतरे पशवो ग्राम्यारण्या यथादैवतमन्याभ्यो देवताभ्य आलभ्यन्ते मदवयवभूता-भ्य एव-इति विद्यात् । अत एवेदानीं सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्य-मालभन्ते याज्ञिका: ।

‘एवमेष ह वा अश्वमेधो य एष तपति’—यस्त्वेवं पशुसाधनक: क्रतु: स एष साक्षात्फलभूतो निर्दिश्यत एष ह वा अश्वमेध: । कोऽसौ?

या एव सविता तपति जगदवभासयति तेजसा । तस्यास्य क्रतुफला-त्मन: संवत्सर: कालविशेष:, आत्मा शरीरं तन्निर्वर्त्यत्वात्संवत्सर-स्य ।

तस्यैव क्रत्वात्मन:, अग्निसाध्यत्वाच्च फलस्य क्रतुत्वरूपेणैव निर्देश:, अयं पार्थिवोऽग्निरर्क: साधनभूत: । तस्य चार्कस्य क्रतौ चित्यस्येमे लोकास्त्रयोऽप्यात्मान:

Page 286 of 331

Page 287 of 331

शरीरावयवा: । तथा च व्याख्यातं ‘तस्य प्राची दिक्’ इत्यादिना । तावग्न्यादित्यावेतौ यथाविशेषिता- वर्काश्वमेधौ क्रतुफले । अर्को य: पार्थिवोऽग्नि: स साक्षात्क्रतुरूप: क्रियात्मक: । क्रतोरग्निसाध्यत्वात्तद्रूपेणैव निर्देश:। क्रतुसाध्यत्वाच्च फलस्य क्रतुरूपेणैव

निर्देश आदित्योऽश्वमेध इति।

तौ साध्यसाधनौ क्रतुफलभूतावग्न्यादित्यौ, सा
उ पुनर्भूय एकैव देवता भवति । का सा? मृत्युरेव । पूर्वमप्येकैवासीत्क्रियासाधंफल-भेदाय विभक्ता । तथा चोक्तम् “स त्रेधात्मानं व्यकुरुत” (बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय 1 ब्राह्मण 2 श्लोक 3) इति सा पुनरपि क्रियानिर्वृत्त्युत्तरकालमेकैवदेवता भवति मृत्युरेव फलरूप: ।

य: पुनरेवमेनमश्वमेधं मृत्युमेकां देवता वेद । अहमेव मृत्युरस्म्य-श्वमेध एका देवता मद्रूपा अश्वाग्निसाधनसाध्येति सोऽपजयति पुनर्मृत्युं पुनर्मरणं सकृन्मृत्वा पुनर्मरणाय न जायत इत्यर्थ: । अपजितोऽपि मृत्युरेनं पुनराप्नुयादित्याश ङ्कयाह–नैनं मृत्युराप्नोति। कस्मात्? मृत्युरस्य एवंविद आत्मा भवति । किञ्च मृत्युरेव फलरूप: सन्नेतासां देवतानामेको भवति । तस्यैतत् फलम् ।

Page 287 of 331

Page 288 of 331

अर्थ—उसने कामना की I किस प्रकार?--- मेरा यह शरीर मेध्य—यज्ञिय हो जाय I तथा मैं आत्मन्वी— आत्मवान् अर्थात् इस शरीर से शरीरवान् हो जाऊं I ऐसा विचारकर उसने उसमें प्रवेश किया I क्योंकि वह शरीर उसके वियोगसे यशोवीर्यहीन होकर अश्वत्--- अश्वयत् अर्थात् फूल गया था, अत: उससे अश्व उत्पन्न हुआ I इसीसे अश्व नामका साक्षात् प्रजापति ही है—इस प्रकार उसकी स्तुति की जाती है I क्योंकि उसके पुन: प्रवेशसे वह यशोवीर्यहीन और अमेध्य होनेपर भी मेध्य हो गया था इसीसे अश्वमेधका यानी अश्वमेधनामक यज्ञका अश्वमेधत्व है; अर्थात् उसे ‘अश्वमेध’ नाम मिला है I यज्ञ क्रिया, कारक और फलरूप होता है, अत: ‘वह प्रजापतिही है’ ऐसा कहकर उसकी स्तुति की जाती है I

‘उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिर:’ इत्यादि वाक्यसे यज्ञ-निर्वाहक अश्वका प्रजापतित्व कहा गया I अब उसी प्रजापतिरूप मेध्य अश्वकी और यज्ञफलरूपसे उसीके समान उपर्युक्त अग्निकी उपासनाका विधान करना है, इसलिए आगेका ग्रन्थ आरम्भ किया जाता है I पहले श्रुतिवाक्यमें विधिबोधक क्रियापदका श्रवण नहीं हुआ है और [उपासनासम्बन्धी वाक्योंमें] क्रियापदकी अपेक्षा होती है; इसलिए इस प्रकरण का अर्थ जाना जाता है I1 (यद्यपि पहले ‘य एवमेतददितेरदितित्वं वेद’ ऐसा विधायक वाक्य आया है, परन्तु यह प्रकरण अश्वमेधोपासनाका है, इसलिए वह मुख्य वाक्य नहीं

Page 288 of 331

Page 289 of 331

हैI अत: उस आभावकी पूर्ति करनेके लिए यहाँ श्रुति ‘एष ह वा अश्वमेधं वेद य एनमेवं वेद’ इस प्रकार साक्षाद्रूपसे उसका विधान करती हैं I)1

जो इसे इसप्रकार जानता है, निश्चय वही अश्वमेध को जानता है I जो कोई भी इस अश्वको और ऊपर बतलाये हुए अग्निरूप अर्कको आगे कहे जानेवाले संक्षिप्तरूपसे प्रदर्शित विशेषणसे विशिष्ट जानता है वही अश्वमेधको जानता है, कोई दूसरा नहीं I अत: तात्पर्य यह है कि इसे इसी प्रकार जानना चाहिये I

किस प्रकार जानना चाहिये? सो इस विषयमें पहले श्रुति पशुविषयक दृष्टिका ही निरुपण करती है I प्रजापति ने ऐसी इच्छा करके कि पुन: बड़े भारी यज्ञसे यजन करूं, अपनेहीको यज्ञिय पशु कल्पना कर उस पशु का अनवरोध उसे छूटा माना अर्थात् उसकी रोक-टोक न करते हुए उसे बन्धनहीन चिन्तन किया I फिर पूरे एक संवत्सरके पीछे उसे अपने ही लिए आलभन किया (वशमें किया, काबू किया, बांध दिया) तथा अन्य देवताओंको भी तत्तद्देवसम्बन्धी अन्यान्य ग्राम्य एवं वन्य पशु प्राप्त कराये I

क्योंकि प्रजापतिने ऐसा माना था, इसलिए दूसरे यज्ञकर्ताको भी उपर्युक्त विधिसे ही अपनेको यज्ञिय अश्व मानकर ‘मैं वेदमंत्रों द्वारा अभिषिक्त होकर सर्वदेवसम्बन्धी होता हूं, किन्तु आलभन किये जानेपर केवल अपने ही देवताके लिए होऊं;

Page 289 of 331

Page 290 of 331

तथा दूसरे ग्राम्य और वन्य पशु, अन्यान्य देवताओंके अनुसार मेरे ही अवयवभूत विभिन्न देवों के लिए आलभन किये जाते हैं—ऐसा जाने I इसलिए आजकल याज्ञिकलोग समस्त देवताओंके लिए (मन्त्रोंद्वारा) अभिषिक्त किये हुए प्रजापतिसम्बन्धी पशुका

आलभन करते हैं I

‘एवमेष ह वा अश्वमेधो य एष तपति’ इसकी व्याख्या की जाती है—इसप्रकार यह जो पशुद्वारा साध्य क्रतु है वही ‘एष ह वा अश्वमेध:’ इस वाक्यसे साक्षात् फलस्वरूपसे बतलाया जाता है I वह कौन-सा है? जोकि सूर्य तपता अर्थात् अपने तेजसे जगत् को प्रकाशित करता है I उस इस यज्ञफलरूप सूर्यका संवत्सर निष्पन्न होता है I1 (क्योंकि सूर्यके उदयास्तके दिन-रातके द्वारा संवत्सर होता है I यहाँतक अश्वमेधकी सूर्यरूपता बतलाकर अब उसके साधनभूत अग्निका सूर्यत्व बतलाया जाता है I) I

उस यज्ञात्मा का साधनभूत यह पार्थिव अग्नि अर्क है; यज्ञफल अग्निसाध्य है, इसलिए उसका यज्ञरूपसे निर्देश किया गया है I यज्ञ में चयन किये जानेवाले उस अर्कके तीनों लोक आत्मा-शरीरके अवयव (अंग) हैं I इसीसे ‘उसका पूर्वदिशा शिर है’ इत्यादि वाक्यसे उसकी व्याख्या की गयी है I वे ये अग्नि और आदित्य ऊपर दिए हुए विशेषणके अनुसार अर्क और अश्वमेध क्रमश: यज्ञ और फल हैं I अर्क को

Page 290 of 331

पार्थिव अग्नि है वह साक्षात् क्रियात्मक यज्ञरूप है I तथा फल यज्ञसाध्य है इसलिए ‘आदित्य अश्वमेध है’ इस प्रकार यज्ञरूपसे ही उसका निर्देश किया जाता है I

वे यज्ञ एवं फलभूत अग्नि और आदित्य साध्य और साधन हैं I वे भी आपसमें मिलकर पुन:--फिर भी एक ही देवता हैं I यह एक देव कौन है? वह मृत्यु ही है I पहले भी वह (मृत्युदेवता) एक ही था, क्रियाके साधन और फलभेदके लिये उसका विभाग हो गया I ऐसा ही कहा भी है—“उसने अपनेको तीन प्रकार से विभक्त किया” इत्यादि I वह फिर भी अर्थात् क्रियानिष्पत्तिके उत्तरकालमें भी एक ही देवता अर्थात् फलस्वरूप मृत्यु ही हो जाता है I

जो इसप्रकार इस अश्वमेध को मृत्युरूप एक देवता जानता है; अर्थात् मैं ही अश्वमेधरूप मृत्यु हूँ—अग्नि और अश्वरूप साधन से सिद्ध होनेवाली एक देवता मेरा ही रूप है- ऐसी जो उपासना करता है वह पुनर्मृत्युको जीत लेता है I तात्पर्य यह है कि एक बार मरकर वह पुन; मरनेके लिए उत्पन्न नहीं होता I इसप्रकार परास्त हो जाने पर भी मृत्यु इसे पुन: प्राप्त कर लेगा—ऐसी आशङ्का करके श्रुति कहती है—इसे मृत्यु पुन: प्राप्त नहीं कट सकता I क्यों? क्योंकि इसप्रकार जाननेवालेका मृत्यु आत्मा हो जाता है I बल्कि मृत्यु ही फलरूप होकर इन देवताओं में से कोई एक हो जाता है I उस उपासक को यही फल प्राप्त होता हैI
Page 291 of 331

(सृष्टि - रचना) बृहदारण्यक - उपनिषद --(चौथा ब्राह्मण)

ब्रह्मांड की रचना से पूर्व जैसे पहले 'पुरुष' था, अर्थात ब्रह्म था, वैसे पिंड की रचना से पूर्व पहले 'आत्मा' था, अर्थात जीव था। 'पुरुष' ने अपने चारों तरफ़ देखा, तो अपने अतिरिक्त कुछ न पाया---- पृथ्वी, सूर्य आदि देवताओं की सृष्टि तब तक नहीं हुई थी, 'आत्मा' ने भी अपने चारों तरफ़ देखा तो अपने अतिरिक्त कुछ न पाया---मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की सृष्टि तब तक नहीं हुई थी। उसने चारों तऱफ देखकर कहा, 'अहम अस्मि'-- मैं हूं--इसलिए उसका नाम 'अहम' हो गया। (बाइबल में उसका नाम आदम, अर्थात 'अदम'--'अहम' कहा है)। इसीलिये किसी को पुकारते हैं, तो पहले 'यह-मैं' कहकर, जो उसका अपना नाम होता है, वह उस नाम को 'मैं' के आगे बोलता है। जैसे ब्रह्म को पुरुष कहते हैं, वैसे आत्मा को भी पुरुष कहते हैं। 'पुरुष' का अर्थ है, 'पुर'---पहले, 'उष' जलाना, सृष्टि से पहले ही जिसने पापों को जला रखा है, वह पुरुष है। वैसे तो मनुष्य पाप करता है, परन्तु इसका स्वाभाविक-रूप यही है जिसमें यह पाप को पहले ही अर्थात संकल्प में आने से पहले ही भस्म कर दे। जो इस रहस्य को जानता है, वह, अगर पाप उससे आगे निकलना चाहता है, तो उसे भस्म कर डालता है।(1)

सृष्टि के प्रारम्भ में वह इकला(अकेला) था इसलिए डरा, इसलिए इकला डरा करता है। फिर उसने सोचा, जब मेरे सिवाय दूसरा कोई है ही नहीं, तो मैं क्यों
Page 292 of 331

भयभीत होता हूं ? यह सोचते ही उसका भय जाता रहा। बात भी ठीक है। वह किससे डरता ? दूसरे से ही तो डर होता है। (2)

वह इकला था , इसलिये उसका जी नहीं लगा। इसीलिए एकाकी पुरुष का जी नहीं लगता। उसने दूसरे की इच्छा की। वह इतना था , जितने स्त्री -पुरुष मिले हुए हों। उसने अपने इस ही शरीर को दो टुकड़ों में 'अपातयत '--अर्थात पटक दिया। पटकने के लिए 'पत' शब्द का प्रयोग किया गया है , उसी से 'पति ' और 'पत्नी ' बने , वे दो टुकड़े पति -पत्नी हो गये। इसी को देख कर याज्ञवल्क्य ऋषि का कथन था कि हमारा शरीर 'अर्ध -बृगल '--आधे दल --जैसे चने या सीप के दो आधे -आधे दल होते हैं , उनके समान हैं , इसीलिए जैसे चने का आधा दल दूसरे दल से मिलकर पूरा बनता है , वैसे ही पुरुष के सामने का खाली आकाश स्त्री के साथ मिलने से ही पूरा भरा जाता है। पुरुष -तत्व तथा स्त्री -तत्व का मेल हुआ , उससे मनुष्य जाति का निर्माण हुआ। (3)

(बाइबल में भी सृष्टि -रचना के प्रकरण में कहा गया है ----In the image of God created He him; Male and female created He them----जेनसिस 1•27। इसके आगे 2 य अध्याय की 22 वीं आयत में लिखा है ---And the rib, which the Lord God had taken from man, made He a woman, पुरुष की पसली निकाल कर उसे स्त्री बना दिया। इसका भी यही अभिप्राय है कि सृष्टि -रचना से पूर्व पुरुष इतना था जितने स्त्री -पुरुष मिले

Page 294 of 331

हुए। इस विचार के संसार में सर्वत्र फैलने का एक ही स्रोत है।)

स्त्री-तत्व ने सोचा, मुझे अपने शरीर में से
ही उत्पन्न करके यह कैसे मेरे साथ ही संयोग करता है, मैं छिप जाऊं I वह छिप कर गौ हो गई, पुरुष बैल बन गया, और उन दोनों से गो-जाति का निर्माण हुआ। फिर स्त्री-तत्व ने घोड़ी का रूप धारण किया, पुरुष-तत्व ने घोड़े का; फिर गधी-गधे का----इससे एक खुरवाले पशु उत्पन्न हुए। इसी प्रकार जितने संसार के जोड़े हैं, उन्हें पुरुष-तत्व तथा स्त्री- तत्व ने उत्पन्न कर दिया। (4)

'आत्म-तत्व' ने अपने को 'पुरुष-तत्व' तथा। 'स्त्री- तत्व' में परिणत किया था, फिर संसार के जीव-जंतुओं के रूप में विकसित किया, यह सब कर चुकने के पर वह कह उठा, मैं ही सृष्टि हूं, मैंने ही यह सब रचा है, मेरे रचने ही से तो यह सृष्टि हुई है। जो इस रहस्य को जानता है, वह 'आत्म-तत्व' की सृष्टि में जा पहुँचता है, जिस तत्व से सृष्टि का प्रवाह चलता है उस ऊंचे स्तर पर जा पहुंचता है, सृष्टि का विधायक बन जाता है।(5)इसी प्रकार क्रमशः सृष्टि का

विकास होता गया।

मेरे खयाल से, मेरी समझ के अनुसार, सभी धर्म,
मत इस तथ्य को किसी न किसी रूप में किसी न किसी भाव से अवश्य स्वीकारते होंगे, इसे तथ्य को मानते होंगे । समग्र सृष्टि, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, में

Page 294 of 331

जितने भी तथाकथित धर्म, मज़हब, विश्वास पर आधारित पंथ, मत, दीन ईमान, क्रिया, क्रियाकलाप, कार्य प्रणाली, में यह नहीं कहा गया कि हमारा जन्म दाता, पालक, रक्षक, संरक्षक, व्यवस्थापक, नेतृत्व कर्ता, निर्देशन कर्ता एक नहीं है बल्कि अलग अलग हैं I न ही किसी गुरू, धर्मोपदेशक, ऋषि मुनि ने ही कभी ऐसा बताया है या उपदेश दिया है I भले ही सभी ने अपने अपने अलग अलग ढंग से, रीति-रिवाज से, क्रिया-कलाप, कार्य-प्रणाली से उस ईश्वर का सम्मान, स्तुति-गान, आराधना, उपासना, पूजा-अर्चन किया हो या कोई कर रहा हो, सभी ने ईश्वर की एकता, उसकी एक रूपता पर बल दिया है I

प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्र के अध्येता वैज्ञानिक परम् आदरणीय श्री जगदीश चन्द्र वसु ने ये सिद्ध किया था ही जिस प्रकार हम सांस लेते है पूजा अर्चन, सुबह-शाम प्रभु की वन्दना में झुकते हैं और उनकी देन का धन्यवाद करते हैं ठीक उसी प्रकार पेड़ पौधे भी प्रभु की वंदना करते हैं और ये मानकर कि ये सब ईश्वर का दिया हुआ है, उसका धन्यवाद करते हैं I

सनातन धर्म ग्रंथों में माता-पिता, भाई-बन्धु, सखा, रक्षक, संरक्षक, पालक, व्यवस्थापक, नेतृत्व कर्ता, निर्देशन कर्ता, दिग्दर्शन कर्ता, पथ प्रदर्शन कर्ता, विभिन्न नामों से विभिन्न रूपों में ईश्वर की महिमा का स्तुति गान इस प्रकार किया गया है:-
Page 295 of 331

Page 296 of 331

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव,
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव!!
अर्थात हे प्रभु, हे देवों के देव तुम्ही मेरे माता-पिता, बंधु-सखा, तुम्ही विद्या और सभी प्रकार की धन-संपत्ति हो! तुम्ही मेरे सभी कुछ हो! उपरोक्त भावों से उस ब्रह्म की शक्तियों का आभास होता है, किस प्रकार परम् ब्रह्म ने अपनी समस्त शक्तियों को संगठित किया और आदि-पुरुष का सृजन किया जिससे यह सकल सृष्टि उत्पन्न हुई।
यहाँ फिल्म दोस्ती के गाने का वही भाव “जिसने सबको रचा अपने ही रूप से, उसकी पहचान हूं”। पुरुष सूक्त से यह कल्पना की गई है की किस प्रकार ईश्वर से सृष्टि की रचना साकार हुई । यह भाव सहज ही पुरुष सूक्त से अनुभव किया जा सकता है ।
पुरुष सूक्तानुसार ईश्वर की महिमा :----
ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् I
स भूमिँ् सर्वत: स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङगुलम् I I (पु.सू.1)
अन्वय :- सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् I

Page 296 of 331

Page 297 of 331

स भूमिं सर्वत: स्पृत्वा अत्य अतिष्ठत् दशाङ्गुलं I I

अर्थ ;- जो हजारों सिर, हजारों नेत्र, और हजारों चरणों को धारण करता है, वह ॐ कार स्वरूप विराट पुरुष सब ओर से दश अङ्गुल के बराबर भूमि को अतिक्रमण करके (घेर करबैठा हुआ है) स्थित है I

शब्दार्थ :- सहस्र = हजार; शीर्ष = सिर; पुरुष: == प्रकृति का अधिष्ठाता, परमात्मा; अक्ष = नेत्र,आंख; पात् = पांव, पैर, चरण; भूमि = धरती, पृथ्वी; सर्वत: = चारों ओर से, सब ओर से; स्पृत्वात्य = स्पर्श करके, घेर कर, दबा कर, अतिक्रमण करके; तिष्ठति = स्थापित है, बैठा है; दशाङ्गुलं = दस अङ्गुल के बराबर; (उवट-भाष्य अनुसार-- दशाङ्गुल परिमाण वाला, हृदय-स्थान अथवा इन्द्रियां अथवा नासिकाग्र भाग)

(श्वेताश्वतर-उपनिषद अध्याय 3 के श्लोक 14) और

(कृष्णयजुर्वेदीयपुरुषसूक्त में यह श्लोक इस प्रकार मिलता है):-

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् I

स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङगुलम् I I

इस की दूसरी पंक्ति का अन्वय इस प्रकार है:-

स: भूमिम् विश्वत: वृत्वा दशांगुलम् अत्यतिष्ठत्

Page 297 of 331

शब्दार्थ:- सहस्रशीर्षा==हजारों सिर वाला; पुरुषः== प्रकृति का अधिष्ठाता, परमात्मा; सहस्राक्ष:==हजारों आंख वाला; सहस्रपात्==हजारों पांव वाला; स:==वह; भूमिं==पृथ्वी को; विश्वत:==चारोंओर से; वृत्वा==घेर कर; अत्यतिष्ठत्==दूर (परे) खड़ा है; दश+अङगुलम्==दस अंगुल भर I

अर्थ :- वह पुरुष हजारों सिरों वाला, हजारों आंखों वाला, हजारों पांवों वाला है! वह हाथ से ब्रह्माण्ड को सब ओर से छुए हुए है, फिर भी उसकी दसों उँगलियाँ दूर खड़ी हैं! घेरने से तो दसों उँगलियाँ भर जानी चाहियें, परन्तु ब्रम्हांड इतना तुच्छ अर्थात इतना छोटा है कि इसे घेर कर भी उस के दोनों हाथों की दसों उँगलियाँ मानो खाली रह जाती हैं I

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:-

सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्माण्ड की भूमि को सब ओर से व्याप्त करके स्थित है और इससे दस अङगुल ऊपर भी है! उन परमात्मा के मस्तक, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और चरण आदि कर्मेन्द्रियाँ हजारों हैं---

असंख्य हैं I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----जो सहस्रों सिरवाले, सहस्रों नेत्रवाले और सहस्रों
Page 298 of 331

Page 299 of 331

चरणवाले विराट पुरुष हैं, वे सारे ब्रह्मांड को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:-

उन परम् पुरुष के सहस्रों (अनंत) मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं। वे इस सम्पूर्ण विश्व की समस्त भूमि (पुरे स्थान)-की सब और से व्याप्त करके इससे दस अंगुल (अनंत-योजन) उपर स्थित हैं अर्थात वे ब्रह्माण्ड में व्यापक होते हुए उससे परे भी हैं ।

पुरुष एवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् I

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति I I

(श्वेताश्वतर-उपनिषद अध्याय 3 श्लोक 15, पु.सू. 2)

(कृष्णयजुर्वेदीय पुरुषसूक्त मे भाव्यम् के स्थान पर भव्यम् पाठ है)

अन्वय :- पुरुषः एव इदम् सर्वं यत् भूतं यत् च भाव्यम्!

उत् अमृत तत्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति!!

अर्थ :- यह सब वर्तमान विश्व, बीता हुआ विश्व और आगे होने वाला विश्व, यह सब परम पुरुष रूप ही है और जो अन्न रूप फल के कारण विश्व यह सब परम पुरुष रूप ही है और जो अन्न रूप फल के कारण विश्व को प्राप्त होता है, उस अमृत तत्व का स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही है I अर्थात जो सृष्टि बन चुकी, जो बननेवाली है,

Page 299 of 331

Page 300 of 331

यह सब विराट पुरुष ही हैं | इस अमर जीव-जगत (मोक्ष) के भी वे ही स्वामी हैं और जो अन्न द्वारा उत्पन्न हो कर वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वे ही स्वामी और स्रष्टा हैं I

भावार्थ:- जो हुआ है, जो हो रहा है, और जो आगे होगा, वह सब कुछ उस पुरुष में ही निहित है, उसमें ही सब कुछ विद्यमान है, जो अमृत है और जो अमृत नहीं है, अन्न से बढ़ता है, उस सब का भी वही स्वामी है I

शब्दार्थ :- इदं = यह; सर्वं =सब कुछ; यद्, यत् =जो कुछ; भूतं = बीता हुआ; भाव्यम = आगे होने वाला है; अन्नेन = अन्न आदि फल के द्वारा; अतिरोहति =उत्पन्न हो कर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है; स: = वह; एव = ही; उत = तथा, और; अमृतत्वस्य = उस अमृत तत्व का; ईशान = स्वामी, ईश, स्रष्टा;

विशेष—अमृत शब्द के तीन अर्थ बताये गये हैं-अमृत, जल, सुधा देवता I इसी दृष्टि से इस मन्त्र की अनेक व्याखाएं की गई हैं I इसमें अनुष्टुप छंद है I

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:-यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, सब परमात्मा का ही स्वरुप है, भूत और भविष्य जगत् भी परमात्मा ही है! इतना ही नहीं, वह परमात्मा मुक्ति का स्वामी है, तथापि ये जो अन्न से उत्पन्न होने वाले जीव हैं, उन सबका भी शासन- सबको नियम के अन्दर रखने वाला वह परमात्मा ही है I

Page 300 of 331

Page 301 of 331

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----जो सृष्टि बन चुकी, जो बननेवाली है, यह सब विराट पुरुष ही हैं | इस अमर जीव-जगत के भी वे ही स्वामी हैं और जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वे ही स्वामी हैं I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- यह जो इस समय वर्तमान (जगत्) है, जो बीत गया और जो आगे होने वाला है, वह सब वे परम् पुरुष ही हैं। इसके अतिरिक्त वे देवताओं के तथा जो अन्न से (भोजन द्वारा) जीवित रहते हैं, उन सबके भी ईश्वर ही (अधीश्वर-शासक) हैं।

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुष: I

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि I I (पु.सू.3)

अन्वय:- एतावान अस्य महिमा अत: ज्यायान् च पूरूष: I पादो अस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्य अमृतं दिवि I I

शब्दार्थ:--एतावान्----पूर्वोक्त वर्णित, इतना तो; अस्य---इसका; महिमा-----माहात्म्य; पुरुष:----पुरुष, ब्रम्ह; अत:----इसलिए, महिमा से भी; ज्यायान्---महान, बड़ा; पाद:--भाग, हिस्सा, अंश; विश्वा---सम्पूर्ण विश्व का; जगत्---प्राणी समूह; त्रिपाद----तीन भाग; अमृतम्---अमृत है,(अर्थात वह) दिवि—द्युलोक; अन्तरिक्ष;

Page 301 of 331

अर्थ - पूर्वोक्त श्लोकों में जो वर्णन किया गया है इतना तो त्रिकालात्मक विश्व इस पुरुष की महिमा ही है और वह पुरुष स्वयं तो इस विश्व से अत्यधिक बड़ा है महान है! सभी प्राणि-समूह इस पुरुष के चतुर्थ भाग हैं I इस पुरुष का त्रिपात्-रुप अविनाशी और अपने ही प्रकाशात्मक स्वरुप में स्थित है I अर्थात विराट पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है | इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी हैं और तीन भाग अनंत अंतरिक्ष में स्थित हैं I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- विराट पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है | इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी हैं और तीन भाग अनंत अंतरिक्ष में स्थित हैं I

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:---भूत, भविष्य और वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाला जितना भी जगत् है----यह सब इस पुरुष की महिमा है, इस परमात्मा का विभूति- विस्तार है I उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्माण्डमय विराट्स्वरूप से भी बहुत बड़ा है! यह सारा विश्व (ये तीनों लोक) तो उसके एक पाद में है, उसकी एक चौपाई में समाप्त हो जाते हैं I अभी उसके तीन पाद और शेष हैं! यह त्रिपादस्वरूप अमृत है---अविनाशी है और परम प्रकाशमय द्युलोक अर्थात् अपने स्वरूप में ही स्थित है!
Page 302 of 331

Page 303 of 331

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:------ यह भूत, भविष्य, वर्तमान से सम्बद्ध समस्त जगत् इन परम् पुरुष का वैभव है । उन परमेश्वर की एक पाद विभूति (चतुर्थांश)- में ही यह पंच भूतात्मक विश्व है । उनकी शेष त्रिपाद विभूति में शाश्वत दिव्य लोक [(वैकुण्ठ लोक—जहाँ किसी प्रकार की कोई कुंठा नहीं होती), गोलोक, साकेत धाम अथवा लोक,शिवलोक आदि] हैं ।

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुष: पादोऽस्येहाभवत् पुन: I

ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि I I (पु॰ सू॰ 4)

अन्वयः--- त्रिपाद ऊर्ध्व उदैत पुरुषः पादो अस्य इहा पुनः अभवत् I ततो विश्वं व्यक्रामत् साशना शने अभि I

शब्दार्थ:--- त्रिपाद---तीन पैरों से; ऊर्ध्व---ऊपर; उदैत---उदित हुआ, प्रकट हुआ, प्रकाशित हुआ; पादो--- चरण; अस्य—उसके; इहा---यहां; पुन:--- फ़िर् से; अभवत्---हो गया; तत:--तब; विश्वम्--- विश्व को; व्यक्रामत्----अतिक्रमण कर लिया; साशना---स्वेच्छा से; शने---धीरे-धीरे; अभि---अच्छी तरह, भलिभांति;

अर्थ- वह परम पुरुष अपने तीन चरणों से ऊपर उठ कर यह फिर से प्रकट हो गया और फिर से धीरे धीरे भलीभांति विश्व का अतिक्रमण कर लिया I

Page 303 of 331

Page 304 of 331

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- यह त्रिपाद पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात वह परमात्मा अज्ञान के कार्यभूत इस संसार से पृथक् तथा यहाँ के गुण दोषों से अछूता रह कर ऊँची स्थिति में विराजमान है I उसका एक अंश मात्र माया के सम्पर्क में आकर यहाँ जगत् के रूप में उत्पन्न हुआ, फिर वह मायावश जड़-चेतनमयी नाना प्रकार की सृष्टि के रूप में स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है--चार भागोंवाले विराट पुरुष के एक भाग में यह सारा संसार, जड़ और चेतन विविध रूपों में समाहित है | इसके तीन भाग अनंत अंतरिक्षमें समाये हुए हैं I

महिधर ने साशनाशने का अर्थ स्वर्ग एवं मोक्ष से लिया है जबकि मैकडोनल ने इसका अर्थ खाने वाले और न खाने वाले माना है एवं पीटर्सन ने सजीव और निर्जीव संसार किया है, जो कि अमान्य लगता है क्योंकि संसार एक ही है जिसमें सजीव निर्जीव अर्थात जड़-चेतन, स्थावर-जंगम सभी शामिल हैं I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:---- वे परम् पुरुष स्वरूपत: इस मायिक जगत् से परे त्रिपाद विभूति में प्रकाशमान हैं (वहां माया का प्रवेश ण होने से उनका स्वरूप नित्य प्रकाशमान है) इस विश्व के रूप में उनका एक पाद ही प्रकट हुआ है अर्थात एक पाद से वे ही विश्वरूप भी हैं, इसलिए

Page 304 of 331

वे ही सम्पूर्ण जड़ एवं चेतनमय -उभयात्मक जगत् को परिव्याप्त किये हुए हैं ।

ॐततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष : ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुर : ।।

(पु॰सू॰ 5---कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में ततो की जगह तस्मात् पाठ है)

अन्वयः **---** ततो विराट् विराज : अधि पुरुषः अजायत ।

स जात: अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिं अथ : पुर : ।

शब्दार्थ **:--** तत:--तब; विराट् ---विस्तृत ; अजायत—--उत्पन्न हुआ ; विराज :---प्रकाशमान ; अधि पुरुष :----आदि पुरुष ; स—उससे ; जात :--उत्पन्न हुए ; अत्यरिच्यत ---अनेक रुपों में , समष्टि ; पश्चाद् ----बादमें ; भूमिं ---भूमि को ; अथ:---तथा ; पुर :----भुवन , (14 भुवन);

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है **-----** उस आदिपुरुष परमात्मा से विराट् की उत्पत्ति हुई ---यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ । इस ब्रम्हाण्ड के ऊपर इसका अभिमानी एक पुरुष प्रकट हुआ । तात्पर्य यह की परमात्मा ने अपनी माया से विराट् ब्रह्माण्ड की रचना कर स्वयं ही उसमें जीव रूप से प्रवेश किया । वे ही जीव ब्रह्माण्ड का अभिमानी देवता (हिरण्यगर्भ) हुआ । इस प्रकार उत्पन्न हो कर वह विराट् पुरुष पुन : देवता , तिर्यक् और मनुष्य आदि अनेकों रूपों में प्रकट

हुआ । इसके बाद उसने भूमि को उत्पन्न किया , फिर जीवों के शरीरों की रचना की ।

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है -----उस विराट पुरुष से यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ | उस विराट से समष्टि जीव उत्पन्न हुए | वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ , जिसने सबसे पहले पृथ्वी को , फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद -कथाङ्क में अर्थ :--- उन्हीं आदि पुरुष से विराट् (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ। परम् पुरुष ही विराट् के अधिपुरुष -अधिदेवता (हिरण्यगर्भ)-रूप से उत्पन्न हो कर अत्यंत प्रकाशित हुए। पीछे उन्होंने भूमि (लोकादि) तथा शरीर (देव , मानव , तिर्यक आदि) उत्पन्न किये ।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत : संभृतं पृषदाज्यम् ।

पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्
ग्राम्याश्च ये ।।

(पु॰सू॰ 6) (कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में पाठ इस प्रकार है ----ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत)

अन्वय :--- सर्वहुत : पृषदाज्यम् , तस्माद् यज्ञात् पशून् , तांश्चक्रे वायव्यान् , अरण्यान् , ग्राम्या : च ये ।

शब्दार्थ :--- तस्माद् ----उससे ; यज्ञात् -----यज्ञ करने से ; सर्वहुत :---सब यज्ञ , हवन करने से ; उत्पन्न

किया ; पृषदाज्यम् ---- इसके पश्चात् ; पशून् ----पशु ; तांश्चक्रे ----इसी कडी के , इसी प्रकार के ; वायव्या ---वायु ; अरण्य ----वन;

ग्राम्या :----गांव ; च---और; ये ----ये ;

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है **-----** जिसमें सब कुछ हवन किया गया , उस पुरुष रुप यज्ञ से दही -घी आदि सामग्री उत्पन्न हुइ । पुरुष ने वन में उत्पन्न होने वाले हिरण आदि और गाँवों में होने वाले गाय , घोड़े आदि वायु देवता -सम्बन्धी प्रसिद्ध पशुओं को भी उत्पन्न किया ।

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है **-----**

उस सर्वश्रेष्ठ विराट प्रकृति यज्ञ से दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ (जिससे विराट पुरुष की पूजा होती है) | वायुदेव से संबंधित पशु हरिण , गौ , अश्वादि की उत्पत्ति उस विराट पुरुष के द्वारा ही हुई ।

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद -कथाङ्क में अर्थ :-

जिसमें सबकुछ हवन किया गया है , उस यज्ञपुरुष से उसी ने दही , घी आदि उत्पन्न किये और वायु में , वन में , एवं ग्राम में रहने योग्य पशु उत्पन्न किये।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच **:** सामानि जज्ञिरे ।

छन्दान्सि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।

(पु ० सू ० 7) (कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में पाठ इस प्रकार है ----ॐ तं यज्ञं

Page 308 of 331

बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत:)

अन्वय:--- तस्माद् सर्वहुत: यज्ञात् जज्ञिरे ऋच:, सामानि I

तस्माद् जज्ञिरे छन्दान्सि, तस्माद् यजु: अजायत I I

शब्दार्थ:---- तस्माद्---उससे; यज्ञात्---यज्ञ से; सर्वहुत:---सब हवन करने से; ऋच:--ऋग्वेद; सामानि--- सामवेद; जज्ञिरे----उत्पन्न हुए; I तस्माद्---उसी से; छन्दान्सि---छन्द; जज्ञिरे----उत्पन्न हुए; तस्माद्---उसीसे; यजु:---यजुर्वेद; अजायत---- उत्पन्न हुआ I

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- जिसमें सब कुछ हवं किया गया है उस यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद, और सामवेद प्रकट हुए, उसी से गायत्री आदि छन्दों की उत्पत्ति हुई तथा उसी से यजुर्वेद का भी प्रादुर्भाव हुआ I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----

उस विराट यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ| उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ अर्थात् वेद की ऋचाओं का प्रकटीकरण हुआ I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- उसी सर्वहूत यज्ञपुरुष से

Page 308 of 331

ऋग्वेद , एवं सामवेद के मंत्र उत्पन्न हुए , उसी से यजुर्वेद के मनते हुए और

उसी से सभी छन्द भी उत्पन्न हुए ।

ॐतस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादत : ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावय : । ।
(पु० सू० 8)

(कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में पाठ इस प्रकार है ----ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्)

अन्वय **:----** तस्माद अश्वा ये के च उभय दत : अजायन्त ! तस्मात् गावो ह् जज्ञिरे तस्मात् जाता अजावय : ।

शब्दार्थ **:---** तस्माद ----उससे ; अश्वा ----घोडे ; ये ---जो ; के ---कि ; च---और; उभय---दोनों ओर ; दत:---दांत वाले हैं ; अजायन्त ----उत्पन्न हुए ; तस्मात् —उसीसे ; गावो ---गौएं ; ह् ---भी ; जज्ञिरे ----उत्पन्न हुई ; तस्मात् ----उसीसे ; जाता ---उत्पन्न हुई ; अजावय:----भेड -बकरियां आदि

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है **-----** उस यज्ञपुरुष से घोड़े उत्पन्न हुए , इनके अतिरिक्त भी जो नीचे ऊपर दोनों ओर दांत रखने वाले खच्चर , गदहे आदि प्राणी हैं , ये भी उत्पन्न हुए । उसी से गौएँ उत्पन्न हुई और उसी से भेड़ों तथा और बकरों की उत्पत्ति हुई ।

Page 310 of 331

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----उस विराट यज्ञ पुरुष से

दोनों तरफ दाँतवाले घोड़े हुए और उसी विराट पुरुष से गौएँ, बकरियाँ

और भेड़ आदि पशु भी उत्पन्न हुए I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- उसी से घोड़े उत्पन्न हुए, उसी से गायें उत्पन्न हुईं और उसी से भेड़-बकरियां उत्पन्न हुईं। वे दोनों ओर दांतों वाले हैं ।

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत: I

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये I I (पु.सू.9)

(कृष्णयजुर्वेदीय पु.सू. में पाठ इस प्रकार है----ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच: सामानि जज्ञिरे-जबकि यह इसके 7 वें श्लोक में हैI)

अन्वय:- पुरुषं जातम् अग्रतः तं बर्हिषि यज्ञं प्रौक्षन्! तेन अयजन्त देवा साध्या ऋषय: च ये I

शब्दार्थ:--- तं—उसको; यज्ञं---यज्ञ में; बर्हिषि---कुश अर्थात आसन बिस्तर या कुशा (घास) का बिछौना, (पु.) आग, प्रकाश, (न.पु.) जल, यज्ञ, इसका एक अर्थ ‘कुशासन पर बैठा हुआ पितर; (बर्हिषि-शब्द बर्हिस् से बना है, इसका मिलता हुआ एक शब्द बरहा भी मिलता है जिसका अर्थ मोर, मुरगा, इंधन का बोझ, मोटा रस्सा, साही नामक जन्तु, बारहवें दिन

Page 310 of 331

Page 311 of 331

प्रसूता का स्नान;) ‘एक शब्द बारहौं का अर्थ निकलता संतान उत्पन्न होने के बाद बारहवें दिन की क्रिया जो हवन नामकरण आदि किया जाता है!’ प्रौक्षन्----सिञ्चन करना, अभिषेक करना, जातम---- उत्पन्न हुए, अग्रतः---पूर्व में, सर्व प्रथम; तेन---उसके द्वारा; देवा---देवताओं ने; साध्या--- साधकों ने; ऋषय:--ऋषियों ने; च---और; ये---जितने;

अर्थ:--- श्रीमद्भागवत के अनुसार इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:----

सबसे पहले उत्पन्न हुआ वह पुरुष ही उस समय यज्ञ का साधन था, देवताओं ने उसे संकल्प द्वारा यूप में बंधा हुआ पशु माना और उस मानसिक यज्ञ में उस पशु का भावना द्वारा हि प्रोक्षण आदि संस्कार भी किया I इस प्रकार संस्कार किये हुए पुरुष रूपी पशु के द्वारा देवताओं, साध्यों और ऋषियों ने उस मानसिक यज्ञ को पूर्ण किया I

कहीं अन्यत्र मैंने इस प्रकार अर्थ भी पढा है---- मंत्रद्रष्टा ऋषियों एवं योगाभ्यासियों ने सर्वप्रथम प्रकट हुए पूजनीय विराट पुरुष को यज्ञ (सृष्टि के पूर्व विद्यमान महान ब्रह्मांड रूपयज्ञ अर्थात् सृष्टि यज्ञ) में अभिषिक्त करके उसी यज्ञरूप परम पुरुष से ही यज्ञ (आत्मयज्ञ) का प्रादुर्भाव किया I

Page 311 of 331

{बृहदारण्यक -उपनिषद् अध्याय 1 ब्राह्मण 2 श्लोक 7 का अर्थ यहाँ पर ठीक बैठता लगता है —जो इस प्रकार है —

[सो S कामयत, मेध्यं म इदँ् स्यादात्मन्व्यनेन स्यामिति । ततो S श्व : समभवद्यदश्वत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्या -श्वमेधत्वम् । एष ह वा अश्वमेधं वेद य एनमेवं वेद । तमनवरुध्यैवामन्यत । तँ् सम्वत्सरस्य परस्तादात्मन आलभत । पशून्देवताभ्य : प्रत्यौहत् । तस्मात् सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभन्ते । एष ह वा अश्वमेधो य एष तपति तस्य संवत्सर आत्मा S यमग्निरर्कस्तस्येमे लोका आत्मानस्तावेतावर्का -श्वमेधौ । सो पुनरेकैव देवता भवति मृत्युरेवाप पुनर्मृत्युं जयति नैनं मृत्युराप्नोति मृत्युरस्यात्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति। (श्लोक 7)

अर्थ -मृत्यु -ब्रह्म के कामना की कि मेरे शरीर की 'वृद्धि ' तो होती जा रही है , यह शरीर यों ही न फूलता जाय , इसमें 'पवित्रता ' अवश्य हो । उसने यह चाहा कि मैं 'आत्मन्वी '--आत्मा , अर्थात् शरीर वाला --तो होऊं , परन्तु 'मेध्य ', अर्थात् पवित्र शरीर वाला [मेधा -बुद्धि का पात्र , (ज्ञेय), यज्ञीय (अर्थात् यज्ञ का अधिकारी);] होऊं । क्योंकि मृत्यु -ब्रह्म का शरीर बढ़ता जा रहा था , इसलिये इसे 'अश्व ' कहते हैं , 'अश्व ' का अर्थ है , बढ़ना , फूलना , और

Page 313 of 331

क्यों कि वह उसे 'मेध्य'--पवित्र--चाहता था, इसलिये इस विकसित सृष्टि का नाम 'अश्वमेध' हुआ। यही अश्वमेध का अश्वमेधपना है, और जो इस रहस्य को समझता है वही अश्वमेध के वास्तविक-रूप को जानता है। जैसे 'अश्वमेध' का घोड़ा एक वर्ष तक बिना रोके खुला विचरता है, वैसे सृष्टि-रूप-अश्व को मृत्यु- ब्रह्म ने बिना रोके बढ़ने दिया, परन्तु फिर जैसे अश्वमेध के घोड़े को वापस बुला लिया जाता है, वैसे संवत्सर के बाद फिर उस अश्व-रूप-सृष्टि का ब्रह्म ने अपने में ग्रहण कर लिया, तभी तो एक वर्ष बाद शीत-उष्ण-शरद्-वसन्त का चक्र फिर दोबारा चल पड़ता है । सृष्टि का जो मुख्य--'अश्व'-रूप--था उसका तो मृत्यु-ब्रह्म ने स्वयं भोग लगाया, और जो गौण-- पशु-रूप--था उसे अन्य देवताओं के सुपुर्द कर दिया। मृत्यु-ब्रह्म तो सूर्य-चन्द्र-पृथिवी आदि को भोगता है, और सूर्य-चन्द्र-पृथिवी आदि अन्य-अवान्तर-जगत् को भोगते हैं । इस प्रकार यह विशाल-संसार सब देवताओं का सिंचा-सिंचाया प्राजापत्य-भोग है--यह मानो निरन्तर अश्व-मेध-यज्ञ हो रहा है ।

(उपनिषदों में याज्ञिक-क्रियाओं को हेय माना है । जहां-तहां उनका कर्मकाण्ड-परक अर्थ न करके ज्ञानकाण्ड-परक अर्थ किया है । इस स्थल में भी अश्वमेध--यज्ञ का कर्मकाण्ड-परक अर्थ न करके ज्ञानकाण्ड-परक अर्थ किया गया है ।)]}

Page 313 of 331

Page 314 of 331

मेरा अभिप्रायः इस पक्ष मे उपरोक्त लिखे गये अर्थों से भिन्न है ---

पूर्व में उत्पन्न उस पुरुष का अर्थात पितर (जो पिता, पितामह, प्रपितामह, प्रप्रपितामह आदि से भी ऊपर है) का यजमान रूप में अभिषेक (सिंचन) करके यज्ञ में कुशासन (बैठने के लिये कुशा घास का आसन) दिया और देवताओं, साधकों और ऋषियों, जितने थे उनके द्वारा यज्ञ किया गया I (यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार हम जिनको देख नहीं सकते उनअपने पितर आदि की मानसिक (प्राणमय कोष में,मनोमय कोष में) उपस्थिति

की कल्पना करते हैं) I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- देवताओं, साध्यों

तथा ऋषियों ने सर्वप्रथम उत्पन्न हुए उस यज्ञपुरुष को कुशा पर अभिषिक्त किया और उसी से उसका यजन किया।

ॐ यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I

मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते I I (पु.सू. 10)

अन्वय:- यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I अस्य मुखं किम् आसीत्, किम् बाहू, किम् उरू, पादा उच्येते I I

Page 314 of 331

Page 315 of 331

शब्दार्थः-- यत्---जब, जिस समय; पुरुषं---विराट् पुरुष को; व्यदधुः---विस्तृत किया, प्रकट किया; कतिधा----किस प्रकार, कितनी प्रकार से; व्यकल्पयन्----कल्पना की, वर्ग विभाजन किया, अवयवों का विभाजन किया; मुखं---मुख, किम्---क्या, कैसा, कहां; आसीत्---था; बाहू---भुजायें; उरू--- दोनों जंघायें; पादा---पैर, चरण, पांव; कहे गये, बताये गये, कल्पित किये गये;

अर्थः--- जब पुरुष को प्रकट किया गया (कल्पना का विस्तार किया गया) तब किस प्रकार कल्पना की गई, कितनी प्रकार से उसका विस्तार किया गया I इसका मुख कहां था, कैसा था, भुजाएं क्या थी, कैसी थी, कहाँ थी; दोनों जंघायें, पांव कैसे बताये गये थे, अर्थात कहां और कैसे थे I

श्रीमद्भागवत् में अर्थ इस प्रकार है-----

जब प्राणमय देवताओं ने उस यज्ञपुरुष (प्रजापति) को प्रकट

किया, उस समय उसके अवयवों के रूप में कितने विभाग किये I इस पुरुष का मुख क्या था, दोनों बाहें क्या थीं I दोनों जाँघें और दोनों पैर कौन थे I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- संकल्प द्वारा

प्रकट हुए जिस विराट पुरुष का, ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार

Page 315 of 331

Page 316 of 331

से कल्पना करते हैं? उसका मुख क्या है? भुजा, जाघें और पाँव कौन-से हैं? शरीर-संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना?

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- पुरुष का जब विभाजन हुआ तो उसमें कितनी विकल्पनायें की गयीं? उसका मुख क्या था? उसके बाहू क्या थे? उसके जंघे क्या थे? और उसके पैर क्या कहे जाते हैं ।

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुख्मासीद्बाहू राजन्यः कृत: I

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत I I (पु.सू.11)

(कृष्ण यजु: पुरुषसूक्त में इस प्रकार दिया गया है — ॐ यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I मुखं किमस्यासीत् किं बाहू का ऊरू पादा उच्येते II यह पाठ है)

अन्वयः----ब्राह्मण: अस्य मुखम् आसीत्, राजन्य: बाहू कृत: I

यद् वैश्यः तद् अस्य ऊरू, शूद्रो पद्भ्यां
अजायत I I

शब्दार्थः---- ब्राह्मण:----हवन, यज्ञ, जप, तप आदि ईश्वर विषयक ज्ञान रखने वाला, अग्रजन्मा, भूदेव,

Page 316 of 331

Page 317 of 331

विप्र, ब्राह्मण: (ज्ञानीजन) जाति, शिव, विष्णु, मन्त्र से भिन्न वेद् का अंश,

(शतपथ आदि ग्रन्थ) अग्नि; अस्य---उसका; मुखम्---मुख, मुख्य, अग्रभाग; बाहू----भुजायें; राजन्यः----- राजा, क्षत्रिय, रक्षक, शासन व्यवस्थापक; कृतः---- बने, बनाये, उत्पन्न हुये, माना; ऊरू---जंघायें; तद्---उसकी, यद्—जो; वैश्यः----व्यापार,कृषि आदि करने वाला, बनिया; पद्भ्यां----पावों से, पैरों से; शूद्र:----सेवक; सेवाभावी; शूद्र जाति; अजायत----- उत्पन्न हुए;

श्रीमद्भागवत् में अर्थ इस प्रकार है-----

ब्राह्मण इसका मुख था अर्थात मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई! दोनों भुजायें क्षत्रिय जाति बनीं, अर्थात भुजाओं से क्षत्रियों का प्राकट्य हुआ! जो वैश्य हैं वे उसकी जंघाओं से, पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----

विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण अर्थात् ज्ञानी (विवेकवान) जन हुए | क्षत्रिय अर्थात पराक्रमी व्यक्ति, उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं | वैश्य अर्थात् पोषणशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति उसके जंघा एवं सेवाधर्मी व्यक्ति उसके पैर हुए I

[** मेरा अभिप्राय यहां यह है कि ब्रह्म का अर्थ निकलता है विस्तृत, महान्, मुखिया, कर्ता-धर्ता,

Page 317 of 331

Page 318 of 331

कारक I ब्राह्मण नाम शिव, विष्णु, अग्नि अर्थात तेज का भी है! जो विवेकवान है ज्ञानवान है वही तो ब्राह्मण है I जिसका प्रसार विस्तृत है वही तो ब्राह्मण है I रावण भी कहता था अहम् ब्रम्हो अस्मि क्योंकि उसका प्रसार बहुत था, बहुत बड़ा विद्वान,समस्त वेदों, शास्त्रों का ज्ञाता, ब्रह्मा, विष्णु, शिव को पानेवाला परम शिव भक्त था I समस्त लोकों का विजेता, इतने बड़े साम्राज्य का मुखिया था I इसलिये मेरे अभिप्राय से यहां पर ब्राह्मण का अर्थ जाति विशेष से लगाने की अपेक्षा विस्तृत अथवा तेजवान लगाना उपयुक्त होगा I इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि को जाति प्रथा से नहीं जोडना चाहिये बल्कि वर्ण अर्थात विभाग के अनुसार अर्थ करना चाहिये I

***मेरा दूसरा विचार यह है कोई भी व्यक्ति हवन-यज्ञ आदि अकेला नहीं करता करनेवाला (आचार्य, पाधा, ब्राह्मण, पुरोहित) कहलाता है और करवाने वाला (यजमान) कहलाता हैI वास्तव में जब कोई व्यक्ति हवन-यज्ञ आदि के लिए दीक्षित हो जाता है सिद्धांतरूप से वह बार-बार नहीं उठ सकता यज्ञ की रक्षा हेतु, विभिन्न वस्तुओं के संचय हेतु या समय पर आवश्यकता पड़ने पर खर्च हेतु, कुछ अन्य प्रकार की सहायता हेतु, इसीप्रकार विभिन्न प्रकार से कार्यों के आधार पर कल्पना की गई I इनमें से मुख्य सहायक मन्त्रोच्चारण व अन्य विधि कर्ता को ब्राह्मण, यज्ञ की रक्षा का भार वहन कर्ता को

Page 318 of 331

Page 319 of 331

क्षत्रिय, यज्ञ हेतु धन व अन्य सामग्री या अन्य बातों का ध्यान व हिसाब व्यवस्थापक को वैश्य तथा सेवक का भार का निर्वहन करने वाले को शूद्र आदि पद अर्थात नाम दिए गये हैं I

****मेरे अनुसार यह अर्थ उचित जान पडता है----- उसका मुख तेजवान और विस्तृत था I भुजाओं से पराक्रम उत्पन्न हुआ अर्थात पराक्रम शील उत्पन्न हुये I दोनों जंघाओं से व्यापारी, लेन देन करने वाले अंग अर्थात विभाग बने क्योंकि शरीर में कहीं से कुछ भी जाता है पहले उदर, पेट में जाता है और जङ्घा के द्वारा शरीर में जहां जिस अंग को जो कुछ जितना चाहिये उतना पहुंचता और व्यर्थ मल-मूत्र के रूप में बाहर किया जाता है I जो कि एक वैश्य की भान्ति नाप-तोल करके ही होता है I और शूद्र अर्थात सेवक पैरों से उत्पन्न हुए यहां शूद्र किसे माना जाये ? शरीर में जो लाने लेजाने का कार्य करते हैं व्यर्थ वस्तुयें निकालने का कार्य करते हैं वे शुद्र अथवा सेवक हैं जैसे शिरायें, कोशिकायें इत्यादि विभिन्न अवयव I

(यह मेरा व्यक्तिगत मन्तव्य है कृपया इसे अन्यथा न लें) I]

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:-

ब्राह्मण इसका मुख था (मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए) क्षत्रिय दोनों भुजाएं बने(दोनों भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए) इस पुरुष की जो

Page 319 of 331

Page 320 of 331

दोनों जंघाएँ थीं वे ही वैश्य हुईं अर्थात उनसे वैश्य उत्पन्न हुए और पैरों से शुद्र वर्ण प्रकट हुआ।

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत I

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत I I (पु.सू. 12)

(कृष्ण यजु: पुरुषसूक्त में इसप्रकार दिया गया है — ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखामासीद्बाहू राजन्य: कृत: I यह मन्त्र है)

अन्वयः--- चन्द्रमा मनसो जातः, सूर्यो चक्षोः अजायत I

श्रोत्राद् वायुः, च प्राणः, च अग्निः मुखाद् अजायत I I

शब्दार्थ:---चन्द्रमा--चन्द्र; मनसो----मन से, मन के द्वारा; जातः-

-उत्पन्न हुआ था; चक्षोः--आँखों से, नेत्रों से;सूर्यो--सूर्य, ज्योति; अजायत--उत्पन्न हुआ; ! श्रोत्राद्---कानों से; वायुः----वायु; च---और; प्राणः----प्राणवायु; च---और; मुखाद्---मुख से; अग्निः---तेज; अजायत----उत्पन्न हुआ I I

अर्थ— विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ I नेत्रों से सूर्य अर्थात् ज्योति (प्रकाश)

Page 320 of 331

Page 321 of 331

की उत्पत्ति हुई I कानों से वायु तथा प्राणवायु की उत्पत्ति हुई और मुख अग्नि, तेज की उत्पत्ति हुई I

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार है----- चन्द्रमा मन से प्रकट हुआ I नेत्रों अर्थात दोनों चक्षुओं से सूर्य अर्थात प्रकाश ज्योति का प्रादुर्भाव हुआ I कानों से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि का आविर्भाव हुआ I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----

विराट पुरुष परमात्मा के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, कर्ण से वायु एवं प्राण तथा मुख से अग्नि का प्रकटीकरण हुआ I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:-

इस परम् पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रों से सूर्य प्रकट हुए, कानों से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुई ।

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं् शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत I

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् I I (पु.सू.13) [(कृष्ण यजु: पुरुषसूक्त में इसप्रकार दिया गया है-ॐ चंद्रमा मनसो जाताश्चक्षो: सूर्यो अजायत I मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत । अन्वय:-- मनस: चन्द्र्मा जात: । चक्षो: सूर्यो

Page 321 of 331

Page 322 of 331

अजायत । मुखात् इन्द्र: च अग्नि च प्राणात् वायु: अजायत् ।)

अर्थ—चन्द्र्मा मन से उत्प्न्न हुआ और चक्षु सूर्य से उत्प्न्न हुए । मुख से इंद्र और अग्नि प्राणसे वायु उत्प्न्न हुए ।)]

अन्वयः---- नाभ्या अन्तरिक्षं आसीत्, शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत I पद्भ्यां भूमि: दिशः श्रोत्रात् तथा लोकां अकल्पयन् II

शब्दार्थः---- नाभ्या----नाभि से; अन्तरिक्षं---- आकाश; आसीत्---

था; शीर्ष्णो---मस्तक से; द्यौः----स्वर्गलोक आदि अन्य लोक; समवर्तत----साथ-साथ प्रकट हुआ, प्राकट्य हुआ; पद्भ्यां---पैरों से; भूमि:----भूमि; दिशः--- दिशायें; श्रोत्रात्---- कानों से; तथा---और; लोकां---लोकों की; अकल्पयन्---कल्पना हुई, उत्पत्ति हुई;

अर्थः--नाभि से अन्तरिक्ष हुआ था, मस्तक से स्वर्गलोक आदि लोकों का समानरुप् से उद्भव हुआ I पैरोंसे भूमि, कानों से दिशायें प्रकट हुईं I इसी प्रकार लोकों की उत्पत्ति की कल्पना की गई थी I

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार है---- नाभि से अन्तरिक्ष-लोक की उत्पत्ति हुई, मस्तक से स्वर्ग लोक प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी हुई और कान

Page 322 of 331

Page 323 of 331

से दिशाएँ प्रकट हुईं I इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकों की कल्पना की I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- विराट पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, सिर से द्युलोक, पाँवों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं | इसी प्रकार (अनेकानेक) लोकों को कल्पित किया गया है (रचा गया है) I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- उन्हीं परम् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, मस्तक से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी, कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं । इस प्रकार समस्त लोक उस पुरुष में ही कल्पित हुए ।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत I वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः I I (पु॰सू॰14)

(कृष्ण यजु: पुरुषसूक्त में इस प्रकार दिया गया है--- ॐ धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्र: प्रविद्वान् प्ररिश्चतस्र: I तमेवं विद्वानमृत इह् भवति नान्य: पन्था अयनाय विद्यते I यह मन्त्र है I)

अन्वयः--- यत: पुरुषेण हविषा देवा यज्ञम अयजन्त वसन्तो आसीत् आज्यं ग्रीष्म इध्मःशरद् हविः I

शब्दार्थः---- यत:---जब; पुरुषेण----पुरुष द्वारा अर्थात विराट् पुरुष द्वारा; हविषा------आहुति से;

Page 323 of 331

Page 324 of 331

देवा-----देवताओं ने; यज्ञम----यज्ञ कार्य को; अयजन्त----आयोजित किया; वसन्तो----वसन्त ऋतु; आसीत्---थी, होगई थी; आज्यं--घी; ग्रीष्म:---गर्मी, ग्रीष्म ऋतु; इध्मः----ईन्धन्; शरद्-----शीत ऋतु; हविः----हविष्य (सामग्री) I

अर्थः--- जब देवताओं ने यज्ञ कार्य को आयोजित किया उस समय विराट् पुरुष द्वारा दी जाने वाली आहुति से वसन्त ऋतु घी में, गर्मी की ऋतु ईन्धन् में, तथा शीत ऋतु हवन- यज्ञ की सामग्री में परिवर्तित हो गई थी I

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है------ उस समय देवताओं ने यज्ञ करना चाहा, परन्तु यज्ञ की कोई सामग्री उपलब्ध न हुई, तब उन्होंने पुरुष स्वरूप में ही हविष्य की भावना की I जब् पुरुषरुप हविष्य से हि देवताओं ने यज्ञ क विस्तार किया, उस समय उनके सङ्कल्पानुसार वसन्त ऋतु घी हुई, ग्रीष्म रितुसे समिधा का काम दिया और शरद् ऋतु से विशेष प्रकार के चारु-पुरोडाशादि हविष्य की आवश्यकता पूर्ण हुई I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- जब देवों ने विराट पुरुष रूप को हवि मानकर यज्ञ का शुभारम्भ किया, तब घृत वसंत ऋतु, ईंधन(समिधा) ग्रीष्म ऋतु एवं हवि शरद ऋतु हुई I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:-

Page 324 of 331

Page 325 of 331

जिस पुरुषरूप हविष्य से देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, वसंत उसका घी था, ग्रीष्म काष्ठ एवं शरद् हवि थी।

ॐ सप्तास्यासन् परिधय्स्त्रिःसप्त समिधः कृताः I

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम् I I (पु॰सू॰15)

अन्वयः--- देवा यद् यज्ञं पुरुषं पशुम् तन्वाना अवध्नन् अस्य सप्त आसन् परिधय: त्रिसप्त समिधः कृताः I

शब्दार्थः---- देवा---देवताओंने; यद्---जिस; यज्ञं---यज्ञ के लिये;

पुरुषं---पुरुष को; पशुम्---प्राणी को; तन्वाना---- कोमलता से, संकल्प द्वारा; अवध्नन्----बान्ध दिया, निश्चित् कर दिया, नियुक्त किया; अस्य---इसकी; सप्त-----सात; आसन्---बिस्तर, आसन; परिधय:---- परिधियां; त्रिसप्त----इक्कीस्; समिधः---समिधायें; कृताः----बनायी गई;

विशेष-[कृष्ण यजु: पुरुषसूक्त में इस प्रकार दिया गया है –ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णे तमसस्तु पारे I सर्वाणि भुउतानि विचिन्त्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते I I

अन्वय—तमस: तु पारे आदित्यवर्णे एतम् महान्तम् पुरुषं अहम् वेद I यत् धीरो सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य नामानि कृत्वा अभिवदन् आस्ते II
Page 325 of 331

Page 326 of 331

अन्वय =तमस: तु पारे आदित्यवर्णे एतम् महान्तम् पुरुषं अहम् वेद। यत् धीरो सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य नामानि कृत्वा अभिवदन् आस्ते।।

शब्दार्थ = तमस: -अविद्या रूप अंधकार से, तु-तो ,पारे -अतीत

/परे/से दूर, आदित्यवर्णे - सूर्य की भांति स्वयंप्रकाशस्वरूप में, एतम् - इस, महान्तम् पुरुषं- महान पुरुष (परमेश्वर) को, अहम् वेद -मैं जानता हूं ।यत्-जो, धीरो - ध्यानशील/ बुध्दिमान/अथवा बुद्धिमान के लिए, सर्वाणि भूतानि - सभी प्राणियों को, विचिन्त्य - विचार करके / उनके अनुरूप चिंतन करके, नामानि कृत्वा - नामों/ विभिन्न नामसंज्ञा प्रदान करके, अभिवदन्- संबोधित करते हुए / नमस्क्रिया द्वारा, आस्ते- विराजमान हैं / बैठा है ।।

सरलार्थ = अविद्या रूप अंधकार से अतीत अर्थात् परे सूर्य के भांति स्वयंप्रकाशस्वरूप इस महान पुरुष (परमेश्वर) को मैं जानता हूं । जो ध्यानशील ,बुद्धिमान (अथवा बुद्धिमान के लिए) सभी प्राणियों को विचारकर विभिन्न नामसंज्ञा प्रदान करके, संबोधित करते हुए विराजमान है अर्थात् बैठा (प्रतिष्ठित) है ।।)]

श्रीमद्भागवत में अर्थ इस प्रकार मिलता है------- प्रजापति के प्राणरूपी देवताओं ने जब् मानसिक यज्ञ का अनुष्ठान करते समय संकल्प द्वारा पुरुष

Page 326 of 331

Page 327 of 331

रूपी पशु क बन्धन किया था, उस समय सात समुद्र इस यज्ञ की परिधि थे और इक्कीस प्रकार के छंदों की समिधा हुई! (गायत्री आदि 7, श्रुति जगति आदि 7,और कृष्नि आदि 7---ये 21 छन्द हैं I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- देवों ने जिस

यज्ञ का विस्तार किया, उसमें विराट पुरुष को ही पशु (हव्य) रूप

की भावना से बाँधा (नियुक्त किया), उसमें यज्ञ की सात

परिधियाँ (सात समुद्र) एवं इक्कीस (छंद) समिधाएँ हुईं I

मेरे अभिप्राय से अर्थ यह है---देवताओं ने जिस यज्ञ के लिये पुरुष प्राणी को संकल्प द्वारा नियुक्त किया था सात समुद्र उसके आसन की परिधि थे और इक्कीस प्रकार की समिधायें बनाई थी I (यह अलग बात है कि मानसिक यज्ञ में छन्दों को ही समिधा कल्पित किया गया है I)

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:-

देवताओं ने जब यज्ञ करते समय (संकल्प से) औरुश्रुप पशु का बंधन किया, तब सात समुद्र इसकी परिधि (मेखलाएँ) थे। इक्कीस प्रकार के छंदों की (गायत्री,अतिजगती, और कृति में से प्रत्येक के सात-सात प्रकार से) समिधाएँ बनीं।
Page 327 of 331

Page 328 of 331

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् I

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः I (पु॰सू॰16)

अन्वयः---- तानि धर्माणि देवाः प्रथमा न्यासन् यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त I ते ह् नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति I

शब्दार्थः---- तानि---उन्होंने, जिन्होंने; धर्माणि---धर्मात्मा,

महात्मा; देवाः---देवताओं ने; प्रथमा---पहले से ही, पूर्व में ही; न्यासन्---धरोहर के रूप में रखे, सङ्कल्प् किये हुये; यज्ञेन---यज्ञ के द्वारा; यज्ञम्---यज्ञ-पुरुष का,; अयजन्त---- अनुष्ठान किया; ते---वे; ह्---ही; नाकं----स्वर्गमें; महिमानः--- महत्व, सम्मान, महानता को प्राप्त हुए; सचन्त--- संचय करते हैं; यत्र---जहां; पूर्वे---पूर्व में; पहले से ही; साध्याः---साधक गण; देवाः----देवगण; सन्ति---रहते हैं;

अर्थः--- धर्मात्मा देवताओं जिन्होंने पूर्वं में धरोहर स्वरुप संकल्प किये हुये यज्ञ के द्वारा यज्ञपुरुश क अनुष्ठान किया I वे ही स्वर्गलोक की महानता अर्थात स्वर्ग के यश को सञ्चय करते हैं जहां पूर्व से ही साधक सुर देवगण रहते हैं I

Page 328 of 331

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है---- देवताओं ने पूर्वोक्त मानसिक यज्ञ द्वारा यज्ञस्वरूप पुरुष-प्रजापति की आराधना की I इस आराधना से समस्त जगत् को धारण करने वाले वे पृथ्वी आदि मुख्य भूत प्रकट हुए! इस यज्ञ की उपासना करने वाले महात्मा लोग उस स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं, जहां प्राचीन साध्य देवता निवास करते हैं I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है--आदि श्रेष्ठ धर्म-परायण देवों ने, यज्ञ से यज्ञरूप विराट सत्ता का यजन किया | यज्ञीय जीवन जीनेवाले धार्मिक महात्माजन पूर्वकाल के साध्य देवताओं के निवास, स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं!

ईश्वर की महिमा बताने के लिए महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने ठीक ही कहा है------

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:-

देवताओं ने (पूर्वोक्त रूप से) यज्ञ के द्वारा यज्ञस्वरूप परम्-पुरुष का यजन (आराधन) किया। इस यज्ञ से सर्व प्रथम धर्म उत्पन्न हुए। उन धर्मों के आचरण से वे देवता महान महिमावाले हो कर उस स्वर्गलोक का सेवन करते हैं, जहां प्राचीन साध्य-देवता निवास करते हैं। [अत: हम सभी सर्वव्यापी जड़-चेतनात्मकरूप विराट् पुरुष की करबद्ध स्तुति करते हैं।]

एक अनन्त त्रिकाल सच, चेतन शक्ति दिखात I
Page 329 of 331

Page 330 of 331

सिरजत, पालत, हरत, जग, महिमा बरनि न जात I I

अर्थ:---- समस्त सीमाओं से परे और भूतकाल, वर्तमान काल, और भविष्य काल, तीनों कालों में सच एक ही है! जो चेतना और शक्ति दिखाता है अर्थात जो चेतना शक्ति (दिव्य दृष्टि) के द्वारा दिखाई देता है! वह ही जगत का सृजन करता है अर्थात सृष्टि की रचना करता है, पालना करता है और इसको हरता है अर्थात इसका विनाश करता है I इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है I

रहीम का निम्न दोहा भी यही बताता है --

एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय I

रहिमन सेवै मूल को, फूलै फले अघाये I I

अर्थ----रहीम कहते हैं कि एक की साधना करने से ही सब को साधा जा सकता है, सब को साधने से सबकुछ चला जाता है I वृक्ष की एक जड़ को ही सींचने से वृक्ष फलता फूलता है और फैलता है I

श्रीमद्देविभागवत के सातवें स्कन्ध के 36 वें अध्याय में
पर्वतराज हिमालय को देवी द्वारा अपने ब्रह्म स्वरूप का उपदेश देते समय भी यही भाव प्रकट होता है -----
उस स्वप्रकाशरूप परमधाम में—परमात्मा में न यह सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा या तारे ही प्रकाशित होते हैं I न वहां ये बिजलियाँ चमकती हैं I फिर, इस अग्नि की तो बात ही क्या है? उसके

Page 330 of 331

प्रकाशित होने पर उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं, उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत प्रकाशित है। वह अमृत-स्वरूप ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दाहिनी तथा ब्रह्म ही बायीं ओर है वही नीचे-ऊपर फैला हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।